महाकवि भास प्रणीत

प्रतिमानाटकम्

समालोचनात्मक भूमिका, संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या
टिप्पणी तथा उपयोगी परिशिष्ट से समन्वित

डा. कृष्ण कुमार

महाकविभासविरचितम्

प्रतिमानाटकम्

[विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद, संस्कृत टीका, टिप्पणियों तथा उपयोगी परिशिष्टों सहित]

व्याख्याकार :

डा० कृष्णकुमार

एम. ए. साहित्याचार्य, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)

साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक

सुभाष बाजार, मेरठ-२५०००२

• प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
• अध्यक्ष :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ।
दूरभाष : ५१८७५४

हमारे अन्य उपयोगी प्रकाशन

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
२. भारतीय संस्कृति का इतिहास
३. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
४. प्रतिमानाटकम्
५. मेघदूतम्
६. छन्दालङ्कारप्रकाश
७. कादम्बरी कथामुखम्
८. निबन्धपारिजात
९. संस्कृत निबन्ध माला I
१०. संस्कृत रचनानुवादप्रभा
११. संस्कृत साहित्य का इतिहास (प्रश्नोत्तर रूप में
१२. भामिनीविलासः
१३. नीतिशतकम्
१४ अपरीक्षितकारकम्

• *नवीन संस्करण* **2006**

• मूल्यः साठ रुपये (६०.००)

• मुद्रक :
सर्वोदय प्रेस, मेरठ।

• पुनः मुद्रित
दुर्गा आफसैट प्रिंटर्स, मेरठ।

निवेदन

संस्कृत भाषा के प्रथम नाटयकार भास के 'प्रतिमानाटक' की यह व्याख्या विस्तृत भूमिका सहित संस्कृत-अनुरागियों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है। भास के महत्व से कौन परिचित नहीं होगा? सन् १९०९ ई० में टी० गणपति शास्त्री द्वारा भास के १३ नाटकों की खोज ने संस्कृत प्रेमियों को चमत्कृत कर दिया था। उस समय से भास के नाटकों का अधिक से अधिक अध्ययन हो रहा है तथा उनकी कृतियों पर विस्तृत समीक्षायें की गई हैं।

भास के १३ नाटकों में 'प्रतिमानाटक' का विशेष महत्त्व है। सात अङ्कों के इस नाटक के कथानक की रचना रामायण' के कथानक से ली गई है। राम के राज्याभिषेक के रुकने की घटना से इस नाटक का कथानक प्रारम्भ हुआ है तथा राम के राज्याभिषेक की पूर्णता के साथ यह समाप्त हुआ है। नाटक का कलेवर यद्यपि अधिक विशाल नहीं है, तथापि भाव, भाषा, नाटकीय अभिनय आदि की दृष्टि से यह संस्कृत-भाषा के प्रथम श्रेणी के नाटकों में रखने के योग्य है।

महाकवि भास की पूरी भावनाओं का उद्‌घाटन यद्यपि बहुत कठिन कार्य है, तथापि प्रस्तुत व्याख्या में इसको सम्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। कवि के भावों की गरिमा और सौन्दर्य ने व्याख्याकार को इस कार्य के लिये प्रेरणा प्रदान की है।

'प्रतिमानाटक' की यह व्याख्या संस्कृत के छात्रों और नाटकों के प्रति अनुराग रखने वाले सहृदयों की सुविधा की दृष्टि से लिखी गई है। प्रारम्भ में विस्तृत भूमिका में भास तथा उसकी कृतियों, विशेष रूप से 'प्रतिमानाटक' के गुणों और विशेषताओं का उद्‌घाटन है। इसमें उन सभी प्रश्नों के समाधान का प्रयास है, जो भास की विशेषताओं को समझने के लिये आवश्यक हैं।

भूमिका के पश्चात् नाटक के पाठ्य की व्याख्या है। प्राकृत पाठों के साथ उनका संस्कृत रूपान्तरण है और उनका हिन्दी अनुवाद है। श्लोकों के अन्वय, हिन्दी अनुवाद और संस्कृत-व्याख्या के साथ ही व्याकरण, छन्द, अलङ्कारों को देकर यथास्थान समुचित टिप्पणियाँ दी गई हैं।

अन्त में अति उपयोगी चार परिशिष्ट है। परिशिष्ट (१) में प्रमुख नाट्य-शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों के लक्षण हैं। परिशिष्ट (२) में 'प्रतिमानाटक' के छन्दों का विवेचन है। परिशिष्ट (३) में 'प्रतिमानाटक' की सूक्तियों और लोकोक्तियों का संग्रह है और परिशिष्ट (४) में वर्णक्रमानुसार श्लोकों की अनुक्रमणिका है।

'प्रतिमानाटक' की इस व्याख्या की सफलता का निर्णय विद्वान् पाठक और समालोचक ही कर सकेंगे, तथापि लेखक ने विनीत भाव से यह व्याख्या प्रस्तुत कर ही दी है। इस व्याख्या में अनेक दोष, त्रुटियाँ और कमियाँ हो सकती हैं, इसके लिये लेखक क्षमाप्रार्थी है। आशा है कि समालोचकगण इसका निर्देश करने की कृपा करेंगे, जिससे कि अगले संस्करण में उनको दूर किया जा सके। लेखक को आशा है कि इस व्याख्या से 'प्रतिमानाटक' के गुणों का उद्घाटन होगा और वे सहृदयों का रञ्जन करने में समर्थ होंगे।

दीपावली — विद्वानों का वशंवद

२६ अक्टूबर १९८४ — कृष्णकुमार

विषय-सूची

भूमिका (१–८४)

—:०:—

महाकविभासप्रणीतम्

प्रतिमानाटकम्

हिन्दी अनुवाद, संस्कृत टीका टिप्पणी सहित

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१. **सूत्रधार**— नाटक का संचालक
२. **दशरथ**—अयोध्या के महाराज
३. **राम**—दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र और नाटक के नायक
४. **भरत**—राम के भाई, कैकेयी के पुत्र
५. **लक्ष्मण**— राम के भाई, सुमित्रा के पुत्र
६. **शत्रुघ्न**—राम के भाई, सुमित्रा के पुत्र
७. **सुमन्त्र**—दशरथ के सारथि
८. **सूत**—भरत का सारथि
९. **रावण**—राक्षसराज लङ्का का राजा, नाटक का प्रतिनायक
१०. दो वृद्ध तापस,
११. **देवकुलिक**—प्रतिमागृह का पुजारी
१२. **तापस**—दण्डकारण्य के तपस्वी
१३. **नन्दिलक**—तपस्वियों का सेवक
१४. **भट**—राजकीय पुरुष
१५. **काञ्चुकीय**—अन्तःपुर का रक्षक
१६ **सुधाकार**—प्रतिमानाटक का सेवक

स्त्री-पात्र

१. **नटी**—सूत्रधार की स्त्री
२. **सीता**—दशरथ की पुत्रवधू, राम की पत्नी
३. **कौसल्या**—दशरथ की पत्नी, राम की माता
४. **कैकेयी**—दशरथ की पत्नी, भरत की माता
५. **सुमित्रा**—दशरथ की पत्नी, लक्ष्मण-शत्रुघ्न की माता
६. **प्रतिहारी**—अन्तःपुर की द्वारपालिका
७. **चेटी**—सीता की सेविका
८. **अवदातिका**—सीता की सेविका
९. **विजया**—कैकेयी के अन्तःपुर की प्रतिहारी
१०. **नन्दिनिका**—कैकेयी की सेविका
११. **तापसी**—दण्डकारण्य की तपस्विनी

--:०:--

भूमिका

संस्कृत भाषा भारत के गौरव और सांस्कृतिक महत्त्व को अति-प्राचीन काल से समृद्ध करती रही है। यह इस देश की महान् अमूल्य धरोहर है, जिसको सुरक्षित रखना प्रत्येक भारतवासी का महान् कर्त्तव्य है। वर्तमान समय में भी यह इस देश का महान् कल्याण करने में समर्थ है।

संस्कृत-भाषा को प्राचीन-ऋषियों ने 'देवभाषा' का पद प्रदान किया था। इसका विशाल वैभवशाली ग्रन्थसमूह विविध ज्ञान-विज्ञान के भण्डार को अपने अन्दर सुरक्षित रखे हुए है। इसके सामर्थ्य पर हम आज के समुन्नत वैज्ञानिक युग में भी किसी भी देश की भाषा एवं साहित्य के सम्मुख अपने मस्तक को ऊँचा उठा सकते हैं। वेद, वेदाङ्ग, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, स्मृति, धर्मशास्त्र, पुराण, दर्शन, व्याकरण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्प, विज्ञान, ज्योतिष आदि विधाओं से सम्बन्धित ग्रन्थों से तो यह भाषा भरी ही हुई है, काव्य, नाटक, चम्पू आदि साहित्य की विविध विधाओं की धाराओं की भागीरथी के रूप में भी यह भाषा सहस्राब्दियों से प्रवाहित होती रही है।

संस्कृत भाषा का चिन्तन करते हुए व्यास, वाल्मीकि आदि महान् कवियों के चित्र मानस्-पटल पर अवतरित होने के साथ ही भास, शूद्रक, कालिदास, भवभूति, हर्ष, राजशेखर आदि नाट्यकारों की छवि भी नयनों के समक्ष उपस्थित हो जाती है। भास को हम प्रथम नाटककार के रूप में जानते हैं। यद्यपि भास से पूर्व भी नाटकों की रचना अवश्य ही की जाती रही थी, तथापि इनसे पूर्व का कोई भी नाटक उपलब्ध नहीं है। कालिदास जैसे महान् कवि ने भी भास का आदर के साथ उल्लेख किया है। संस्कृत नाटककारों में सबसे प्राचीन होने पर भी भास का महत्त्व नाटक-रचना की दृष्टि से किसी से कम नहीं है। भास के बिना संस्कृत-साहित्य, विशेष रूप से नाटक साहित्य अधूरा और रिक्त है।

भास ने कितने नाटकों की रचना की, यह कहना कठिन है, तथापि उनके लिखे हुए १३ नाटक उपलब्ध हुए हैं। ये नाटक संघटन-सौष्ठव, भाषा, भाव, कला, रसनिष्पत्ति और अभिव्यञ्जनाओं की दृष्टि से तो सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हैं ही, नाटकीय संविधान और अभिनय की दृष्टि से भी प्रथम श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इन नाटकों की यह भी बहुत बड़ी विशेषता है कि इनको सरलता से रङ्गमञ्च पर अभिनीत किया जा सकता है।

प्राचीन समालोचकों ने साहित्य-विधाओं में नाटक को सबसे अधिक रमणीय और हृदयग्राही बताया है; अतः भास के नाटक 'प्रतिमानाटकम्' की समालोचना

करते हुए यह उचित होगा कि रूपकों के महत्व और उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ लिखा जाये।

१. रूपकों का महत्त्व, उनकी उत्पत्ति और विकास

संस्कृत काव्य साहित्य में नाटक विधा को सबसे अधिक रमणीय, हृदयग्राही आनन्दजनक कहा गया है। आचार्य भरत का कथन है—

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

भरतनाट्यशास्त्र १.१०८-१०९॥

अर्थात् नाट्य में सम्पूर्ण त्रिलोकी के भावों का अनुकीर्त्तन होता है, यह नानाविध भावों और अवस्थाओं से युक्त होता है और इसमें लोक के व्यवहारों का अनुकरण किया जाता है। वे आगे कहते हैं—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥

भरतनाट्यशास्त्र १.११४॥

कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जो इस नाट्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्य वामन ने लिखा है—

"सन्दर्भेषु रूपकं श्रेय। तद्धि चित्रं चित्रपटवत् विशेषसाकल्यात्"॥

सन्दर्भों में रूपक सबसे श्रेष्ठ है। वह चित्रपट के समान सुन्दर होता है। उसमें सभी भाव निहित रहते हैं। महाकवि कालिदास ने नाट्य की प्रशंसा में 'मालविकाग्निमित्र' में स्वयं निम्न उक्ति लिखी है—

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते।
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥

इस नाट्य में अनेकविध रसों से भरा हुआ, तीनों लोकों का चरित दृष्टिगोचर होता है। यह एक होकर भी भिन्न-भिन्न रुचि वाले मनुष्यों को आनन्दित करता है।

काव्यों के भेद—संस्कृत साहित्य में काव्य के मुख्यतः दो भेद किये गये हैं—श्रव्य और दृश्य। श्रव्य काव्य तीन प्रकार के हैं—गद्य, पद्य और चम्पू। गद्य काव्य के दो प्रकार के हैं—कथा और आख्यायिका। पद्य काव्य तीन प्रकार के हैं—महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक। दृश्य काव्य को सामान्य रूप से नाट्य, रूपक या रूप कहते हैं। इसके दस भेद हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, वीथी, अंक, ईहामृग और प्रहसन।
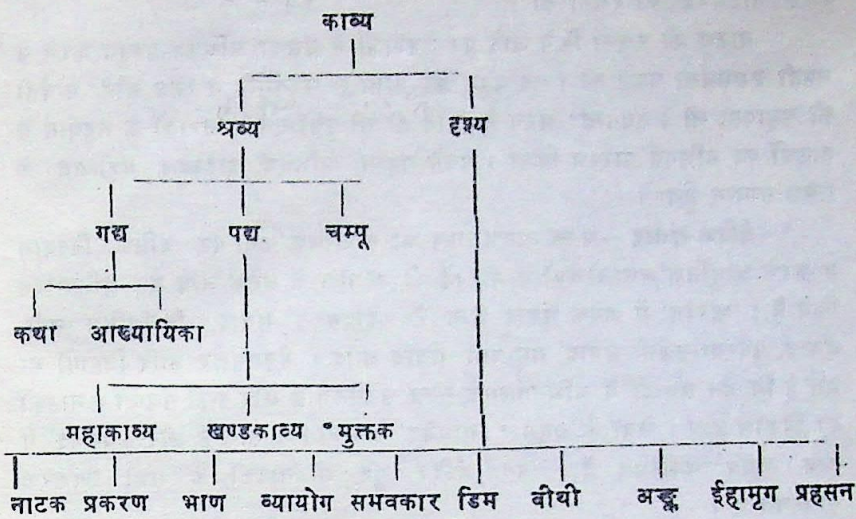
नाटकों की उत्पत्ति—मनुष्य स्वभावतः मनोरञ्जनप्रिय होते हैं। मनोरञ्जन के साधन के रूप में नाट्य का अभिनय अतिप्राचीन काल से होता रहा है। मनोरञ्जन के लिए दूसरों की भावनाओं का अनुकरण करना स्वाभाविक है। इस अनुकरण या अभिनय में मूल रूप से ये तत्त्व निहित रहते हैं—अनुकृति, दृश्य, आरोप। दशरूपककार धनञ्जय का कथन है—

अवस्थानुकृतिनाट्य रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपकं तत्समारोपात्
'दशरूपक' १.७ ॥

अवस्थाओं का अनुकरण करने से इसको नाट्य कहते हैं। दृश्य होने से यह रूप कहलाता है और दूसरी अवस्थाओं का आरोप होने से इसे रूपक कहा जाता है।

नाटक या रूपक की सर्वप्रथम उत्पत्ति कब हुई, इसको कहना बहुत कठिन है। विभिन्न विद्वानों ने इस विषय पर अनेक मत प्रकट किये हैं। इन मतों का विस्तार से विवेचन करना तो इस स्थल पर सम्भव न हो सकेगा; तथापि संक्षेप से इन मतों के सारांश प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।

दैवीय उत्पत्ति—भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' के प्रारम्भ में नाटक की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए इसको 'नाट्यवेद' कहा है। त्रेता युग के प्रारम्भ में इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्मा से ऐसे मनोरञ्जन के साधन प्रस्तुत करने की प्रार्थना की, जो कि सभी वर्णों के लिए सुलभ हों। तब ब्रह्मा ने चारों वेदों का स्मरण करके 'ऋग्वेद' से पाठ्य, 'सामवेद' से गीत, 'यजुर्वेद' से अभिनय और 'अथर्ववेद' से रसों को ग्रहण

करके 'नाटचवेद' की रचना की ।[1]

नाटच की रचना किये जाने पर देवताओं ने उसका अभिनय प्रस्तुत करने में अपनी असमर्थता प्रकट की । तब ब्रह्मा की आज्ञा से भरतमुनि ने शिव और पार्वती की सहायता ली । तदनन्तर भरत ने अपने ही सौ पुत्रों एवं अप्सराओं के सहयोग से नाटचों का अभिनय प्रारम्भ किया । सबसे पहला अभिनय इन्द्रध्वज महोत्सव के समय सम्पन्न हुआ ।

वैदिक संवाद—भरत नाटचशास्त्र की पौराणिक कथा पर अधिक विश्वास न करके आधुनिक समालोचकों ने नाटकों की उत्पत्ति के अनेक अन्य मत प्रतिपादित किये हैं । 'ऋग्वेद' में अनेक संवाद सूक्त हैं—इन्द्रमरुत संवाद, विश्वामित्र नदी, संवाद, पुरुरवा-उर्वशी संवाद, यम-यमी संवाद आदि । मैक्समूलर आदि विद्वानों का मत है कि इन संवादों में अभिनयात्मक तत्त्व उपस्थित है और इन्हीं संवादों से नाटकों का विकास हुआ । लेवी के अनुसार 'सामवेद' में संगीत के तत्व हैं और अथर्ववेद' में नृत्य आदि उपस्थित हैं; अतः वैदिक युग में नाटकों के सभी उपकरण उपस्थित थे ।

३. धार्मिक अनुष्ठान—वैदिक यज्ञों और धार्मिक अनुष्ठानों में संवाद, अभिनय आदि नाटकीय तत्त्व उपस्थित हैं । कुछ विद्वानों के अनुसार नाटकों का विकास इन्हीं अनुष्ठानों से हुआ ।

४. पुत्तलिका नृत्य—पिशेल के अनुसार नाटकों का उद्भव पुत्तलिका नृत्य से हुआ है । पुतलियों के संचालन के लिए सूत्रधार और संस्थापक की आवश्यकता होती है । यही सूत्रधार और संस्थापक नाटकों के अभिनय का संचालन करने लगे ।

५. छाया नाटक—प्रो० लूडर्स और कोनोव ने संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से प्रतिपादित करने का प्रयास किया है । उनके अनुसार महाभारत में इसके संकेत हैं ।

६. प्रो० रिजवे के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति मृतात्माओं के प्रति आदर तथा श्रद्धा प्रकट करने के लिए हुई ।

७. ग्रीक प्रभाव— डा० वेबर के अनुसार ग्रीकों के सम्पर्क ने भारतवर्ष में

---

१. "महेन्द्रप्रमुखैः देवैरुक्तः किल पितामहः ।
क्रीडनीयकमिच्छामः दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत् ॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु ।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥ भा० ना० १.११.११ ॥
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाटचवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥
जग्राह पाठ्य ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ भा० ना० १.१७.१७ ॥

अभिनय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया । भारतीय नाटकों में जवनिका (यवनिका) का प्रयोग ग्रीक सम्पर्क से आया है ।

८. शक-प्रभाव—प्रो० लेवी के अनुसार भारतीय नाटकों के विकास में शकों का प्रभाव रहा है । नाटकों में संस्कृत के स्थान पर प्राकृतों का प्रयोग और शकार आदि पात्रों का समावेश शक प्रभाव के द्योतक हैं ।

९. भरतों से उत्पत्ति—प्रो० जागीरदार के अनुसार आर्यों की एक शाखा भरत थी, जिससे भरत मुनि हुए थे । नाट्य एवं नृत्य आदि में अधिक रुचि रखने के कारण आर्यों ने इनको शूद्रों में परिगणित कर दिया था । इन्होने एक अनार्य राजा 'नहुष' का आश्रय लेकर नाटकों का विकास किया ।

१०. द्रविड़ प्रभाव—डॉ० इन्दुशेखर के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति का मूल द्रविड सभ्यता है । जो कि आर्यों के सम्पर्क से अधिक विकसित हुए । द्रविड़, देवताओं-शिव और पार्वती को स्वीकार करके आर्यों ने नाटकों को भी ग्रहण किया तथा इनका विकास किया । इस प्रकार नाटकों का विकास आर्यों और आर्येत्तर जातियों का संयुक्त प्रयास है ।

नाटकों की परम्परा—नाटकों की उत्पत्ति किसी भी रूप में क्यों न हुई हो यह निश्चित है कि संस्कृत नाटकों का उद्भव अति प्राचीन है । 'रामायण' और 'महाभारत' में अभिनय के संकेत प्राप्त होते हैं । 'महाभारत' के 'विराट् पर्व' में रङ्गशाला का उल्लेख है और हरिवंश पुराण में दो नाटकों—'रामायण' एवं कौबेर-रम्भाभिसार' के अभिनय का संकेत है । पाणिनि ने नाट्याचार्यों और नटों का संकेत किया है । उसने 'जाम्बवतीजय' नाटक भी लिखा था । महर्षि पतञ्जलि ने कंसवध' और बलिबन्धन' नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है । बौद्ध और जैन ग्रन्थों तथा वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में नाटकों के अभिनय के संकेत मिलते हैं ।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल मे हो चुका था, परन्तु महाकवि भास से पूर्व के नाटक उपलब्ध नहीं हैं । भास से लेकर आधुनिक युग तक के संस्कृत नाटकों की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही है । इस धारा को हम पाँच युगों में बाँट सकते हैं—

१. विकास युग, २. पूर्ण विकास, ३. ह्रासोन्मुखता, ४. ह्रास का युग, ५. पुनर्जागरण ।

१. **विकास युग**—संस्कृत के जो सबसे प्राचीन उपलब्ध नाटक हैं, उनके रचयिता भास हैं । इनके नाटकों की खोज करने का श्रेय टी० गणपति शास्त्री को है । १९०९ ई० मे इन्होंने त्रावणकोर के पद्मनाभपुरम् के समीप मनलिक्करमाथम नामक स्थान से इन पाण्डुलिपियों को प्राप्त किया था । भास की ये कृतियाँ पाँचवीं

---

१. वादयन्ती तथा शान्तिं लासयन्त्यापि चापरे ।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ॥ रामायण २.६९.४ ॥

चौथी शताब्दी ई० पू० की निर्धारित की गयी हैं इनके १३ नाटक हैं—प्रतिज्ञायोगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त, उरुभङ्ग, दूतवाक्य, पञ्चरात्र, बालचरित, दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यम व्यायोग, प्रतिमानाटक, अभिषेक नाटक, अविमारक और चारुदत्त। 'मृच्छकटिक' नामक प्रकरण के रचयिता शूद्रक भास के उत्तरवर्ती हैं। इनका समय २-३ सरी शताब्दी ईसा पूर्व समझा जाता है। इनकी अधिकारिकता विवादग्रस्त है।

भास और शूद्रक को विकास युग के नाटककार कहा जा सकता है। इनके रूपक विकसित नाट्यकला को प्रदर्शित करते हैं।

२. पूर्ण विकास—संस्कृत नाट्य परम्परा में कालिदास की रचनाएँ नाट्यकला के पूर्ण विकास को परिलक्षित करती हैं। भाषा, कला और भावों की दृष्टि से ये रचनाएँ अद्वितीय है। इनके तीन नाटक हैं—'मालविकाग्निमित्र' 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञानशाकुन्तल। इनमें भी 'अभिज्ञानशाकुन्तल' सबसे श्रेष्ठ है। कालिदास के पश्चात् सबसे अधिक उल्लेखनीय नाटककार अश्वघोष हैं। ये बौद्ध थे और ईसा की प्रथम शताब्दी में कनिष्क के राजकवि थे। सन् १९१० में प्रो० लूडर्स ने मध्य एशिया के तूरकान नामक स्थान से इनके तीन रूपकों की खोज की। इनमें एक तो नौ अंक का 'शारिपुत्रप्रकरण' है तथा अन्य दो अपूर्ण हैं। इनके नाम भी विदित नहीं हो सके हैं।

इनके पश्चात् शताब्दियों तक या तो नाटकों की रचना हुई ही नहीं थी या उस समय के नाटक उपलब्ध नहीं हैं। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ म वर्धन सम्राट् हर्ष (६०६ ई० से ६४८ ई० तक) ने तीन रूपकों की रचना की। इनमे 'नागानन्द' एक नाटक है, जिस पर बौद्ध प्रभाव परिलक्षित होता है। 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' नाम की दो नाटिकाएँ हैं। इनकी रचना पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। हर्ष के पश्चात् विशाखदत्त अपने ही प्रकार के विशिष्ट कवि हैं। इनका मुद्राराक्षस' संस्कृत के अन्य नाटकों की परम्परा स सर्वथा भिन्न है। किसी 'प्रणय-कथा' को अपनी कथावस्तु का आधार न बनाकर विशाखदत्त ने चाणक्य-चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित राजनीतिक घटना को आधार बनाकर नाटक की रचना की।

इस युग के नाटककारों में अन्तिम नाटककार भवभूति हैं। इनकी तीन रचनाएँ—'मालतीमाधव', 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' हैं। संस्कृत नाटककारों में भवभूति को कालिदास के पश्चात् द्वितीय स्थान दिया जाता है, कई समालोचक तो इनको कालिदास से भी श्रेष्ठ नाटककार मानते हैं। भवभूति के नाटकों में भावप्रवणता का अतिशय है; अतः नाटकीय संविधान और अभिनेयता की दृष्टि से कमजोर होते हुए भी भवभूति को भावप्रवणता के कारण संस्कृत नाटककारों में प्रथम पंक्ति में स्थान दिया गया। भवभूति ने 'रामायण' की दुःखान्त घटना को 'उत्तररामचरित' में सुखान्त में परिणत कर दिया। इन्हीं का अनुसरण दिङ्नाग ने 'कुन्दमाला' नाटक में किया।

३–ह्रासोन्मुखता— भवभूति के पश्चात् संस्कृत में जिन नाटकों की रचना हुयी, उनमें न तो शूद्रक एवं विशाखदत्त के समान मौलिकता और जनाभिव्यक्ति रही और न ही कालिदास, हर्ष, भवभूति आदि के समान नाट्यकुशलता, काव्यप्रतिभा और भावप्रवणता ही रही, इनके नाटकीयत्व और अभिनेयत्व की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक रही। तथापि गुणों की दृष्टि से ये नाटक पूर्णतः अग्राह्य भी नहीं हैं। इस युग का प्रारम्भ भवभूति के पश्चात् भट्टनारायण से ही हो गया था तथा मुरारि और राजशेखर तक यह ह्रास की प्रक्रिया पूर्ण हो गयी।

भट्टनारायण का 'वेणीसंहार गौड़ी शैली में रचित है। यद्यपि नाटक का कथानक सुन्दर है और पदो के चयन मे काव्य-प्रतिभा व्यञ्जित होती है, तथापि अभिनेयता की दृष्टि से ये अधिक सफल नहीं हैं। कवि की कृत्रिम शैली और नाटकीय सिद्धान्तों के अक्षरशः पालन की प्रवृत्ति ने नाटकीय प्रभाव को उत्पन्न करने में बाधा उपस्थित की है।

मुरारि का 'अन घराघव' ह्रासोन्मुखता की प्रवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण है। यह नाटक एक प्रकार से श्रव्य काव्य ही है। सात अकों का यह विशाल कलेवर नाटक लम्बे वर्णनों एवं श्लोकों की विशाल संख्या (५४० श्लोक) के कारण पग-पग पर नाटकीय गति का अवरोध करता है।

राजशेखर ने मुरारि का अनुकरण करके इस ह्रासोन्मुखता को और भी पूर्ण कर दिया। इनके चार नाटक प्रसिद्ध हैं—'बालरामायण' 'बालभारत', कर्पूरमञ्जरी और विद्धशालभञ्जिका'। 'बालरामायण' और बालभारत' को विशालता की दृष्टि से 'विशालरामायण' और 'विशाल भारत' कहना उपयुक्त होगा। राजशेखर ने लम्बे वर्णनों तथा शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा जैसे बड़े छन्दों की विशाल संख्या से सहृदयों के धैर्य की परीक्षा लेने का जैसे सकल्प कर लिया था। 'बालरामायण' की रचना से असप्रन्न कुछ समालोचकों ने तो 'बालभारत' की अपूर्णता पर प्रसन्नता प्रकट की है।

१०वीं शताब्दी में कृष्णमिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय की रचना करके इस ह्रासोन्मुखता की परिपूर्ण किया। इसमें इन्होंने अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके सहृदयों को नाटक के प्रमुख उद्देश्य मनोरञ्जन से वञ्चित किया, कृष्णमिश्र की इस प्रवृत्तिरूपात्मक (Allegorical) नाट्य शैली का अनुकरण यशपाल ने 'मोहपराजय' में और कर्णपूर ने 'चैतन्यचन्द्रोदय' में किया।

४. ह्रास का युग—इस युग के पश्चात् संस्कृत में बहुत कम नाटकों की रचना हुई। इस में युग जो नाटक लिखे गये, वे गुणों की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय नहीं हैं। बारहवीं शताब्दी से लेकर ब्रिटिश साम्राज्य की भारत में स्थापना तक के समय को नाट्य रचना की दृष्टि से बंजर काल कहा जा सकता है। इस युग में संस्कृत में ही नहीं, अपितु अन्य भारतीय भाषाओं में भी बहुत कम नाटकों की

रचना हुई। कीथ, इन्दुशेखर आदि विद्वानों ने इस युग में नाटक रचनाओं के ना होने के कारणों का विशद् विवेचन किया है।

४. **पुनर्जागरण**—भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद नाटकों की रचना का क्रम पुनः आरम्भ हुआ। इस युग में नाटकों की रचना होती रही, १८वीं और १९वीं शताब्दी तक संस्कृत में जो नाटक लिखे गये, उन पर प्राचीन रूढ़ियों का अधिक प्रभाव रहा। १९वीं शताब्दी में हिन्दू जन में राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति ने साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया। जिसका प्रभाव नाटक रचना पर भी पड़ा। इस युग में भारतीय भाषाओं में सामाजिक आलोचना, ऐतिहासिक पुनर्जागरण और धार्मिक पुनरुत्थान को अभिव्यक्त करने वाले नाटकों की रचना प्रारम्भ हुयी थी। परन्तु इस समय तक संस्कृत सामान्यजन से बहुत दूर हो गयी थी; अतः संस्कृत में या तो नाटक लिखे ही नहीं गये, अपितु जो लिखे भी गये वे प्राचीन रूढ़ियों से ग्रस्त थे। पं० अम्बिकादत्त व्यास का नाटक 'सामवतम्' इसका एक उदाहरण है, इसके बाद इस युग में नवीन चेतना को भरने वाले तथा नाटकीय अभिनेयता से युक्त नाटकों की रचना की शृङ्खला प्रारम्भ हो गयी। मूलशकर मणिकलाल याज्ञिक (जन्म १८८६ ई०) का छत्रपतिसाम्राज्यम्' 'प्रतापविजय' और 'सयोगितास्वयम्बर' नाटक तथा हरिदास सिद्धान्त वागीश के (जन्म १८८७ ई०) 'मेवाड़प्रताप', 'बगीयप्रताप', 'विराजसरोजिनी', 'कंसवध', 'जानकीविक्रम' और 'शिवाजीचरित्र' इस वर्ग के नाटक हैं। डॉ० राघवन के 'रासलीला', और 'कामबुद्धि नामक प्रहसन सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं।

२. भास का महत्त्व

संस्कृत कवियों में विशेषकर नाटककारों में भास का बहुत अधिक महत्त्व है, अतिप्राचीन काल से लेखक और कवि भास को उद्धृत करके उनकी प्रशसा करते रहे हैं, भास उपलब्ध तथा विदित संस्कृत कवियों में सबसे प्राचीन हैं, महाकवि कालिदास, बाणभट्ट, गउडवहो के लेखक वाक्पतिराज, प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव, दण्डी और राजशेखर आदि कवियों ने तो भास के प्रति आदर प्रकट किया ही है, काव्यशास्त्रियों ने भी भास को उद्धधृत किया है, अभिनवगुप्त की 'अभिनव-भारती टीका', 'नाट्यदर्पण', 'भावप्रकाशन' शृङ्गारप्रकाश' आदि ग्रन्थों में भास को उद्धृत किया गया है। 'पृथ्वीराजविजय' की टीका में भास और व्यास की प्रतिस्पर्धा का उल्लेख है।

भास के सम्बन्ध में कुछ प्राचीन कवियों के उल्लेख इस प्रकार हैं—

(१) कालिदास—

"प्रतिथयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य
कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः" ॥ (मालविकाग्निमित्र प्रस्तावना ॥

अर्थात् प्रसिद्ध यशस्वी भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि की रचनाओं का अतिक्रमण करके वर्तमान कालीन कवि कालिदास की रचनाओं के प्रति लोग आदर कैसे करेंगे। इसका अभिप्राय है कि कालिदास के समय में भास एक नाटककार के रूप में प्रचुर यश प्राप्त कर चुके थे।

(२) बाणभट्ट—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः,
सपताकैर्यशो लेभेभासोदेवकुलैरिव ॥ (हर्षचरित)

बाणभट्ट ने भास के नाटकों की प्रशंसा की है कि इनका आरम्भ सूत्रधार द्वारा होता है, इनकी विस्तृत भूमिका होती है, इनमें पताका नामक कथा अवश्य होती है, इससे विदित होता है कि बाण के समय नाटककार के रूप में भास की बहुत प्रसिद्धि थी,

(३) वाक्पतिराज—

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुआरे,
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हरिअन्दे अ आणन्दो" (गउडवहो)

वाक्पतिराज ने भास के नाटकों की समालोचना मे इस कवि को 'ज्वलनमित्र' कहा है। अर्थात् इसके नाटकों में अग्निदाह का वर्णन बहुत सुन्दर किया गया है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में लावणकदाह का दृश्य प्रस्तुत करके और उसमें वासवदत्ता के जल जाने की अफवाह फैलाकर ही उदयन का पद्मावती के साथ विवाह सम्पन्न हुआ था।

(४) जयदेव—

यस्याश्चारश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलास ।
हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बिबणाः ।
केषी नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ (प्रसन्नराघव)

प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव भास के नाटकों से बहुत प्रभावित थे तथा उन्होंने भास को कविता रूपी कामिनी का हास कहा है, भास के नाटकों में हास्य रस की अभिव्यक्ति भी बहुत मनोहारी रूप से हुई है।

(५) राजशेखर—

'भास नाटकचक्रेऽस्मिन्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ (काव्यमीमांसा)

राजशेखर महाकवि भास के बहुत प्रशंसक रहे, विशेष रूप से 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के। उन्होंने लिखा है कि समीक्षकों की समीक्षा रूपी अग्नि में डाले जाने पर जबकि अन्य नाटक दोष रूपी अग्नि में जल गये, 'स्वप्नवासवदत्तम्' दोष रहित रमणीय नाटक होने से अग्नि द्वारा जलाया न जा सका।

इन सब प्रसंगों से विदित होता है कि भास अतिप्राचीन काल से एक सफल

नाट्यकार के रूप में समाहित रहे, वस्तुतः भास ने मानवीय मनोभावों, विकारों तथा प्रकृति के नानारूपों का जो सुन्दर चित्रण किया है, वह अनुपम है। उन्होने समाज का यथार्थ चित्रण भी प्रस्तुत किया है। वे एक ओर तो मानवीय आन्तरिक प्रकृति के कुशल चितेरे हैं तथा दूसरी ओर प्रकृति और समाज का यथार्थ निदर्शन करने वाले भी हैं, इसके साथ ही उनके नाटकों की नाटकीय विशेषताए भी बनी हुई हैं, जिससे कि इनका अभिनय सहृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करने में अतिसक्षम है। इन नाटकों का अभिनय सीमित समय में रंगमंच पर सरलता से किया जा सकता है। यही कारण है कि एक नाटककार के रूप में भास ने अतिप्राचीन काल से कवियों के मध्य बहुत अधिक आदर और स्नेह प्राप्त किया।

३. भास का समय

संस्कृत के प्राचीन अन्य कवियों के समान ही भास ने अपने व्यक्तित्व व समय के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा, तथापि आधुनिक समालोचकों ने अन्तरंग व बाह्य प्रमाणों के आधार पर भास का समय निर्धारित करने का प्रयास किया है। भास के समय के सम्बन्ध में अनेक मन्तव्य प्रस्तुत किये गये हैं—पुसलकर के अनुसार ये निम्नलिखित हैं—

(१) भिडे, दीक्षितार, गणपतिशास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री, खुपेरकर, किरत और टटके =६ठी–४थी शताब्दी ई० पू०
(२) जागीरदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधरी ध्रुव एवं जायसवाल =तीसरी शताब्दी ई० पू०
(३) कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सोली एवं बेलर =दूसरी शताब्दी ई० पू०
(४) बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, जेकावी, जोली एवं कीथ तीसरी शताब्दी ई० पू०
(५) लेस्नी और विण्टरनिट्ज =चौथी शताब्दी ई० पू०
(६) शङ्कर =पाँचवी–छठी शताब्दी ई०
(७) बार्नेट, देवधर, हीरानन्द शास्त्री, निरुरकर, पिशरोटी, और सरस्वती =सातवीं शताब्दी ई०
(८) काने और कुन्हन राजा =नवीं शताब्दी ई०
(९) रामवतार शर्मा =१०वीं शताब्दी ई०
(१०) रेड्डी शास्त्री =११वीं शताब्दी ई०

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है, अनेक प्राचीन कवियों और समीक्षकों ने भास का उल्लेख किया है; जैसे कि कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, जयदेव आदि; अतः भास को इन सबसे पूर्ववर्ती होना चाहिये, परन्तु जब इन प्राचीन कवियो का समय निश्चित नहीं है, तो भास का समय कैसे निश्चित हो सकेगा। इन सब में कालिदास सबसे प्राचीन हैं; अतः हम भास को कालिदास से पहले का तो मान ही

सकते हैं। कालिदास के समय के सम्बन्ध में अनेक मत हैं, जिनमें कि दो अधिक मान्य हैं—

(१) कालिदास गुप्त काल में, चौथी-पाँचवीं शताब्दी में हुए।

(२) कालिदास ई० पू० प्रथम शताब्दी में हुए, जब कि विक्रम संवत् का प्रवर्तन हुआ था।

यदि कालिदास को ४थी शताब्दी का मानते हैं तो भास को ४थी शताब्दी का या उससे पूर्व का मानना होगा। यदि ई० पू० प्रथम शताब्दी का मानते हैं, तो उससे पूर्व का मानना होगा। भारतीय परम्पराए तो कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० पू० का मानती हैं।

भास ने अपने नाटकों में अवन्ती के राजा चण्ड प्रद्योत, कौशाम्बी के उदयन और मगध के दर्शक राजाओं का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त काशी, बङ्ग, सौराष्ट्र, मिथिला, शूरसेन आदि का उल्लेख आता है; अतः उनका समय इनके बाद का होना चाहिये। ये राज्य गौतम बुद्ध के समय के षोडश महाजनपदों में थे; अतः इनका समय छठी शताब्दी ई० पू० के बाद का नहीं हो सकता, भास ने मगधराज दर्शक की राजधानी राजगृह बतायी है, जबकि अजातशत्रु के समय में यह पाटलिपुत्र हो गयी थी; अतः भास उनसे पहले के हैं। इस प्रकार भास के समय को हमें छठी शताब्दी ई० पूर्व के बाद तथा चतुर्थ शताब्दी ई० पूर्व से पहले का मानना चाहिये। इस आधार पर भास के समय का निर्धारण अधिक उचित होगा। इस समीक्षा को दृष्टि में रखकर भास के समय के विषय में तीन मतों की समीक्षा की जा रही है—

(१) **सातवीं शताब्दी ई०**—बार्नेट आदि समीक्षकों का कथन है कि भास नाम से कहे जाने वाले नाटकों का रचयिता कौन भास है। इस विषय पर विचार करना आवश्यक है, इनकी रचना दक्षिण के महेन्द्रविक्रमवर्मा के 'मत्तविलास' से मिलती है। अतः उसी की राजसभा के किसी कवि ने, जिसका नाम भास था, इनकी रचना की है; कवि ने केरल के ही किसी राजा को 'राजसिंह' के नाम से संकेतित किया है।

परन्तु यह मत तर्क के विपरीत है। भास ने राजसिंह के राज्य की स्थिति हिमालय और विन्ध्य के मध्य कही है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने भास को "प्रथितयशस्" कहा है, जो निश्चय से ही उससे पहले के हैं; अतः भास को सातवीं शताब्दी ई० का मानने का कोई औचित्य नहीं है।

(२) **दूसरी-तीसरी शताब्दी ई०**—इस मत का प्रतिपादन भण्डारकर, याकोबी, कीथ आदि विद्वानों ने किया है और उसका आधार कालिदास का समय है। कीथ ने कालिदास का समय ४०० ई० के लगभग माना है और उनसे कुछ ही समय पहले भास हुए होंगे। अश्वघोष के एक पद्य की छाया 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में

मिलती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भी एक श्लोक अविरल रूप से 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में है[1]। अश्वघोष का समय प्रथम-दूसरी शताब्दी ई० का है; अतः भास को तीसरी शताब्दी ई० का माना जा सकता है।

परन्तु इस कथन में अधिक बल नहीं है। पहली बात तो यह है कि कालिदास चतुर्थ शताब्दी में हुए, इसको भारतीय परम्पराएं नहीं मानतीं। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि अश्वघोष ने ही भास के श्लोक की छाया ग्रहण की हो। भास के नाटक 'चारुदत्त' को आधार बनाकर शूद्रक ने 'मृच्छकटिकम्' प्रकरण की रचना की थी,। शूद्रक का समय दूसरी शताब्दी ई० पू० माना गया है।

(२) **पञ्चम-चतुर्थ शताब्दी ई० पू०**—अधिकांश विद्वानों ने भास का समय पञ्चम-चतुर्थ या चतुर्थ शताब्दी ई० पू० माना है। इनमें टी० गणपति शास्त्री, पुसलकर, हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वान् प्रमुख हैं। इसके सम्बन्ध में निम्न युक्तियाँ दी जाती हैं—

(क) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वीर पुरुषों के उद्बोधन के लिए कहे गये दो श्लोकों में से एक श्लोक भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में है।[2] यह श्लोक कौटिल्य ने ही भास से लिया होगा। चन्द्रगुप्त के प्रधानमन्त्री कौटिल्य का समय ४०० ई० पू० का है; अतः भास उससे पहले हुए होंगे।

(ख) 'प्रतिमानाटक' में भास ने अनेकों विद्याओं का रावण के मुख से उल्लेख किया है। इनका अध्ययन उस युग में कराया जाता था।[3] उस समय साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन किया जाता था। मानवीय धर्मशास्त्र था। 'मानवीय धर्मशास्त्र' को 'मनुस्मृति' का पूर्वरूप, जिसके आधार पर 'मनुस्मृति' की रचना हुई थी, कहा जाता है। दोनों के प्रतिपादनों में कुछ भिन्नता होने से ये एक नही हैं। 'मनुस्मृति' को दूसरी शतब्दी की रचना माना गया है। 'माहेश्वर' योगशास्त्र महेश्वर की रचना थी। इससे प्रतीत होता है कि पतञ्जलि (दूसरी शताब्दी ई० पू०) का योगदर्शन उस समय नहीं था।

---

१. (क) काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानात्, भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां, मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥
प्रतिमा० १.१८

(ख) काष्ठं हि मन्थन् लभते हुताशं, भूमिं खनन् विन्दति चापि तोयम्।
निबन्धिनः किञ्चन नाप्यसाध्यं, न्यायेनयुक्तं च कृतं च सर्वम्''
बुद्धचरित ॥१३.६०

२. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
त अस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न गच्छेत्॥
अर्थशास्त्र १०/३ तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४/२॥

३. साङ्गोपाङ्गं, वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।
प्रतिमानाटक पञ्चम अंक। पृ० १५१

'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' बृहस्पति की रचना थी। इससे प्रतीत होता है कि उस समय कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी नहीं लिखा गया होगा। 'प्राचेतस श्राद्धकल्प, श्राद्ध विषय पर लिखा ग्रन्थ था। यह अति प्राचीन ग्रन्थ था, जो अब उपलब्ध नहीं है। मेधातिथि का न्यायशास्त्र भी अति प्राचीन रहा होगा। इन सबमें भास का समय चतुर्थ शताब्दी का प्रारम्भ या उसके कुछ समय पूर्व का निर्धारित होता है।

(ग) भास ने पाणिनीय व्याकरण के नियमों की अनेक स्थानों पर अवहेलना की है। इससे प्रतीत होता है कि उसके समय तक पाणिनीय व्याकरण या तो बना ही नहीं था या उसका प्रचार नहीं हुआ था। पाणिनि उपवर्ष के शिष्य थे, जो नन्दवंश के समय में पाटलिपुत्र में पढ़ाते थे; अतः भास को उनके पूर्व का या समकालीन होना चाहिये। यह समय चन्द्रगुप्त मौर्य (चतुर्थ शताब्दी) से पूर्व का है।

(घ) भास के नाटकों में 'भरत नाटचशास्त्र' के नियमों का पूर्ण पालन नहीं है। भरत ने रंग-मंच पर युद्ध, वध, आक्रमण, मृत्यु आदि का निषेध किया है, परन्तु भास के नाटकों में ये घटनाएँ रंग-मंच पर प्रदर्शित की जाती हैं। नाटकों का रचना संविधान भी कुछ भिन्न है; अतः भास की रचनाएँ 'भरत-नाटचशास्त्र' से पूर्ववर्ती है। भरत का समय दूसरी-तीसरी शताब्दी ई० पू० का माना गया है।

(ङ) कालिदास ने भास का उल्लेख करते हुए उनको सौमिल्ल और कविपुत्र से पहले रखा है (भासमौमिल्लकविपुत्रादीनाम्)। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास से पूर्व कविपुत्र, उनके पूर्व सौमिल्ल और उनसे पूर्व भास हुए होंगे; अतः भास को कालिदास से क्रम से दो शताब्दी पूर्व का मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(च) भास के 'चारुदत्त' नाटक को शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' नाम से परिष्कृत और पूर्ण किया था। शूद्रक का समय दूसरी शताब्दी ई० पू० है। भास को उनसे पहले का होना चाहिये।

(छ) भास के नाटकों में मुख्य रूप से तीन ऐतिहासिक व्यक्ति हैं---कौशाम्बी के उदयन, अवन्ती के चण्ड प्रद्योत और मगध के दर्शक। स्मिथ के अनुसार इनका समय छठी शताब्दी ई० के बाद का नहीं है।[1] इससे भी भास को चतुर्थ शताब्दी का मानने में बाधा नहीं है।

(ज) भास के नाटकों में जिस सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण की सृष्टि की गयी है, वह बहुत कुछ मौर्य काल की है। इसके आधार पर पुसलकर ने उसको निश्चित रूप से चतुर्थ शताब्दी का माना है।[2]

(झ) भास की रचनाओं से प्रतीत होता है कि वे चन्द्रगुप्त के राज्य काल में ही रहे होंगे। उनकी उपमाओं में चन्द्र का उल्लेख बहुत अधिक है।[3] उनमें गुप्त

१. Early History of India--Vicent Smith P. 38, 39, 41.

२. Bhasa-A Study पृ० ६७-६८।

३. (क) नवशशिनमिवार्य पश्यतो मे न तृप्तिः—प्रतिमानाटक ७.१२।

(ख) अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम्॥
--प्रतिमानाटक ७.१४।

पद का भी प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है।[1] भास ने जिस राजसिंह द्वारा पृथिवी का पालन करने की घोषणा की है। वह सम्भवत: चन्द्रगुप्त ही है।[2] चन्द्रगुप्त का राज्य उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्य तक था। विन्ध्य के दक्षिण में तो चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारियों ने राज्य का विस्तार किया था।

ऊपर कहे गये हेतुओं के आधार पर भास का समय उस समय का निर्धारित किया जा सकता है, जबकि उसके राज्य के प्रारम्भिक वर्ष थे। चन्द्रगुप्त लगभग ३२२ ई० पू० में राज सिंहासन पर बैठा था; अत: भास को चतुर्थ शताब्दी ई०पू० का माना जाना चाहिये।

४. भास का व्यक्तित्व

भास के जीवन-वृत्त के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से जानकारी नहीं है। इनके परिवार, माता-पिता, शिक्षा, स्थान आदि के सम्बन्ध में किसी प्रश्न का उत्तर प्राप्त नहीं होता। प्राचीन साहित्य में उनके जो उद्धरण मिलते हैं, वे भी किसी बात को स्पष्ट नहीं करते। तथापि उनके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ अवश्य प्रचलित हैं।

एक दन्त कथा के अनुसार वे जाति के धोबी थे। दूसरों के अनुसार 'घटकर्पर' काव्य की रचना उन्होंने ही की थी और वे विक्रम की राजसभा के रत्न थे, परन्तु ये दोनों ही बातें सत्य के विपरीत प्रतीत होती हैं। भास के नाटकों से स्पष्ट है कि वे धर्मपालक ब्राह्मण थे। कालिदास से पूर्व होने के कारण उनको विक्रमादित्य की सभा का रत्न घटकर्पर भी नहीं माना जा सकता।

राजशेखर ने लिखा है कि भास के नाटकचक्र को जब अग्नि में डाल दिया तो उनका 'स्वप्नवासवदत्तम्' नहीं जला। अर्थात् सभी कामों की दृष्टि में यह सर्वश्रेष्ठ था। 'पृथ्वीराजविजय' के अनुसार व्यास और भास में श्रेष्ठता के लिए होड़ लगी। परीक्षा के लिए दोनों के ग्रन्थों को अग्नि में डाल दिया गया। व्यास के ग्रन्थ तो जल गये, परन्तु भास का ग्रन्थ बच गया।

भास के ग्रन्थों के अन्त: साक्ष्य को आधार बना कर पुसलकर ने उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कुछ तथ्य उद्घाटित किये हैं। व्यास ने ब्राह्मण धर्म का पालन किया है। वर्ण व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था के वे पोषक थे और श्राद्ध-परम्परा के अनन्य भक्त। विष्णु के वे उपासक थे तथा अवतारवाद को मानते थे। राम और कृष्ण को उन्होंने विष्णु का अवतार माना है। वे उत्तम गृहस्थ धर्म के पालन को भी महत्त्व देते थे। राजनीति तथा युद्ध के विषय के सक्षम जानकार थे।

---

१. (क) सम्प्राप्ता हरिवर बाहुसम्प्रगुप्ता: ॥ अभिषेक नाटक १.७

(ख) मयि च नीतिगुप्ते——अविमारक पृ० १२

(ग) एकचक्रामि गुप्ताम्——अविमारक पृ० १

२. इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंह: प्रशास्तु न: ॥

भास ने भारत में सुशासन और एकता को महत्त्व दिया है। बिना राजा के प्रजा की सुरक्षा नहीं हो सकती। भास ने छोटे-छोटे राज्यों के अस्तित्व को पसन्द नहीं किया। वे एकच्छत्र विशाल साम्राज्य की कल्पना करते थे, जिससे प्रजाएँ शक्तिशाली राज्य में रह कर सुखी और समृद्ध हो सकें तथा विदेशी आक्रमणों के भय से मुक्त रहें।

५. भास की रचनाओं की पुन: उपलब्धि और प्रकाशन

प्राचीन संस्कृत साहित्य में भास के नाटकों का आदर के साथ उल्लेख हुआ है, परन्तु किसी नाटककार ने उनके नाटकों की संख्या और नाम नहीं दिये। केवल राजशेखर ने 'भासनाटकचक्र' तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक का उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि भास ने अनेक नाटक लिखे थे और राजशेखर के समय वे उपलब्ध थे। इनमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' को सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया था, परन्तु वर्तमान युग में जबकि संस्कृत साहित्य के अध्ययन का नव जागरण हुआ तो भास के नाटक उपलब्ध नहीं थे। वे लुप्त हो चुके थे और उनके नाम का भी पता नहीं था। अय्यर महोदय का कहना है कि मुस्लिम शासन ही इसका सम्भावित कारण है।[1]

तथापि संस्कृत विद्वान् और अन्वेषक भास के नाटकों की खोज में लगे रहे। सन् १९०९ में पं० टी० गणपति शास्त्री को कन्याकुमारी अन्तरीप से लगभग २० मील दूर पद्मनाभपुरम् के समीप मलकिक्कुरमथम् नामक स्थान पर ताड़ पत्रों पर प्राचीन मलयालम लिपि में निम्नलिखित नाटक मिले—

स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार, उरुभङ्ग और दूतवाक्य। इसके अनन्तर कैलासपुरम् स्थान से 'प्रतिमानाटक' और 'अभिषेकनाटक' की पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हुईं। इन नाटकों की ही कुछ अन्य पाण्डुलिपियाँ अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुईं, परन्तु ये सभी पाण्डुलिपियाँ मलयालम लिपि में थीं। पं० गणपति शास्त्री ने इनको त्रिवेन्द्रम की "अनन्तशयनम् ग्रन्थमाला" से प्रकाशित कराया और इनको भासकृत बताया, परन्तु उसी समय से इन नाटकों की प्रामाणिकता विवादास्पद बन गयी। सन् १९४१ में काठियावाड़ के गोंडल नामक स्थान से 'यज्ञफलम्' की पाण्डुलिपि मिली, जिसको भासकृत कहा गया, परन्तु इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध ही रही और अधिकांश विद्वानों ने इसको भासकृत नहीं माना तथा भास के १३ नाटक ही उपलब्ध माने गये।

६. भास के नाटकों की प्रामाणिकता

टी० गणपति शास्त्री ने जिस समय इन १३ नाटकों को प्रकाशित किया और इनको भासकृत कहा, तभी से इनकी प्रामाणिकता समीक्षकों के लिए विवाद का

---

१. A. s. p. Ayyr : Bhara–पृ० १४।

विषय बन गयी। अनेक विद्वानों--- पुसलकर[1], कीथ[2] और अय्यर[3] ने इनको भासकृत माना, परन्तु अनेक विद्वानों ने इसको भास की रचना के मानने को अप्रामाणिक कहा। इन नाटकों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध के निम्न वर्ग मान सकते हैं[4]---

१. भास के नाम से प्रकाशित नाटक भास के नाटकों का संक्षिप्त रूप हैं।

२. इन नाटकों के कुछ अंश भास के हैं तथा कुछ अंश अन्य कवियों के।

३. 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक भास के हैं तथा शेष अन्य कवियों के हैं।

४. सभी १३ नाटक पूर्णरूप से भास के नहीं हैं।

५. संक्षिप्त सभी नाटक पूर्ण रूप से भास के हैं।

इन सभी मतों की संक्षिप्त समीक्षा उचित होगी---

१. कुछ विद्वानों का कथन है कि संस्कृत के प्राचीन अलङ्कार ग्रन्थों में भास के नाम से जो उद्धरण दिये गये हैं, उनमें अनेक इन नाटकों में नहीं हैं; अतः केरल के कवियों और नटों ने रंगमच पर अभिनय करने के लिए इनको सक्षिप्त कर लिया होगा।

परन्तु इस तर्क में कोई विशेष बल नहीं है। भास के नाम से २३--३० नाटकों की प्रसिद्धि है। सम्भव है कि ये उद्धरण उन नाटकों के हों, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुए। यह भी हो सकता है कि किसी काव्यशास्त्री ने अन्य की रचना भूलवश भास के नाम से उद्धृत कर कर दी हो।

२. कुछ विद्वानों का मत है कि इन प्रकाशित १३ नाटकों में से कुछ अंश भासकृत हैं तथा अन्य अंश अन्य कवियों की कृति हैं, परन्तु उसका कोई प्रमाण ये समीक्षक नहीं दे पाते हैं। भास के सभी नाटकों की रचना मौलिक रूप से भाषा शैली आदि की दृष्टि से ही कवि की है।

३. सुकथङ्कार आदि विद्वानों के अनुसार 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' और 'स्वप्न-वासवदत्तम्' भास के हैं तथा शेष अन्य कवियों के हैं। इन्हीं नाटकों के उद्धरण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में हैं, परन्तु यह कथन किसी ठोस प्रमाण के आधार पर नहीं है। उपलब्ध सभी १३ नाटकों की भाषा, शैली, नाटक-रचना-प्रक्रिया एक ही कवि की है।

४. कुछ विद्वान् इन सभी नाटकों को भास की कृति न होना सिद्ध करते हैं। सिलवी लेवी, विण्टरनिट्ज, देवधर आदि का यही मत है। इनके अनुसार ये नाटक

---

१. A. D. Pusalkar : Bhas, A Study.

२. Dr. A. B. Keith : The Sankrit Drama.

३. A. S. P. Ayyer : Bhasa.

४. डॉ० हरिदत्त शास्त्री : संस्कृत काव्यकार पृ० ३।

केरल में उपलब्ध हुए हैं, जहाँ कि चाक्यार जाति के नट इनका अभिनय करते थे और उन्हीं नट कवियों की ये रचनाएँ हैं।

इनकी युक्तियाँ निम्न हैं—

(क) इन नाटकों की प्रस्तावना में कहीं भी भास का नाम नहीं है।

(ख) ये नाटक केवल दक्षिण में केरल प्रदेश में ही प्राप्त होते हैं। भासकृत होते तो अन्यत्र भी प्राप्त होते।

(ग) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' के जो उद्धरण मिलते हैं, वे वर्तमान प्रकाशित नाटक में नहीं हैं।

(घ) चण्डप्रद्योत की पत्नी अङ्गारवती के व्यक्तित्व में प्राचीन नय्यर स्त्री के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' में विवाह के लिए सम्बन्ध शब्द का प्रयोग है, जो केरल में प्रचलित है।

परन्तु ये तर्क सबल नहीं है। नाटक की प्रस्तावना में कवि का नाम देने का प्रचलन भरत के बाद का है, जबकि भास उनसे प्राचीन हैं; अतः भास ने अपना नाम नहीं दिया होगा। उत्तरी भारत में मुसलमानों का अधिक प्राबल्य रहा, जिससे यहाँ ये नष्ट हो गये। सुदूर केरल मे इनकी कुछ सुरक्षा हो सकी थी। रीति ग्रन्थों में उद्धरणों का वर्तमान प्रकाशित संस्करणों में न पाया जाना, इसका ऊपर उत्तर दिया जा चुका है। हो सकता है कि प्रतिलिपि कर्त्ता की भूल के कारण वे रह गये हों। केरल की संस्कृति बहुत कुछ इन नाटकों से भिन्न है; जैसे कि केरल में परिवार मातृप्रधान हैं। जबकि इन नाटकों में पितृप्रधान सामाजिक तथा पारिवारिक व्यवस्था है। दूसरी बात यह है कि चाक्यार केवल नट थे, कवि नहीं। उनमें काव्य रचना की इतनी प्रतिभा नहीं थी। उनके द्वारा रचित अन्य कोई भी नाट्यरचना इन नाटकों जैसी उच्चकोटि की नहीं है। भास ने जो प्रकृति-चित्रण किया है तथा वस्तुओं का वर्णन किया है, उनमें केरलीय वस्तुओं—जैसे कालीमिर्च आदि मसालों, नारियल का तेल आदि का वर्णन नहीं है।

५. ये सभी नाटक भास की रचनाएँ हैं। प्रायः अधिकांश समीक्षकों ने इस मत को स्वीकार कर लिया है। कीथ, पुसलकर, तेलङ्ग आदि विद्वानों ने इस विषय में टी० गणपति शास्त्री का मत स्वीकार कर लिया है। इन नाटकों को भासकृत मानने में निम्न युक्तियाँ दी जा सकती हैं—

(क) प्राचीन कवियों और समीक्षकों ने भास की जो विशेषताएँ कही हैं। वे इन सभी नाटकों में मिलती हैं। बाण ने इनकी तीन विशेषताएँ कही हैं—सूत्रधार द्वारा आरम्भ करना, पात्रों का अधिक संख्या में होना और पताका (प्रासङ्गिक कथानक) होना। ये सभी बातें भास के नाटकों में हैं। राजशेखर के कथन के अनुसार इन तेरहो नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' सर्वश्रेष्ठ है। वाक्पतिराज के अनुसार भास ज्वलनमित्र हैं। उनमें अग्निकाण्ड का उल्लेख अनेक बार हुआ है। जयदेव के

अनुसार वे कविता कामिनी के हास हैं। भास के नाटकों में हास्य रस की प्रकर अभिव्यञ्जना है।

(ख) प्रकाशित ये सभी नाटक एक ही कवि की रचना हैं; अतः ये भास के हैं। इनमें निम्न युक्तियाँ हैं—

(i) सभी नाटक "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" से प्रारम्भ होते हैं।

(ii) सभी नाटकों में प्रस्तावना को स्थापना कहा गया है।

(iii) सभी नाटकों में नाटककार का नाम नहीं दिया।

(iv) सभी नाटकों का भरत वाक्य—"इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः" से या इससे मिलते-जुलते पदों से समाप्त होता है।

(v) सभी नाटकों में अपाणिनीय प्रयोग प्रचुर संख्या में हैं।

(vi) सभी में आकाशभाषित का प्रचुर प्रयोग है।

(vii) सभी नाटकों में सम्वादों के नाटकीय प्रयोगों में बहुत कुछ समानता है।

(viii) नाटकों में पात्रों के नामों में समानता परिलक्षित होती है; जैसे कि "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" और 'दूतवाक्यम्' के कञ्चुकी का नाम बादरायण है।

'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' 'अभिषेकनाटक' और 'प्रतिमानाटक' की प्रतिहारी का नाम विजया है।

(ix) सभी नाटकों में नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन करने की प्रवृत्ति है। इनमें रंगमंच पर द्वन्द्वयुद्ध, मृत्यु आदि का प्रदर्शन किया गया है।

(x) नाट्यनिर्देश की न्यूनता सभी में है।

(xi) सभी नाटकों में कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग, अलङ्कार, वाक्य आदि की समानता परिलक्षित होती है। "इमाः आपः", "निष्क्रम्य प्रविश्य" आदि प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

(xii) नाटकों में नैतिक आदर्श, सामाजिक विचारधारा, विदेशियों को बाहर निकालने तथा देशरक्षा की भावना, राजनीतिक वातावरण, वर्णाश्रम धम की रक्षा, ब्राह्मण धर्म के प्रति आस्था समान रूप से परिलक्षित होती है।

(xiii) सभी नाटकों की रचना असाधारण कवि-प्रतिभा का परिणाम है, जिनको सामान्य कोटि के लिए लिखना सम्भव नहीं है।

इन सब प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन तेरहों नाटकों के रचयिता महाकवि भास हैं।

७. भास के नाटक और उनका वर्गीकरण

ऊपर यह कहा जा चुका है कि भास के नाम से प्रकाशित १३ नाटक हैं—(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, (२) स्वप्नवासवदत्तम्, (३) प्रतिमानाटकम्, (४) पञ्चरात्रम्, (५) अभिषेकनाटकम्, (६) मध्यमव्यायोगः, (७) कर्णभारम्ः, (८) दूतवाक्यम्,

(९) दूतघटोत्कचम्, (१०) उरुभङ्गम्, (११) बालचरितम्, (१२) अविमारकम्, (१३) दरिद्रचारुदत्तम् ।

१९४१ ई० में राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने 'यज्ञफलम्' नाटक को भास के नाम से प्रकाशित किया था, जिसका कृतित्व बहुत विवादास्पद रहा, किन्तु कुछ समय बाद यह सिद्ध किया गया कि यह भास की रचना नहीं है। मध्य काल में किसी कवि ने इसको भास की ही शैली में लिखकर उसके नाम से प्रसिद्ध किया था। अब भास के १३ ही नाटक उपलब्ध हैं।

इन नाटकों को कवि ने किस क्रम से लिखा होगा इस विषय पर भी समीक्षकों ने विचार किया है। इस सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं —पुसलकर का और अय्यर का। पुसलकर के अनुसार रचना क्रम इस प्रकार है —

दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरुभङ्ग, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, अभिषेकनाटक, बालचरित, प्रतिमानाटक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम् और चारुदत्तम् ।

अय्यर के अनुसार इनका रचनाक्रम निम्न है—

दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यमव्यायोग, उरुभङ्ग दूतवाक्य, पञ्चरात्र, बालचरित, अभिषेकनाटक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक, प्रतिमानाटक, स्वप्नवासवदत्त और चारुदत्त ।

भास के नाटकों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है, अंकों की संख्या के अनुसार और कथास्रोत के अनुसार। अंकों की संख्या इस प्रकार है—

मध्यमव्यायोग, कर्णभार, उरुभङ्ग, दूतवाक्य और दूतघटोत्कच, ये पाँच एकाङ्की नाटक हैं। पञ्चरात्र में तीन अंक हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और दरिद्रचारुदत्त में चार-चार अंक हैं। बालचरितम् में पाँच अंक हैं। स्वप्नवासदत्तम्, अविमारकम् और अभिषेकनाटक में ६-६ अंक हैं। प्रतिमानाटक में ७ अंक हैं।

कथास्रोत के अनुसार वर्गीकरण इस प्रकार है—

१. बृहत्कथा पर आधारित नाटक—प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम् ।

२. रामायण की कथा पर आधारित नाटक—अभिषेक और प्रतिमानाटक ।

३. महाभारत की कथा पर आधारित नाटक—पञ्चरात्र, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुभङ्ग ।

४. कृष्ण की कथा पर आधारित नाटक—बालचरित ।

५. कविकल्पित कथा—चारुदत्त और अविकारक ।

८. प्रतिमानाटक की कथा-वस्तु का अध्ययन

'प्रतिमानाटक' की कथावस्तु का अध्ययन करने के लिए निम्न तथ्यों पर ध्यान देना समुचित होगा, संक्षिप्त कथानक, कथानक के स्रोत, आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक इतिवृत्त, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थाएँ, सन्धियाँ और समय तथा स्थान की अन्विति ।

(क) संक्षिप्त कथानक---

'प्रतिमानाटक' में राम के राज्याभिषेक की तैयारी से लेकर उनके सीता और लक्ष्मण सहित वन जाने, सीता का हरण होने, रावण का वध करके सीता को लेकर राम के वापिस लौटने तथा जनस्थान में उनका राज्याभिषेक होकर अयोध्या की ओर वापिस लौटने तक की कथा है। प्रत्येक अंक का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है--

प्रथक अङ्क--कञ्चुकी और प्रतिहारी की वार्ता से विदित होता है कि राम के राज्याभिषेक की पूरी तैयारियाँ हो चुकी हैं। महाराज दशरथ के आदेश से राज-छत्र, राजसिंहासन, मंगलकलश, चँवर आदि सभी सामग्री तैयार है। महाराज दशरथ अब पुरोहित वशिष्ठ की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी समय अपनी सखियों के साथ हास-परिहास करती हुई सीता आ जाती है। इतने में ही अवदातिका नाम की एक चेटी परिहास में ही नेपथ्यपालिका के यहाँ से वल्कलवस्त्र का जोड़ा चुरा कर ले आती है। उसको देखकर सीता को कुतूहल होता है और वे उसको पहन लेती हैं। इसी समय दूसरी चेटी आकर सूचना देती है कि राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है। एकाएक राज्याभिषेक समारोह के वाद्य बजने बन्द हो जाते हैं। सबको आश्चर्य होता है कि यह क्या बात है। इसी समय राम वहाँ आ पहुँचते हैं। राम प्रसन्न हैं कि उनका राज्याभिषेक होते-होते रुक गया है। इस समाचार से सीता भी प्रसन्न हैं। सीता को वल्कल पहने देखकर राम की भी वल्कल पहनने की इच्छा होती है। कञ्चुकी आकर सूचना देता है कि कैकेयी के कहने से राम का राज्याभिषेक रुका है। उसने भरत के लिए राज्य माँगा है। इससे दुःखी होकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो गये हैं। इसी समय क्रोध से भरे लक्ष्मण भी आ पहुँचते हैं। वे समाचार देते हैं कि भरत के राज्याभिषेक के साथ ही राम को चौदह वर्ष के वनवास का भी आदेश मिला है। लक्ष्मण चाहते हैं कि धनुष का प्रयोग करके राज्य पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया जावे, परन्तु राम उनको शान्त कर वन जाने का निश्चय प्रकट करते हैं। सीता और लक्ष्मण भी वन जाने का निश्चय करते हैं तथा राम इसकी अनुमति देते हैं। वन जाने के लिए वे सब वल्कलवस्त्र पहनते हैं। इसी समय कञ्चुकी आकर और राजा के महान् क्लेश को कहकर, उनको वन जाने से रोकता है, परन्तु राम वन जाने का ही निश्चय करते हैं।

द्वितीय अङ्क--विषकम्भक में सूचना मिलती है कि राम के वन जाने से राजा दशरथ की अवस्था शोचनीय हो गयी है। कौशल्या और सुमित्रा उनको सान्त्वना देती हैं। तदनन्तर राजा दशरथ राम के लिये अनेक प्रकार से विलाप करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वे मूर्च्छित हो जाते हैं तथा पुनः विलाप करने लगते हैं। इसी समय राम, लक्ष्मण और सीता को अयोध्या की सीमा से पार पहुँचा कर सुमन्त्र लौट आते हैं। राम के वनगमन का वृत्तान्त सुमन्त्र से सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं। उन्माद की अवस्था में उनको अपने पूर्वज दिलीप, रघु और अज दिखायी देते हैं। अब राजा की चेतना नष्ट हो जाती है और वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

तीसरा अङ्क —अयोध्या के बाहर प्रतिमागृह है। उसमें इक्ष्वाकुवंश के दिवंगत राजाओं की प्रतिमाए रखी रहती हैं। उनका पूजन करने के लिए कौशल्या आदि रानियों को आना है, अतः प्रतिमागृह की सफाई तथा लिपाई-पुताई की जा रही है। इसी समय भरत अपने ननिहाल से वापिस आते दिखायी देते हैं। पिता की अस्वस्थता का समाचार जान कर वे बहुत चिन्तित और उद्वेलित है। साथ ही दीर्घ-काल के बाद लौटने तथा सबसे मिलने का आवेग भी है। अयोध्या के बाहर पहुँच कर साफ-सुथरे प्रतिमागृह को देखकर वे विश्राम करके अयोध्या में प्रवेश करने का विचार करते हैं। बहुत समय तक अयोध्या से बाहर रहने के कारण उनको प्रतिमागृह की वास्तविकता का स्मरण नहीं है। उसको ये एक सामान्य देव-मन्दिर समझते हैं। इस समय शत्रुघ्न का सेवक आकर सूचना देता है और राज्याभिषेक के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करने के लिए कहता है। शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में भरत प्रतिमागृह के अन्दर जाना चाहते हैं। देवकुलिक आकर उनको मन्दिर मे विद्यमान मूर्तियो का परिचय देता है यहाँ दिलीप, रघु और अज की मूर्तियाँ हैं। साथ मे दशरथ की मूर्ति को देखकर भरत को विस्मय होता है। देवकुलिक उनको बताता है कि यहाँ केवल मृत राजाओं की मूर्तियाँ ही रखी जाती हैं। पिता की मृत्यु को जानकर भरत शोक पीड़ित होकर मूच्छित हो जाते हैं। होश में आने पर देवकुलिक उनको दशरथ का तथा राम के बनवास का वृत्तान्त सुनाता है। भरत पुनः मूच्छित हो जाते हैं। इसी समय कौशल्या आदि तीनों रानियाँ सुमन्त्र के साथ वहाँ आ जाती हैं। मूर्छा से उठने पर वे कौशल्या से अपन को निरपराधी बताते हैं तथा कैकेयी को बुरा-भला कहते हैं। राज्याभिषेक को स्वीकार नहीं करते हैं, तथा राम को वापिस लाने के लिए बन जाने का निश्चय करते हैं।

चतुर्थ अङ्क —चतुर्थ अङ्क के विष्कम्भक में दो चेटियों के संवाद से सूचना मिलती है कि राम को वापिस लने के लिए भरत तपोवनों की ओरच ले गये है। सुमन्त्र को साथ लेकर भरत तपोवन में पहुँच गये हैं। तपोवन के अन्दर राम, सीता और लक्ष्मण विराजमान हैं। उनको भरत का स्वर सुनायी देता है। राम की अनुमति से भरत वहाँ पहुँचते हैं। वे राम और लक्ष्मण को प्रणाम करके गले मिलते हैं तथा सीता को प्रणाम करते हैं। भरत को आग्रह है कि अयोध्या वापिस जाकर राम राज्यारोहण कर प्रजा का पालन करें, परन्तु पिता के बचन को राम अन्यथा नहीं कर सकते। राम का आग्रह है कि भरत वापिस लौट कर प्रजा की रक्षा करें, क्योंकि राज्य को अराजक नहीं रहना चाहिये। तब राम के चौदह वर्ष बाद लौट कर राज्य को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करा कर भरत लौटने के लिए सहमत होते हैं। वे राज्य की रक्षा एक धरोहर के रूप में करेगे। अब भरत ने राम से उनकी पादुकाए माँगी हैं। वे प्रतिनिधि के रूप में सिंहासन पर विद्यमान रहेगी। अब राम का आदेश पाकर भरत अयोध्या की ओर वापिस लौटते हैं।

पाँचवाँ अङ्क—सीता तपोवन की वनस्पतियों को सींच रही हैं राम उनको खोजते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं। दोनों विचार करते हैं कि कल पिता के श्राद्ध का दिन है। उनके वैभव के अनुसार इसको कैसे सम्पन्न किया जावे। सीता कहती है कि राजकीय वैभव से तो भरत श्राद्ध कर लेंगे, हम अन्य फल-पुष्पों से ही श्राद्ध कर सकते हैं, परन्तु राम को इससे सन्तोष नहीं होता, इसी समय परिव्राजक का कपट वेश रख कर रावण वहाँ उपस्थित होता है। खर आदि के मारे जाने तथा शूर्पणखा के अपमान से वह क्रोधित है और सीता का अपहरण करना चाहता है। राम उसका सत्कार करते हैं। रावण अपने को कश्यप गोत्र का बताकर अनेक विद्याओं का ज्ञाता कहता है। इन विद्याओं में श्राद्धकला भी है। पिण्डदान के लिए उत्सुक राम उससे पूछते हैं कि इसको किस प्रकार सम्पन्न करना चाहिये। अनेक वस्तुओं का वर्णन करके रावण बताता है कि हिमालय पर रहने वाले काञ्चन-पार्श्व मृग पितरों को सर्वाधिक प्रिय है। इसी समय आश्रम के समीप ही एक उसी प्रकार का मृग दिखायी देता है। लक्ष्मण क्योंकि कुलपति की अगवानी के लिये गये हैं, अतः राम उस मृग को पकड़ने स्वयं जाते हैं। तथा सीता को कहते हैं कि वह अतिथि की सेवा करे। राम के चले जाने पर रावण अपना राक्षस रूप प्रकट करता है। सीता को पकड़ कर वह लङ्का की ओर चल देता है। इसी समय गृधराज जटायु रावण द्वारा सीता के अपहरण को देखकर उसको रोकने के लिए आता है। रावण भी उस पर आक्रमण करता है।

छठा अङ्क—छठे अङ्क के विष्कम्भक से विदित होता है कि रावण और जटायु का भयानक युद्ध हुआ है। इसमें जटायु को मार कर रावण सीता का अपहरण करके लङ्का को ले गया है। दो तपस्वी इस समाचार को राम से कहने के लिए जाते हैं। विष्कम्भक के बाद अयोध्या का दृश्य है। भरत के आदेश से राम का समाचार जानने के लिए सुमन्त्र दण्डकारण्य की ओर गये हैं। भरत उनकी प्रतीक्षा में हैं। इसी समय सुमन्त्र के आने का समाचार मिलता है। सुमन्त्र उनको बताते हैं कि राम वानरों की नगरी किष्किन्धा चले गये हैं तथा उन्होंने वाली को मार कर सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया है। तदनन्तर वे बताते हैं कि माया का प्रयोग करके रावण ने सीता का अपहरण कर लिया है। सुमन्त्र से इस समाचार को जान कर भरत को बहुत पीड़ा होती है। वे उनको साथ लेकर कैकेयी के पास जाकर सीताहरण की बात कह कर कैकेयी को बहुत बुरा-भला कहते हैं। भरत के कथनों से पीड़ित कैकेयी अब रहस्य का उद्भेद करने के लिये सुमन्त्र से कहती है। सुमन्त्र बताते हैं कि ऋषि के शाप के कारण महाराज की रक्षा के लिए राम को वन भेजना अनिवार्य हो गया था। कैकेयी भी बताती है कि राम उनके पुत्र ही हैं। वह चौदह दिन के लिए राम को वन भेजना चाहती थी, परन्तु घबराहट में चौदह वर्ष शब्द मुख से निकल गये। इन बातों को जानकर तथा माता को निरपराध मान कर भरत लज्जित होकर क्षमा माँगते हैं। सीता की रक्षा करने तथा राम

की सहायता के लिए वे सेना साथ लेकर रावण पर चढ़ायी करने की तैयारी करते हैं।

सातवाँ अङ्क—सातवें अङ्क के विष्कम्भक से विदित होता है कि रावण का विनाश करके, बिभीषण का राज्याभिषेक करके और सीता को साथ लेकर राम पुष्पक विमान द्वारा तपोवन में ही आ रहे हैं। प्रमुख राक्षस वानर आदि उनके साथ हैं। उन सबके आतिथ्य का प्रबन्ध करना है। इसी समय लङ्का-विजय करके राम जनस्थान के तपोवन मे पहुँचते हैं। सीता को तपोवन के वे स्थान राम दिखा रहे है, जहाँ वे पहले रहे थे। वृक्षों आदि को पहचान कर सीता गद्गद हो जाती है। इसी समय सेनाओं को साथ लेकर भरत के वहाँ आनें का उनको समाचार मिलता है। साथ मे तीनों माताए आयी हैं। सब एक-दूसरे को यथोचित रूप से प्रणाम करते हैं तथा आशीर्वाद प्राप्त करत हैं। राम से भरत प्रार्थना करते हैं कि वे अपना राज्य वापिस ले लें। कंकेयी के आदेश से राम राज्याभिषेक को स्वीकार कर लेते हैं। राम का वहीं वशिष्ठ और वामदेव द्वारा राज्याभिषेक कर दिया जाता है। तदन्तर कैकेयी के कहने से वे अयोध्या की ओर प्रस्थान की तैयारी करते हैं। इसके लिए सब लोग पुष्पक विमान पर आरुढ़ होते हैं। तदनन्तर भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

(ख) कथावस्तु का स्रोत तथा कवि की निजी कल्पनाएँ—

'रामायण', 'महाभारत' और गुणाढ्य को 'बृहत्कथा' प्राचीन संस्कृत काव्यकारों और नाट्यकारों की रचनाओं के कथानकों के मुख्य स्रोत रहे हैं। भास भी इसके अपवाद नही हैं। उन्होंन अपने नाटकों के कथानकों के लिए इन तीनों ही स्रोतों का उपयोग किया है। 'रामायण' के आधार पर उन्होंने 'प्रतिमानाटक' और अभिषेकनाटक', 'महाभारत' के आधार पर दूतवाक्य', दूतघटोत्कच, मध्यमव्यायोग, उरुभग और 'कर्णभार' तथा बृहत्कथा' के आधार 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' के कथानको को कल्पित किया था। प्रस्तुत नाटक 'प्रतिमानाटक' के कथानक का आधार 'रामायण' है, परन्तु कवि ने 'रामायण' के कथानक में काफी परिवतन कर उसमें स्वय की अनेक कल्पनाओं का संयोजन भी किया है।

'प्रतिमानाटक' के कथानक का मूल स्रोत 'रामायण' के होते हुए भी 'घटनाचक्र' मे काफी भिन्नता है। यह परिवर्तन तथा कल्पनाएँ कवि ने नाटकीय औत्सुक्य तथा रस भाव आदि की दृष्टि से किये हैं। इनको प्रति अङ्क की दृष्टि से देखना उचित होगा।

प्रथम अङ्क—प्रथम अङ्क में राम के राज्याभिषेक की तैयारी होना, उसका रुक जाना, वनगमन का आदेश, लक्ष्मण का कुपित होना और सीता एवं लक्ष्मण का भी वनवास के लिए जाना 'रामायण' की घटनाए हैं, परन्तु कवि ने इसमें वल्कल की घटना का सम्यि सम्मिश्रण किया है तथा इसके द्वारा राम-सीता के

मधुर गार्हस्थ्य जीवन को भी अभिव्यञ्जित किया है। राज्याभिषेक के रोक दिये जाने तथा भरत के राजा होने की सूचना राम को कञ्चुकी से मिलती है। १४ वर्षों के वनवास की सूचना उनको लक्ष्मण देते हैं। तदनन्तर राम लक्ष्मण-सीता महाराज दशरथ से बिना मिले ही वन को चले जाते हैं। 'रामायण' के अनुसार राम के इस राज्याभिषेक के समय भरत और शत्रुघ्न दोनों ही अनुपस्थित थे, परन्तु भास ने केवल भरत को अनुपस्थित दिखाया है।

द्वितीय अंक—द्वितीय अङ्क में दशरथ का विलाप, कौशल्या और सुमित्रा द्वारा उनको सान्त्वना देना सुमन्त्र का राम को वन पहुँचा कर वापिस आना और दशरथ की मृत्यु वर्णित है, परन्तु भास ने इन घटनाओं को अधिक करुणापूर्ण और नाटकीय बना दिया है। दशरथ की मृत्यु से पूर्व उनके समक्ष उनके पूर्वज दिलीप, रघु और अज उपस्थित हुए हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक कल्पना है, जो कि 'रामायण, में नहीं है।

तृतीय अङ्क—तीसरे अङ्क की घटनाएँ तो सम्पूर्ण रूप से कवि की काल्पनिक हैं और इनका 'रामायण' में कोई सकेत नहीं है। कवि न कल्पना की है कि अयोध्या नगरी के बाहर प्रतिमागृह में इक्ष्वाकुवंश के मृत राजाओं की प्रतिमाएँ रखी जाती थीं। समय-समय पर इनका पूजन होता था। भरत अपने ननिहाल से लौट कर पहले इसी स्थान पर पहुँचे, जहाँ कि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की प्रतिमाओं में दशरथ की प्रतिमा को देखकर इनको पिता की मृत्यु का ज्ञान हुआ। कैकेयी ने भरत के लिए राज्य और राम के लिए १४ वर्षों का वनवास मांगा था। तनन्तर उसकी माताओं से भेंट हुई और उसने कैकेयी को बुरा-भला कहा तदनन्तर वे वहीं से राम को वापिस लाने के लिए वनों की ओर चले गये।

चतुर्थ अंक—चतुर्थ अङ्क में कवि की कोई कथानक के प्रति विशेष ने कल्पना नहीं है। भरत वन में पहुँचत हैं तथा राम से लौटन की प्रार्थना करते हैं, परन्तु राम अपने पिता के बचन को असत्य करना नहीं चाहते। उनके आदेश से भरत को लौटना पड़ता है, परन्तु वे राम से प्रतिज्ञा करा लेते हैं कि वे १४ वर्षों के बाद लौट कर राज्य को ग्रहण कर लेंगे। वे राम की पादुकाओं को प्रतिनिधि के रूप में लेकर लौट आते हैं। कवि ने इसमें एक परिवर्तन अवश्य विशेष किया है। 'रामायण' के अनुसार यह राम-भरत मिलन चित्रकूट में हुआ था, जबकि भास ने इसको जनस्थान में दिखाया है।

पञ्चम अङ्क—पञ्चम अङ्क में 'रामायण' की सीताहरण की घटना को भास ने बहुत अधिक रोमाण्टिक और सजीव बना दिया है। 'रामायण' के अनुसार रावण ने मारीच को माया द्वारा स्वर्ण मृग बना कर भेजा। उसके प्रति लुब्ध होकर सीता ने उसे पकड़ने राम को भेजा। कुछ समय बाद राम को विपत्ति में समझ कर लक्ष्मण को उसके पीछे भेज दिया गया। अब सीता को अकेला देख कर विप्ररूपधारी रावण भिक्षा के बहाने से अन्दर आकर सीता को उठाकर ले गया।

'प्रतिमानाटक' में सीताहरण की घटना बिल्कुल ही दूसरे प्रकार से है। राम और सीता पिता के श्राद्ध के सम्बन्ध मे विचार कर रहे हैं। इसी समय परिव्राजक का वेश रख कर रावण आता है। राम और सीता उसका स्वागत करते हैं। रावण अपने को सभी विद्याओं का ज्ञाता बताता है। वह श्राद्ध कल्प का विद्वान् है। राम को उत्सुकता होती है और वे रावण से श्राद्धकल्प के लिए पूछते हैं। रावण श्राद्ध करने के लिए पिण्डदान की अनेक वस्तुओं का नाम गिनाता है। फिर वह बताता है कि पितर लोग हिमालय में रहने वाले काञ्चनपार्श्व मृगों को बहुत पसन्द करते हैं। इसी समय रावण की माया के प्रभाव से बाहर एक काञ्चनपार्श्व मृग दिखायी देता है। रावण कहता है कि यह हिमालय आपका अभिवादन कर रहा है। लक्ष्मण इस समय वहाँ नहीं थे; अतः राम स्वयं मृग को पकड़ने जाते हैं। अकेली पाकर सीता को रावण बलपूर्वक पकड़ कर ले जाता है।

षष्ठ अङ्क—छठे अङ्क की घटनाएँ भी प्रायः सारी ही कवि की कल्पनाएँ हैं। 'रामायण' में इनका कोई उल्लेख नहीं है। राम का कुशल समाचार जानने के लिए भरत सुमन्त्र को दण्डकारण्य भेजते हैं। वहाँ से लौट कर सुमन्त्र रावण द्वारा सीता-हरण का समाचार देते हैं और बताते हैं कि राम वानरों की राजधानी किष्किन्धा गये हैं। जहाँ उन्होने बाली को मार कर सुग्रीव को राजा बनाया है। तदनन्तर सुमन्त्र को साथ लेकर भरत माता कैकयी के पास जाते हैं और सीताहरण का समाचार देकर उलाहना देते हैं कि उन्हीं के कारण इक्ष्वाकुवंश को पुत्रवधू अपहरण का अपमान भोगना पड़ा। तब कैकेयी रहस्य का उद्घाटन करती है कि ऋषि के शाप का परिहार करने के लिए राम को वन भेजना पड़ा। वह १४ दिन का वनवास कह रही थी, परन्तु घबराहट में १४ वर्ष का निकल गया। भरत तब माता से अपने अपराध की क्षमा माँगते हैं। भास ने वर्णन किया है कि इसके बाद रावण पर आक्रमण करने के लिए भरत ने सेना को तैयार करने का आदेश दिया, परन्तु 'रामायण' में इस घटना का कोई संकेत नहीं है।

सप्तम अङ्क—सप्तम अङ्क में राम के राज्याभिषेक का वर्णन है। 'रामायण' से केवल इतना ही लिया गया है कि राम के वापिस आने पर भरत ने उनके लिए राज्य सौंप दिया तथा राम का राज्याभिषेक हुआ, परन्तु भास ने इस घटना को नाटकीय मोड़ दिया है। भास के अनुसार यह राज्याभिषेक अयोध्या में न होकर पहले जनस्थान में हुआ। रावण का वध करके, विभीषण को लङ्का का राज्य देकर और सीता को साथ लेकर राम पुष्पक विमान पर लौटे। उनके साथ सहायक राक्षस, वानर आदि थे। वे जनस्थान में उतरे। यहीं पर सेना को साथ लेकर भरत आ गये। साथ में तीनों माताएँ तथा शत्रुघ्न थे। कैकयी के आदेश से राम का राज्या-भिषेक हुआ। कैकयी की इच्छा थी यह राज्याभिषेक पुनः अयोध्या में ही हो राम के आदेश से सब लोग अयोध्या जाने के लिए पुष्पक विमान में आरूढ़ हो गये। इस प्रकार की घटना का भी 'रामायण' में कोई उल्लेख नहीं है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रतिमानाटक के कथानक को मूलरूप में 'रामायण' से लेकर श्री भास ने इसमें अनेक परिवर्तन किये हैं तथा अनेक काल्पनिक घटनाओं का संयोजन किया है।

(ग) कथावस्तु का प्रकार (आधिकारिक तथा प्रासंगिक इतिवृत्त)—

कथावस्तु का विभाजन दो विभागों में किया गया है—आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक कथा मुख्य कथा है, जिसमें नायक का फल की प्राप्ति होती है। 'प्रतिमानाटक' मे राम का बनवास तथा उनका वन से लौट कर पुनः राज्य का प्राप्त होना आधिकारिक कथा है। इसमें राम को राज्याभिषेक रूप फल की प्राप्ति होती है।

प्रासङ्गिक कथाएँ दो प्रकार की होती हैं—पताका और प्रकरी। इनमें पताका कथा वह है, जो कि नाटक के मुख्य कथानक के साथ दूर तक चली जाती है। प्रकरी कथा मुख्य कथानक के एक ही भाग में होती है (सानुबन्धं पताकाख्य प्रकरी च प्रदेश भाक्")। 'प्रतिमानाटक' में इस प्रकार की कोई कथा नहीं है, जिसको पताका कहा जा सके। प्रकरी कथायें अनेक हैं। इनका विवरण निम्न है—

प्रथम अङ्क में वल्कल वस्त्र की घटना, द्वितीय अङ्क में सुमन्त्र का वन से लौट कर समाचार देना, तृतीय अङ्क मे प्रतिमागृह की घटना, चतुर्थ अङ्क में राम का भरत से मिलन, पञ्चम अङ्क मे रावण द्वारा श्राद्धकल्प का कथन करना, षष्ठ अङ्क में सुमन्त्र द्वारा सीताहरण का वृतान्त तथा कैकयी द्वारा राम-वनवास का हेतु बताना, सप्तम अङ्क में तपस्वियों द्वारा राम के लौटने तथा अतिथि-सत्कार का वर्णन करना ये सब प्रकरी कथाएँ हैं। इनक द्वारा कथानक को गति मिलती है और ये राम के राज्याभिषेक रूप फल की प्राप्ति मे भी सहायक हैं।

(घ) अर्थ-प्रकृतियाँ—

नाटक के कथानक का संघटन पाँच अर्थ प्रकृतियों द्वारा होता है। ये हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।

बीज वह तत्त्व है, जो अभिनय के प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जावे तथा बाद मे इसका अनेक प्रकार से विस्तार हो। नाटक के कथानक में राम का वनवास और लौट कर पुन. राज्याभिषेक होना है। इसका बीज इस कथन में निहित है—"अहो अत्यहितम्। परिहासेनापीमं वल्लकलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत् किं पुनर्लोभेन परधन हरन्त्याः।" इससे राम के राज्याभिषेक में बाधा का तत्त्व अभिव्यञ्जित होता है। तदनन्तर सीता द्वारा वल्कल वस्त्र धारण करने की इच्छा व्यक्त करना—"किन्नु खलु तावत् ममापि शोभते" से व्यक्त होता है कि सीता को वल्कल धारण कर वन जाना पड़ेगा। यह बीज की अवस्था है।

अवान्तर कथाओं द्वारा कथासूत्र के टूट जान पर मूल कथा का पुनः जोड़ने वाला तत्त्व बिन्दु है (अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्)। राम और सीता के

वार्तालाप से और हास-परिहास से कथा का सूत्र टूट जाता है। वनवास के आदेश का समाचार मिलने पर राम द्वारा वल्कल वस्त्र धारण करने की इच्छा प्रकट करना—"मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय"। इससे राम के वनगमन की बात पुष्ट हो जाती है। राम अब वन को जायेंगे ही, यह कथन पुष्ट हो जाता है। यह बिन्दु की अवस्था है।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है। 'प्रतिमानाटक' में पताका की स्थिति नहीं है। प्रकरी का विवरण भी पहले दिया जा चुका है। नायक द्वारा फल को प्राप्त करना ही कार्य है। सप्तम अङ्क में भरत द्वारा राम के लिए राज्य को अर्पित करना ही कार्य है।

(ङ) कार्यावस्थाएँ—

नाटकीय कथा में जो भी घटनाएँ हैं या कार्य हैं उनकी अवस्थाओं को ५ भागों में विभक्त कर सकते हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

मुख्य फल को प्राप्त करने के लिए नायक द्वारा किया जाने वाला कार्य का आरम्भ ही आरम्भ है। 'प्रतिमानाटक' के प्रथम अङ्क में राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं। कञ्चुकी कहता है कि सब सामग्रियाँ तैयार हैं और भगवान् वशिष्ठ वेदी पर बैठ गये हैं। तदनन्तर सीता से उसकी चेटी कहती है कि कञ्चुकी उससे अभिषेक की बातें कह रहा है। यह आरम्भ नामक कार्यावस्था है। राम के वनगमन के पश्चात् प्रयत्न की स्थिति है। राज्याभिषेक के हेतु सभी प्रयास इसमें सम्मिलित हैं। दशरथ को राम के लौट आने की आशा है। वे राम को वापिस लाने का दृढ़ निश्चय प्रकट करते हैं। तृतीय अङ्क मे भरत के वन जाने की तैयारी तक की अवस्था प्रयत्न की कही जा सकती है। चतुर्थ अङ्क मे राम को लने के लिए भरत वन में जाते हैं, परन्तु राम वापिस आने के लिए तैयार नहीं होते हैं, परन्तु व १४ वर्षों के वनवास को अवधि समाप्त होने पर वापिस लौट कर राज्याभिषेक के लिए सहमति देते हैं। इससे य आशा बन जाती है कि राम को राज्याभिषेक प्राप्त हो जायेगा। यह प्राप्त्याशा की अवस्था है पञ्चम अङ्क में सीता का अपहरण होता है और छठे अङ्क में सीता के अपहरण का समाचार जान कर राम की सहायता के लिए भरत सेना को तैयार करते हैं। सातवें अङ्क के विष्कम्भक से विदित होता है कि रावण को मार कर तथा सीता को लेकर राम लौट आये हैं। इससे राम का राज्याभिषेक होना सुनिश्चित हो जाता है। यह नियताप्ति की अवस्था है। इसी अङ्क के अन्त मे कैकेयी के आदेश से राम का राज्याभिषेक होता है। राम का राज्याभिषेक रूप फल की प्राप्ति होती है। यह फलागम की अवस्था है।

(च) सन्धियाँ—

पाँच अर्थ प्रकृतियों और पाँच कार्यावस्थाओं का क्रमशः संयोजन होकर

उनके आधार पर नाटक के शरीर का सन्धियों के रूप में विभाजन किया जाता है। एक सन्धि में एक प्रयोजन से अन्वित कथांशों का एक अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध होता है। इस प्रकार ये सन्धियाँ पाँच होती हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और उपसंहृति। 'प्रतिमानाटक' में इन सन्धियों की स्थिति निम्न प्रकार दिखायी जा सकती है।

आरम्भ नामक कार्यावस्था और बीज नामक अर्थ प्रकृति के संयोग से मुख सन्धि की रचना होती है। प्रथम अङ्क में जब कि कञ्चुकी राम राज्याभिषेक की तैयारी के आरम्भ की बात कह रहा है, वहाँ से लेकर राम के वन जाने का वृतान्त तक जहाँ कि बीज की स्थिति है, मुखसन्धि है। इसके अन्तर्गत अवदातिका द्वारा वल्कल वस्त्र लाना, राम-सीता का वार्त्तालाप आदि सभी घटनाएँ सम्मिलित हैं।

बिन्दु नामक अर्थप्रकृति और यत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से प्रतिमुख सन्धि होती है। दूसरे अङ्क में राम के वियोग में दशरथ दुःखी हैं तथा सुमन्त्र से राम के वापिस न आने का समाचार जान कर अत्यधिक विषण्ण होकर मूर्च्छित होते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। तृतीय अङ्क में भरत द्वारा राम को लाने का दृढ़ निश्चय किया जाता है। यहाँ की स्थिति प्रतिमुख सन्धि कही जा सकती है। राम द्वारा वन जाने का निश्चय बिन्दु तथा दशरथ द्वारा राम को बुलवाने का प्रयत्न और भरत द्वारा राम को लेने जाने का संकल्प यत्न है। इन बिन्दु और यत्न के संयोग से प्रतिमुख सन्धि बनी है।

पताका नामक अर्थप्रकृति और प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था के संयोग से गर्भसन्धि की रचना होती है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि इस नाटक में कोई ऐसी प्रासङ्गिक कथा नहीं है। जो कि आधिकारिक कथा क साथ दूर तक जा सके; अत: इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति नहीं है। इसलिए गर्भसन्धि का निर्णय प्राप्त्याशा के आधार पर ही करना होगा। चतुर्थ अङ्क में जब भरत राम से प्रतिज्ञा करा लेते हैं कि वे १४ वष के बाद वापिस आकर राज्य को ग्रहण कर लेंगे, तभी राम के राज्याभिषेक सम्पन्न होने की आशा हो जाती है। यहाँ तक के नाटकीय भाग को गर्भसन्धि के अन्तर्गत माना जा सकता है।

प्रकरी नामक अर्थप्रकृति और नियताप्ति नामक कार्यावस्था के संयोग से अवमर्श सन्धि की रचना होती है। 'प्रतिमानाटक' मे प्रकरी कथाएँ अनेक हैं तथा प्रत्येक अङ्क में कोई न कोई कथा है। सप्तम अङ्क मे तपस्वी-जन राम के लौटने पर उनके तथा उनकी सेना के आतिथ्य की तैयारी कर रहे हैं। यह एक प्रकरी कथा है। इसके साथ ही वे राम को विमान से उतरते देखते हैं, जो कि रावण का वध करके सीता को वापिस लेकर आये हैं। राम के वापिस आने पर राज्याभिषेक सुनिश्चित हो जाता है, जो नियताप्ति की अवस्था है; अतः इनके संयोग से यहाँ अवमर्श सन्धि की स्थिति मानी जा सकती है।

कार्य नामक अर्थप्रकृति और फलागम नामक कार्यावस्था के संयोग से उपसंहृति नामक सन्धि की रचना होती है। राम जनस्थान में आते हैं। भरत भी सेना के साथ वहाँ आते हैं। तीनों माताएँ और शत्रुघ्न उनके साथ हैं। भरत द्वारा राम के लिए राज्य को अर्पित करना कार्य है तथा कैकेयी के आदेश से राम का राज्याभिषेक होना फलागम है। ये दोनों मिलकर यहाँ उपसंहृति सन्धि बनाते हैं।

नाट्य के समालोचना ग्रन्थों में इन पाँच सन्धियों के सूक्ष्म विभाग किये गये हैं। इनको सन्ध्यङ्ग कहते हैं। दशरूपक के अनुसार इनकी सख्या १२+१३+१२+१३+१४=६४ है। 'प्रतिमानाटक' में अनेकों सन्ध्यङ्गों की स्थिति विद्यमान है। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने कुछ की स्थिति इस प्रकार दिखायी है।[1]

सीता द्वारा वल्कल धारण करने पर अवदातिका द्वारा उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करना परिकर नामक सन्ध्यङ्ग है। "अन्यैः नृपैं" पदों में राम के विशिष्ट गुणों का कथन होने से विलोभन नाम सन्ध्यङ्ग है। राम के राज्याभिषेक के समय दैव द्वारा विघ्न उपस्थित होने पर युक्ति नामक सन्ध्यङ्ग है। लक्ष्मण द्वारा सीता के वनगमन में प्रोत्साहन देने में भेद नामक सन्ध्यङ्ग है। सीता द्वारा आभूषणों को उतारने पर राम द्वारा व्यथा को व्यक्त करने में विधान नामक सन्ध्यङ्ग है। राम के चीर धारण करने पर, ये मुझको आधा हिस्सा क्यों नहीं दे रहे, इस प्रकार आश्चर्य प्रकट करने में परिभावना नामक सन्ध्यङ्ग है। कञ्चुकी द्वारा दशरथ की दयनीय अवस्था का उल्लेख करके वन न जाने की प्रार्थना करने पर लक्ष्मण द्वारा "चरिमात्रोत्तरीपाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्" कहने में वनगमनरूपी बीज का उद्भेद होने से उद्भेद नाम का सन्ध्यङ्ग है। राम द्वारा अपने वनगमन की श्रेष्ठता सम्पादित करने में समाधान नामक सन्ध्यङ्ग है।

सभी सन्ध्यङ्गों का विवरण देना बहुत बिस्तार का कार्य है और यहाँ सम्भव नहीं है।

(घ) समय और स्थान की अन्विति—

नाटकों की रचना में समय और स्थान की अन्विति का ध्यान रखना अति आवश्यक है। नाटक की समीक्षा में इस बात की अवश्य आलोचना की जानी चाहिये। यहाँ इनका क्रमशः विवेचन किया जा रहा है।

(i) समय की अन्विति—'प्रतिमानाटक' का कथानक उस समय की घटना से प्रारम्भ हो रहा है, जबकि राम का राज्याभिषेक होते-होते रुक गया है और उनको वन जाना पड़ा है। नाटक की समाप्ति राम के लंका से वापिस आने तथा जनस्थान में राज्याभिषेक होने पर होती है। राम को जिस दिन राज्याभिषेक हो रहा था और होते-होते रूक गया, उसी दिन उनको वन जाना पड़ा। उनके वनवास की यह अवधि १४ वर्ष थी। वनवास की अवधि के समाप्त होते ही उसी दिन उनका वापिस आकर राज्याभिषेक होना अनिवार्य था; अतः जिस समय उनका राज्याभिषेक हुआ, उसी दिन १४ वर्षों की अवधि पूरी हुई। इस प्रकार 'प्रतिमा-

१. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : महाकवि भास—पृ० १७२–१७३।

नाटक' के कथानक की पूरी अवधि १४ वर्ष सिद्ध होती है। अङ्कों के अनुसार यह अवधि निम्न प्रकार से निर्धारित होती है।

प्रथम अङ्क की घटना राम के राज्याभिषेक की है। राज्याभिषेक का कार्य उसी दिन प्रातः प्रारम्भ होकर रुक गया होगा और राम को उसी दिन वनवास की सूचना आदि मिली तथा उसी दिन वे अयोध्या से चले गये। 'रामायण' के कथानक के अनुसार अयोध्या से कुछ ही दूर सरयू के तट पर जाकर रात हो गयी तथा सब लोग सो गये; [illegible] अङ्क का कथानक एक ही दिन में घटित हो गया और यह दिन वनवास की अवधि का प्रथम दिन था।

दूसरे अङ्क में दशरथ का विलाप और मृत्यु दिखायी गयी है। दशरथ की मृत्यु उसी समय हुई, जबकि राम-लक्ष्मण को वन पहुँचा कर सुमन्त्र लौट कर आये थे। 'रामायण' के अनुसार सुमन्त्र तीन दिन में शृङ्गवेरपुर गंगा के तट पर पहुँचे थे। दो दिन उनको वापिस आने में भी लगे होंगे। इस प्रकार जिस दिन राम वन के लिए गये, उसके पाँच दिन बाद दशरथ की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार दूसरे अङ्क के कथानक की अवधि तो एक दिन की है, परन्तु प्रारम्भ से दूसरे अङ्क के कथानक की अवधि ५ दिन होती है।

तीसरे अङ्क में प्रतिमागृह में दशरथ की प्रतिमा को देखकर भरत को पिता की मृत्यु का बोध होता है। 'रामायण' की कथा के अनुसार दशरथ की मृत्यु होने पर उनके शव को सुरक्षित करके दूतों को केकय देश भेजा गया कि वे भरत को बुलाकर लावें। दशरथ का शव छः मास तक तेल के कढ़ाह में सुरक्षित रखा गया। तदनन्तर भरत ने आकर पिता का दाह-संस्कार किया। 'प्रतिमानाटक' के कथानक के अनुसार भरत को दशरथ की प्रतिमा देखने को मिली थी। इसका अर्थ है कि भरत की प्रतीक्षा करके मन्त्रियों ने शत्रुघ्न की सहायता से दशरथ का दाह-संस्कार कर दिया होगा। यदि शव को सुरक्षित रखने की अवधि में एक महीने की अवधि जोड़ दी जावे, तो अब तक की नाटकीय कथा की अवधि ७ मास ५ दिन हो जाती है।

चतुर्थ अङ्क की घटना राम के जनस्थान स्थित तपोवन की है। प्रतिमागृह में पिता की प्रतिमा देखकर तथा राम के वनवास का समाचार सुन कर भरत तुरन्त ही राम को वापिस लाने के लिये वन की ओर प्रस्थान करते हैं; परन्तु 'रामायण' में राम और भरत का मिलन चित्रकूट में हुआ है। भास ने इससे भिन्न इन दोनों का मिलन जनस्थान में कराया है। जनस्थान चित्रकूट से बहुत दूर दक्षिण में है; अतः भरत को अयोध्या से जनस्थान तक सब लोगों को साथ लेकर आने-जाने में ४ माह का समय लगाना स्वाभाविक है। इसमें चार पाँच दिन अधिक या कम लग सकते हैं; अतः यहाँ तक नाटकीय घटना का समय ११ महीने का हो गया होगा।

पञ्चम अङ्क की घटना से प्रतीत होता है कि राम अपने पिता के वार्षिक

श्राद्ध के लिए चिन्तित हैं। इसके साथ ही उसी दिन सीता का अपहरण भी हो जाता है। सीता लगभग एक वर्ष तक रावण की कैद में रही थी। १४ वर्षों की अवधि जिस दिन समाप्त होनी थी, उसी दिन राम अयोध्या से वापिस जनस्थान आये थे; अतः अनुमान किया जा सकता है कि सीता का अपहरण वनवास की अवधि के समाप्त होने से एक वर्ष पूर्व तथा वनवास की अवधि प्रारम्भ होने के १३ वर्ष बाद हुआ होगा। इस प्रकार पञ्चम अङ्क की घटना के समय वनवास की अवधि के १३ वर्ष पूरे हो गये हैं और नाटकीय घटना-चक्र को भी १३ वर्षों की अवधि व्यतीत हो गयी है।

षष्ठ अङ्क में सुमन्त्र दण्डकारण्य से लौट कर सीता के अपहरण की सूचना देते हैं। जनस्थान से अयोध्या तक अकेले वापिस आने में सुमन्त्र को दो महीने का समय तो लग ही गया होगा। भरत तुरन्त ही सेना को तैयार करके रावण पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर देते हैं। वे लगभग तीन महीने में सेना के साथ जनस्थान पहुँचे होंगे। सातवें अङ्क की घटना से विदित होता है कि वे उसी दिन जनस्थान पहुँचे थे. जबकि राम लङ्काविजय कर वहाँ आये थे; अतः षष्ठ अङ्क की घटना का समय वनवास की समाप्त होने के तीन महीने पूर्व का तथा नाटकीय घटना के प्रारम्भ होने के बाद १३ ३/४ वर्ष का समझना चाहिये।

सप्तम अङ्क की घटनाओं में राम लङ्का-विजय करके वापिस आते हैं। इसी दिन भरत भी यहाँ आ जाते हैं। भरत राम को उनका राज्य सौंप देते हैं तथा कैकेयी के आदेश से उनका राज्याभिषेक होता है। राम का राज्याभिषेक वनवास की १४ वर्षों की अवधि के समाप्त होने पर तुरन्त होना था; अतः यह समय नाटकीय घटना चक्र के आरम्भ होने के १४ वर्ष बाद का समझना चाहिये। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक के घटना-चक्र की अवधि भी १४ वर्ष की निर्धारित होती है।

(ii) स्थान की अन्विति—प्रतिमानाटक में स्थान की अन्विति पर कवि ने बहुत ध्यान रखा है। इस लम्बी अवधि के नाटक का घटना-चक्र निम्न स्थानों पर सम्पन्न हुआ है—अयोध्या के राजमहलों में अयोध्या के बाद प्रतिमागृह में और जनस्थान के तपोवन में।

प्रथम अङ्क में सीता को अपनी सखियों के साथ अयोध्या के राजप्रासाद में राम के भवन में देखा जा सकता है। यहीं कुछ समय बाद राम आ जाते हैं। उनको वनवास की सूचना यहीं मिलती है। यहीं से वे सीता और लक्ष्मण के साथ वनों की ओर चले जाते हैं। पिता से विदा लेने के लिए वे उनके भवन की ओर भी नहीं जाते। इस प्रकार प्रथम अङ्क की घटनाओं का स्थान अयोध्या के राजप्रासाद में राम-भवन में है।

दूसरे अङ्क में राम के विरह में दशरथ को विलाप करते हुए दिखाया गया है। यह स्थान राजप्रासाद का समुद्रगृह है। यहीं आकर सुमन्त्र ने राम-लक्ष्मण के शृङ्गवेरपुर में गङ्गा पार करके वनों में पहुँच जाने का समाचार दिया था और उसके

बाद दशरथ की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार दूसरे अङ्क का घटना-चक्र अयोध्या के राजमहलों में कौशल्या के भवन में समुद्रगृह में घटित हुआ है।

तीसरे अङ्क का घटना-चक्र अयोध्या के बाहर प्रतिमागृह का स्थान है। ननिहाल से लौटकर भरत यहाँ विश्राम करते हैं। शुभ नक्षत्र में अयोध्या में प्रवेश का सन्देश पाकर वे यहाँ प्रतिमागृह को देखने लगते हैं। यहीं उनकी भेंट माताओं और सुमन्त्र से होती है। वे यहीं पर राम को वापस लाने का संकल्प प्रकट करते हैं।

चतुर्थ अङ्क में राम-लक्ष्मण और सीता को जनस्थान में अपने तपोवन में देखा जा सकता है। उनको भरत के आने की सूचना मिलती है। भरत उनसे अयोध्या वापिस जाने का आग्रह करते हैं, परन्तु राम उनको १४ वर्ष के बाद आने का आश्वासन देकर अपनी पादुकाएँ देकर लौटा देते हैं। इस प्रकार चौथे अङ्क का घटनास्थल जनस्थान का राम-तपोवन है।

पञ्चम अङ्क में राम सीता को जनस्थान में तपोवन में विचार-विनिमय करते हुए देखा जा सकता है। इसी समय परिव्राजक वेशधारी रावण वहाँ आता है। उनके कपटजाल में फँसकर राम काञ्चनपार्श्व मृग के पीछे चले जाते हैं। सीता को अकेला पाकर रावण भी उनका बलपूर्वक अपहरण करता है। इस प्रकार पञ्चम अङ्क का घटनाचक्र भी जनस्थान के राम-तपोवन में घटित हुआ है।

षष्ठ अङ्क में अयोध्या के राजप्रसाद में भरत सुमन्त्र की प्रतीक्षा करते हैं। सुमन्त्र आकर उनको सीता के अपहरण के विषय में बताते हैं। क्रोध में भरकर वे सुमन्त्र को साथ लेकर कैकेयी के भवन में जाते हैं। यहाँ कैकेयी से राम-वनवास के रहस्य को जानकर वे माता से क्षमा माँगते हैं और सीता को छुड़ाने के निमित्त रावण पर आक्रमण करने के लिए सेना को तैयार करने का आदेश देते हैं। इस प्रकार षष्ठ अङ्क का घटना का स्थल अयोध्या का राजप्रासाद तथा उसमें भरत और कैकेयी के भवन हैं।

सप्तम अङ्क की घटनाएँ जनस्थान के तपोवन में घटित हुई हैं। दो तपस्वी राम के आतिथ्य की तैयारी करके उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तपोवन में राम का विमान उतरता है। यहीं उनकी भेंट भरत, माताओं और शत्रुघ्न से होती है। यहीं पर वे सब अयोध्या जाने के लिए पुष्पक विमान पर आरूढ़ होते हैं।

इस प्रकार 'प्रतिमानाटक' की घटनाएँ तीन स्थानों पर घटित हुई हैं—अयोध्या से राजप्रासाद, अयोध्या के बाहर प्रतिमागृह और जनस्थान का तपोवन। इनके पहले, दूसरे ओर छठे अङ्क की घटनाओं का स्थान अयोध्या के राजमहल हैं। तीसरे अङ्क का घटनास्थल अयोध्या के बाहर प्रतिमागृह है। चौथे, पाँचवें और सातवें अङ्क का घटनास्थल जनस्थन का तपोवन है।

(ज) नाटक के नामकरण का औचित्य—

भास के १३ नाटकों में 'प्रतिमानाटक' एक लम्बा और महत्त्वपूर्ण नाटक है।

इसमें घटना चक्र 'वाल्मीकि रामायण' से काफी भिन्न है। रामायण के अनुसार दशरथ की मृत्यु हो जाने पर उसके शव को तैल में सुरक्षित रखा गया था। ननिहाल से अयोध्या आकर राजप्रासाद में आने पर उसको पिता की मृत्यु का ज्ञान हुआ, परन्तु 'प्रतिमानाटक' में इससे भिन्न घटना है। ननिहाल से लौटने पर नगर के बाहर वह उस 'प्रतिमागृह को देखने लगा, जिसमें इक्ष्वाकु वंश के मृत राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। यहाँ दशरथ की प्रतिमा को देखकर उसको पिता की मृत्यु तथा राम के वनवास का ज्ञान हुआ। प्रतिमा देखकर इस प्रकार का ज्ञान होने तथा नाटकीय कथा में मोड़ आने से इस नाटक का नाम 'प्रतिमानाटक' रखा जाना उचित ही है।

६. अङ्कों और दृश्यों का विभाजन

'नाट्यशास्त्र' के नियमों के अनुसार नाटक में ५ या इससे अधिक अङ्क होने चाहियें। 'प्रतिमानाटक' में ७ अङ्क हैं। इसके अङ्कों का सगठन समुचित है तथा एक अङ्क में दृश्यों की संख्या अधिक नहीं है। 'प्रतिमानाटक' के अङ्कों में दृश्य इस प्रकार हैं—

प्रथम अंक—दृश्य—१—नान्दी और प्रस्तावना।

दृश्य—२—प्रतिहारी का कञ्चुकी से संवाद।

दृश्य—३—अवदातिका का वल्कल लाना, सीता का सखियों सहित आना, राम का उपस्थित होना, कञ्चुकी का वहाँ आकर राज्याभिषेक को रोके जाने का वर्णन, लक्ष्मण का प्रवेश तथा वनवास का कथन, राम-सीता-लक्ष्मण का वन जाने का निश्चय।

द्वितीय अंक—दृश्य—१—विष्कम्भक द्वारा राजा की अस्वस्थता की सूचना

दृश्य—२—समुद्र गृह में दशरथ का अस्वस्थ दिखायी देना, सुमन्त्र का लौटकर राम-सीता-लक्ष्मण का वन जाने का समाचार देना, दशरथ की मृत्यु।

तृतीय अंक—दृश्य—१—प्रवेशक में प्रतिमागृह का परिमार्जन का दृश्य।

दृश्य—२—भरत का रथारूढ़ होकर अयोध्या की ओर आना।

दृश्य—३—भरत का प्रतिमागृह को देखना, पिता की मृत्यु तथा राम-वनवास का समाचार जानना, मूर्च्छित होना, माताओं का आना, कैकेयी पर क्रोधित होकर भरत का राम को वापिस लाने का निश्चय

चतुर्थ अंक—दृश्य—१—प्रवेशक में सेविकाओं द्वारा भरत के राम-तपोवन जाने का समाचार।

दृश्य—२—भरत और सुमन्त्र का राम-तपोवन पहुँचना।

दृश्य—३—तपोवन में भरत की राम-सीता-लक्ष्मण से भेंट राम का भरत को वापिस लौट जाने का आदेश।

पञ्चम अंक—दृश्य—१—सीता का वृक्षों को सींचना, राम का आगमन।

दृश्य—२—राम-सीता द्वारा पिता का श्राद्ध करने का विचार, रावण का आगमन, श्राद्ध के लिए काञ्चनपार्श्व मृग लाने के लिए रावण का प्रोत्साहन, राम का मृग लेने जाना, रावण द्वारा सीता का अपहरण।

षष्ठ अंक—दृश्य—१—विषकम्भक में वृद्ध तपस्वियों द्वारा सीताहरण और रावण-जटायु युद्ध का वर्णन, रावण द्वारा जटायु का वध।

दृश्य—२—अयोध्या में भरत के पास सुमन्त्र का आना और सीता का समाचार सुनाना।

दृश्य—३—भरत द्वारा कैकेयी को उलाहना देना, कैकेयी द्वारा राम के वनवास के विषय में निर्दोषिता प्रमाणित करना, भरत द्वारा सेना तैयार कर रावण पर आक्रमण करने का निश्चय।

सप्तम अंक—दृश्य—१—तपस्वियों द्वारा राम तथा उसकी सेना के अतिथि सत्कार की तैयारी तथा राम के तपोवन में आने की सूचना देना।

दृश्य—२—राम-सीता-लक्ष्मण का तपोवन में आना, भरत का सेना और माताओं सहित वहाँ पहुँचना, राम का राज्याभिषेक, सब लोगों का अयोध्या जाने के लिए विमान पर आरूढ़ होना।

१०. प्रतिमानाटक के संवाद

संवाद नाटकीय योजना का बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। इनके द्वारा एक ओर जहाँ नाटकीय कथा को गति मिलती है। वहीं दूसरी ओर पात्रों की विशेषताओं की भी अभिव्यक्ति होती है। इनसे विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति होकर नाटक की रमणीयता और सहृदयहृदयग्राहिता पर प्रकाश पड़ता है। भास के संवादों में वे सब विशेषताएँ हैं, जो नाटकों के संवादों में होती हैं। ये कथा को गति देते हैं। पात्रों की चरितगत् विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं। ये संवाद शृंखलाबद्ध हैं, संक्षिप्त हैं, ओजस्वी हैं, प्रभावोत्पादक हैं, स्वाभाविक हैं और इनमें अभिव्यञ्जना शक्ति विद्यमान है।

भास के संवादों में एक विशेषता यह भी है कि उनमें त्वरित गति है। स्थान-स्थान पर "निष्क्रम्य प्रविशय" का प्रयोग करके भास ने इनमें क्रियाशीलता

भर दी है। संवाद के अन्य भेद की दृष्टि से इनमें स्वगत और प्रकाश नामक भेद हैं। कवि ने अपवारितक और जनान्तिक का प्रयोग नहीं किया। सम्भवतः इनको उसने अस्वाभाविक समझा होगा। आकाशभाषित संवाद का पारिभाषिक अर्थ के रूप में तो प्रयोग नहीं किया, किन्तु कभी-कभी पात्रों में आकाश की ओर देखकर कथन अवश्य किया है। इन नाटकों में कहीं-कहीं प्रतिरूपकात्मक संवाद भी हैं। भास के संवादों में जिज्ञासा, रोचकता, तत्त्वनिरूपण, आत्मचिन्तन, समस्याओं की समुपस्थिति और उनका समाधान, स्वाभाविकता और सूक्तियों का प्रयोग ये विशेषताएँ प्रायः दृष्टि-गोचर होती हैं। तर्कसंगत होने से उनमें नीरसता नहीं रहती।

प्रतिमानाटक' में भास की ये संवादगत विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। कुछ संवादों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करना उपयोगी होगा—

(१) सीता—हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते ?
अवदातिका—भट्टिनि ! सर्वं शोभनीतं सुरूपं नाम। अलङ्कारोतु भट्टिनि।
सीता—आनय तावत् (गृहीत्वालङ्कृत्य) हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ?
अवदातिका—तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्।
सीता—हञ्जे ! त्वं किंचिन्न भणसि ?
चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते।
(पुलक दर्शयति)
सीता—हञ्जे ! आदर्शं तत्वदानय।
चेटी—यद् भट्टिनि आज्ञापयति। (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि ! अयमादर्शः।
सीता—(चेटीमुखं विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि वक्तुकामा।[1]

इस संवाद में सीता में स्त्र्योचित औत्सुक्यभाव, सरल स्वभावता परिहास-शीलता आदि गुणों का प्रदर्शन करके कवि ने त्व किमपि वक्तुकामा यह लिख कर तुरन्त ही प्रसंग को मोड़ दिया है।

(२) राम—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?
सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्।
राम—मयैकाकिना किल गन्तव्यम्।
सीता—अतो नु खल्वनुगच्छामि।
राम—वने खलु वस्तव्यम् !
सीता—तत् खलु मे प्रसादः।
राम—श्वश्रूश्वसुरशुश्रूणापि च ते निर्वर्तयितव्या।
सीता—एनामुद्दिश्य देवताभ्यः प्रणामः क्रियते।[2]

इस संवाद में सीता की राम के प्रति एकनिष्ठता, प्रेम, कभी अलग न रहने

---

१. प्रतिमानाटक अङ्क—१ पृ० १२-१४।
२. प्रतिमानाटक अङ्क—१ पृ० ३६।

का निश्चय आदि गुणों की अभिव्यक्ति होती है; अतः सरल छोटे वाक्यों में कवि ने अति उदार और उदात्त भावनाओं को संभृत कर दिया है ।

भरतः—आर्य ! अभिवादये ।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण-
मालिंग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकलां
प्रह्लादय व्यसन दग्धमिदं शरीरम् ॥७.७॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।

सीता—आर्यपुत्रेण सह चिरसञ्चारी भव ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मण—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिषजस्व गाढम् ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

इस संवाद में भाइयों में परस्पर अतिशय स्नेह, छोटे भाई का विनय और बड़े भाई का वात्सल्य प्राञ्जल रूप से अभिव्यक्त होते हैं ।

(४) भरतः—पितुर्मे को व्याधिः ?

सूतः—हृदयपरितापः खलु महान् ।

भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः ?

सूतः—न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।

भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि ?

सूतः - भूमौ निरशनः ।

भरत—किमाशा स्यात् ?

सूतः—दैवम् ।

भरतः—स्फुरति हृदयं वाह्यय रथम् ॥३.१॥

पद्यात्मक रूप में निबद्ध यह संवाद भरत के पिता के प्रति स्नेह, स्वास्थ्य-चिन्ता, आदर आदि भावों को व्यक्त करता है, जो अपने पिता के समाचार जानना चाहते हैं; परन्तु सूत उस समाचार को प्रकट होने देना नहीं चाहता ।

११. प्रतिमानाटक में चरित्र-चित्रण

पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में भास ने अपूर्व कुशलता प्रदर्शित की है । पात्रों की मनोगत भावनाओं का चित्रण करने में वे विशेष कुशल हैं । भास के पात्र एक अनुपम आदर्श तथा सामाजिक सुव्यवस्था के आदर्श को प्रस्तुत करते हैं । 'प्रतिमानाटक' में रामायण से कथानक को लेकर भास ने पात्रों की चरित्रगत् विशेषताओं को भी सुरक्षित रखा है । पुत्रवत्सल दशरथ, सत्व्रती, आज्ञापालक एवं भाईयों के प्रति वात्सल्य रखने वाले राम, बड़े भाई के प्रति अनुरक्त लक्ष्मण-भरत-

शत्रुघ्न, पति का हर अवस्था में अनुगमन करने वाली सीता, स्नेहमयी माताएँ और स्वामिभक्त सुमन्त्र भारतीय जनों के आदर्शों को उपस्थित करते हैं। कवि ने कैकेयी के चरित्र में अवश्य कुछ परिवर्तन किया है। उसकी निर्लोभिता और पतिहित-कल्पना उज्ज्वल है। जो अपने लिए अपयश का कलंक ओढ़ कर भी पति का हित सिद्ध करने का प्रयास करती है। इस स्थल पर 'प्रतिमानाटक' के पात्रों के चरित्रों की विशेषताएँ संक्षेप से कही जाती हैं—

(क) राम—

राम के चरित ने भारतीयों के हृदयों में सदा से ही एक अनुपम श्रद्धा का भाव सर्मारत किया है। भारतीयों ने उनको मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा। अर्थात् वे सभी पुरुषों में उत्तम हैं। समाज की तथा पुरुषों की, सामाजिक व्यवहारों की जो भी मर्यादाएँ होनी चाहियें, वे राम में निहित हैं। 'रामायण' के राम की उन विशेषताओं ने राम को विष्णु के अवतार के रूप में कल्पित होने का अवसर प्रदान किया, परन्तु भास 'प्रतिमानाटक' में उनको इस रूप में प्रस्तुत नहीं करते। यद्यपि भास की निष्ठा विष्णु देवता के प्रति है और 'अभिषेकनाटक' में उन्होंने राम के अवतारत्व की कल्पना भी की है, परन्तु 'प्रतिमानाटक' में इस अवतारत्व का संकेत नहीं है। कवि ने यहाँ उनको एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श राजा और शौर्य के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। राम जहाँ शक्ति के आगार हैं, वहीं भय से मुक्त भी हैं। रावण भी राम के शौर्य और उदात्तता को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। राम के गुणों को 'प्रतिमानाटक' के सन्दर्भ में संक्षेप में दिया जाता है—

(१) माता-पिता के प्रति भक्ति—राम की माता और पिता के प्रति निश्छल भक्ति है। पिता का आदेश उनको हर प्रकार से मानना है तथा उनकी प्रतिज्ञा भंग न हो जावे इसका ध्यान रखना है। वे कहते हैं कि पुत्र को पिता के वचनों का पालन करना ही चाहिये। यदि पिता के वचन का पालन पुत्र करता है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?[१] भरत से वे कहते हैं कि मैं पिता के आदेश से वन में आया हूँ हमारा कुल सत्यधन है; अतः उसका उल्लंघन करके नीच मार्ग पर नहीं जल सकता।[२] राम को पिता के प्रति अत्यधिक स्नेह है। भरत का कथन है कि राम ने लोक में पिता के प्रति स्नेह प्रदर्शित कर दिया है।[३] सुमन्त्र राम को पिता का प्रिय करने वाला कहते हैं।[४] राजा दशरथ कहते हैं कि राम सदा अपने गुरुजनों की सेवा में रत रहते हैं।[५]

---

१. स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदिवचः कस्तत्र भो विस्मयः ।। प्रतिमा० १.५ ।।

२. पितुर्नियोगादहमागतं वनं न वत्स दर्पान्न भयात्र विभ्रमात् ।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ।। प्रतिमा० ४.२० ।।

३. अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः ? प्रतिमा पृ० १७८ ।।

४. पितुः प्रियकरस्य ।। प्रतिमा० ४.२ ।।

५. गुरुशुश्रूषणे युक्त ।। प्रतिमा० २.६ ।।

राम की माताओं के प्रति अतिशय भक्ति है। कौशल्या तो उनकी सगी माता है ही, जिनका वे राज्याभिषेक के समय आशीर्वाद लेते हैं, कैकेयी के प्रति भी, जिसने कि उनको वनवास दिया तथा राज्यच्युत किया, उनकी भक्ति कम नहीं है। कैकेयी ने उनको राज्यच्युत किया है, उसमें भी वे कोई गुण ही देखते हैं।[1] कैकेयी की वे निन्दा सुनना नहीं चाहते।[2] लंका विजय करके लौटने पर वे कैकेयी का भी आशीर्वाद लेते हैं और राज्यग्रहण करते हैं।

(ii) भ्रातृस्नेह—भाईयों के प्रति राम का सहज, स्वाभाविक तथा आन्तरिक स्नेह है और वे उन पर वात्सल्य भाव रखते हैं। लक्ष्मण के प्रति वे अगाध स्नेह रखते हैं। उसको वे धैर्य का सागर समझते हैं। वन के लिए जाने का अनुरोध करने पर वन के कष्टों की कल्पना करके स्नेहवश रोकने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु सीता के कहने पर स्वीकार लेते हैं। वनों में रहते हुए लक्ष्मण उनके परम सहायक हैं। भरत द्वारा जल लाने पर राम कहते हैं कि अब तो इसने लक्ष्मण के कार्य को छीन लिया। कोई भी कार्य उपस्थित होने पर उनको लक्ष्मण का ध्यान आता है। काञ्चनपार्श्व मृग को देखकर वे समझते हैं कि लक्ष्मण इसको पकड़ लायेगा। भरत के आने पर भी वे लक्ष्मण को ही उसे लाने भेजते हैं।

भरत को राम अपने प्राणों के समान ही चाहते हैं। भरत को राज्य मिले इसमें उनको अत्यधिक प्रसन्नता है। वे जानते हैं कि कैकेयी के विवाह के समय यह शर्त हुई थी कि उनका पुत्र राजा होगा; अतः अपना राज्याभिषेक होने को वे भाई के राज्य का अपहरण करना समझते हैं।[3] भरत के आगमन का समाचार जान कर वे गद्गद हो जाते हैं। उनका स्वर उनके हृदय को मानो भिगो देता है।[4] भाई का स्नेह तो अनुपम होता है। भरत को देखते ही वे दोनों भुजाओं में बाँध लेना चाहते हैं।[5] भरत द्वारा राज्य को अर्पित करने पर भी वे चाहते हैं कि भरत ही राजा रहें, परन्तु भरत के अत्यधिक अनुरोध पर १४ वर्ष बाद पुनः राज्य को ग्रहण करने का वचन देते हैं।

राम के तीसरे भाई शत्रुघ्न हैं, परन्तु भास ने उनको कम ही उपस्थित किया है। राज्याभिषेक के समय उपस्थित होकर वे राम को राज्यारोहण की बधाई देते हैं। राम उनके प्रति स्नेह प्रकट करते हैं।

(iii) पत्नी-स्नेह—राम को अपनी पत्नी सीता से अत्यधिक अनुराग है।

---

१. किमम्बाया ? तेन हि उदकेणात्र भवितव्यम् ।। प्रतिमा० पृ० २७ ।।
२. अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि ।। प्रतिमा० पृ० ३१ ।।
३. तस्य लोभाऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् , प्रतिमा० १.१५ ।।
४. स्वरसंयोगः क्लेदयतीव मे हृदयम् ।। प्रतिमा० पृ० ११५ ।।
५. भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः । प्रतिमा० ४.१२ ।।
६, वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।। प्रतिमा० ४.१६

सीता को वल्कल पहने देखकर उनको कुतूहल होता है। उस समय सीता ने सारे आभूषण उतार दिये हैं। वे सीता के समक्ष दर्पण लेकर खड़े हो जाते हैं, जिससे कि वह आभूषण धारण कर सके।[1] वे सीता को अपना अर्धांश ही समझते हैं।[2] सीता द्वारा वन जाने का अनुरोध करने पर वे उसको इसलिए रोकते हैं; क्योंकि वनों में रहना अत्यधिक कष्टदायक हैं। सीता उनके मन के दुःखों को दूर करती रहेगी और उसके पास रहकर वे अपने मन को बहला सकते हैं।[3] सीता को चिन्ता बनी रहती है कि जो सीता हाथ में दर्पण उठाने में थकावट का अनुभव करती थी, उसको अब घड़ा उठाने में भी कष्ट नहीं हो रहा।[4] सीता को रावण द्वारा अपहृत करने पर वे लंका को जीतकर तथा रावण को मारकर वापिस ले आते हैं। वस्तुतः सीता के प्रति राम के स्नेह को कवि ने भारतीय गार्हस्थ्य जीवन के अनुपम स्नेह-आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है।

(iv) मित्र और सहायक—राम एक अच्छे मित्र और मित्र के सहायक भी हैं। सुग्रीव से मित्रता करके वे उसकी पूरी सहायता करते हैं। बाली को मारकर वे उसको वानरों का राज्य तो सौंपते ही हैं, पत्नी से भी मिलन करा देते हैं।[5]

(v) कर्त्तव्यपालन—कर्त्तव्यनिष्ठ के रूप में भी राम का चरित्र भास ने उभारा है। सम्बन्धियों के प्रति तो उनका कर्त्तव्य है ही, राज्य के प्रति भी उनका कर्तव्य है। वे राज्य की रक्षा परम आवश्यक समझते हैं[6] क्योंकि राज्य की एक मुहूर्त भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।[7] पिता का श्राद्ध करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। पिता के वैभव के अनुरूप पिता का श्राद्ध करना चाहिये। परिव्राजक वेशधारी रावण के काञ्चनपार्श्व मृग का नाम सुनकर उसको लेने के लिए धनुष-बाण उठा कर तुरन्त चले जाते हैं। मर्यादापालन की ओर उनका बहुत ध्यान है। लक्ष्मण के हाथ में धनुष-बाण को देखकर वे कहते हैं—

> तातें धनुर्न मयि सत्यमवेक्षमाणे
> मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।
> दोषेषु बाह्य मनुजं भरतं हनानि
> किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ प्रतिमा० १.२२

---

१. आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मया ॥ प्रतिमा १.६ ॥
२. शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ प्रतिमा० १.१० ॥
३. ईदृशशोकविनोदनार्थमवस्था कुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि ॥ प्रतिमा० पृ० ११४ ॥
४. योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ॥ प्रतिमा० ५.३ ॥
५. सुग्रीवो भंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ प्रतिमा० ६.१० ॥
६. मे शापितो न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥ प्रतिमा० ४.२४ ॥
७. राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ॥ प्रतिमा० पृ० १३८ ॥

मुनियों की रक्षा करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसके लिए उन्होंने राक्षसों से भी वैर मोल ले लिया था।[1]

(vi) **समभाव और निर्लोभिता**—सुख-दुःख में तथा लाभ-हानि में राम का समभाव है। राज्य से च्युत होने में उनको कष्ट नहीं है। राज्य के प्रति उनको जरा-सा भी लोभ नहीं है। इससे तो उनको प्रसन्नता ही है और उसमें वे अनेक गुण देखते हैं—

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शो नास्ति शङ्काप्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ प्रतिमा० १.१४ ॥

इस राज्य को उन्होंने तिनके के समान छोड़ दिया था।[2] भरत द्वारा राज्य को ग्रहण करने की प्रार्थना करने पर वे राज्याभिषेक से इन्कार करते हैं। भरत के अत्यधिक अनुरोध करने पर वे १४ वर्ष के वनवास की अवधि व्यतीत होने पर राज्याभिषेक को स्वीकार कर लेते हैं तथा उसको भी माता कैकेयी के आदेश से ही स्वीकार करते हैं।[3]

(vii) **सभी जनों का राम के प्रति स्नेह भाव**—राम के प्रति न केवल उनके सम्बन्धियों का, अपितु प्रजाजनों और सेवकों का भी स्नेह और भक्ति का भाव है। राम के वनवास का आदेश मिलने पर सारे सेवक आँखों में आँसू भर कर दीन भाव से राजा दशरथ की निन्दा करते हैं।[4] नगर के हाथियों, घोड़ों और प्रजाजनों के दुःखों का पार नहीं है। वे रोते हुए उसी ओर देखते हैं, जिधर राम गये हैं।[5] राम सभी प्रजाजनों के हृदयों को आनन्दित करने वाले हैं।[6]

(viii) **शौर्य एवं तप**—भास ने राम के शौर्य और तप की अनेक स्थलों पर अभिव्यंजना की है। वे बलशालियों के उत्तम उदाहरण हैं।[7] अपने शौर्य और तप से

---

१. वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ॥ प्रतिमा० ६.११ ॥
२. तृणं वदगणितैश्वर्यः ॥ प्रतिमा० पृ० ५३ ।
३. कैकयी—गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् ॥ प्रतिमा० पृ० २०६ ॥
४. एते भृत्याः स्वानिकर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलासाः ।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ प्रतिमा० २.१३ ॥
५. नागेन्द्राः यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
हृषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालश्च पौराः जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चर्दिशा
रामो याति यथा सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥ प्रतिमा २.२ ॥
६. सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः । प्रतिमा० पृ० ५५ ॥
७. सत्ववतां सन्निदर्शनम् ॥ प्रतिमा० पृ० १०९ ॥

वे सभी कार्यों को करने में समर्थ हैं। धनुष से जो कार्य सिद्ध न हो उसको तपस्या से तथा तप से जो सिद्ध न हो, उसका धनुष से सिद्ध करने की सामर्थ्य रखते हैं।[1] हिमालय यदि उनको काञ्चनपार्श्व मृग को नहीं दिखायेगा तो वे बाणों से उसका भेदन कर सकते हैं।[2] राम के इस शौर्य को, वीर्य को, बल को और वेग को देखकर रावण भी आश्चर्यचकित हो जाता है।[3]

राम के विविध गुणों का कवि ने अनेक निमित्तों से कथन किया है। इस सम्बन्ध में यह श्लोक उद्धृत करना उचित होगा—

सत्यसन्ध स्थितप्रज्ञ विमत्सर जगत्प्रिय ।
गुरुशुश्रूषणे युक्त प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥ प्रतिमा० २.६ ॥

(ख) भरत—

'प्रतिमानाटक' के दूसरे प्रमुख पात्र भरत हैं। वे राम के छोटे भाई तथा सभी गुणों से विभूषित हैं। भरत की सबसे बड़ी विशेषता कवि ने राम के प्रति भक्ति और स्नेह कही है तथा यह भारत की परम्पराओं के अनुरूप है। पुराणों में भरत को भी नारायण के अंश का अवतार कहा गया है तथा इनकी इस रूप में पूजा होती है। ऋषिकेश का भरत मन्दिर इसका उदाहरण है, परन्तु भास ने भरत को इस रूप में नहीं देखा। राम के प्रति भक्ति के साथ भरत में अन्य भी अनेक गुण हैं। उनका वर्णन नीचे किया जाता है—

(i) भ्रातृस्नेह—भास ने भरत को राम और लक्ष्मण दोनों से छोटा कहा है, परन्तु 'रामायण' के अनुसार भरत की अवस्था लक्ष्मण से अधिक है। तथापि यहाँ हमको भास के अनुसार ही भरत का चरित्र देखना है।

भरत की राम और लक्ष्मण के प्रति गहन अनुराग और भक्ति कवि ने अभिव्यञ्जित की है। राम को वे अपना परम देवता ही समझते हैं।[4] ननिहाल से अयोध्या लौटते हुए वे सोच रहे हैं कि मुझको देखते ही शीघ्र ही मेरे पास आ जायेंगे।[5] राम के वन जाने के समाचार सुनकर वे तुरन्त ही शोक से मूर्च्छित हो जाते हैं।[6] वे ही राम को वन से वापिस लाने का निश्चय करते हैं और कहते हैं कि राम के बिना अयोध्या नहीं है। मैं वहीं जाऊँगा।[7] पिता और भाई से रहित

---

१. धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ प्रतिमा० ५.६ ॥
२. सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥ प्रतिमा० ५.१२ ॥
३. अहो बलमहोवीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ॥ प्रतिमा० ५.१४ ॥
४, तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवत परमं मम ॥ प्रतिमा० ४.३ ॥
५. त्वरितमुपगता इव भ्रातरः ॥ प्रतिमा० ३.३ ॥
६. भरत—कथमार्योऽपि वनं गतः (द्विगुणं मोहमुपगतः) ।
७. तत्रयास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ प्रतिमा० ३.२४ ॥

अयोध्या उनके लिए जंगल के समान है। वे राम की ओर उसी प्रकार दौड़ रहे हैं, जैसे कि प्यासा नदी की ओर दौड़ता है।[1] वे हर प्रकार से राम को लौटाने का प्रयत्न करते हैं। उनके न मानने पर व्यथित होकर कहते हैं—

अपि सुगुण ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च।
सुपुष पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद भरतमार्तं पश्य तावद् यथावत् ।। प्रतिमा० ४.२१ ।।

राम के वापिस न लौटने तथा वनवास के १४ वर्ष वन में रहने का निश्चय करने पर वे राम से प्रतिज्ञा करा लेते हैं कि १४ वर्षों के बाद वे वापिस आकर राज्य को ग्रहण करेंगे। उसके बाद भी वे स्वय राज्य के संचालक नहीं बने रहना चाहते। वे राम से उनकी पादुकाओं को माँग लेते हैं, जिनके प्रतिनिधि बन कर वे प्रजा पालन करेंगे।[2] सीता के अपहरण के समाचार से वे अत्यधिक पीड़ित होते हैं और सेना सजा कर राम की सहायता के लिए चल देते हैं। अन्त में १४ वर्ष पूर्ण होने पर वे राम को राज्य वापिस कर देते हैं।[3]

भरत का लक्ष्मण के प्रति भी उसी प्रकार से अनुराग और स्नेह है। लक्ष्मण को देखते ही वे उनको विनम्र अभिवादन करते हैं तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

(ii) माता-पिता के प्रति भक्ति—भरत का अपने पिता के प्रति भी अत्यधिक भक्तिभाव और स्नेह है। ननिहाल में उसने सुना कि पिता अत्यधिक रुग्ण हैं। उनका समाचार जानने की उसको अत्यधिक उत्सुकता है। वे कल्पना करते हैं कि अयोध्या पहुँचने पर पिता के चरणों में सिर रख देंगे तथा पिता अति स्नेह से उसको ऊपर उठा लेंगे।[4] पिता की मृत्यु का समाचार जानकर वे अति उत्पीड़ित होते हैं। अयोध्या लौटने के लिए अत्यधिक आग्रह करने पर राम भरत से कहते हैं कि तुम अपने पिता को क्या असत्यवादी बनाना चाहते हो[5], तो वे राम के कहने से वापिस लौटना स्वीकार कर लेते हैं। सामान्यतः माता के प्रति भी उनकी भक्ति और स्नेह है। वे कल्पना कर रहे हैं कि अयोध्या में माताएँ उनको स्नेह के आंसुओं

---

१. अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।। प्रतिमा० ३.१० ।।

२. पादोपभुक्ते तव पादुके मे एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना।
यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावद् भविष्याम्यनयोर्विधेयः ।।
प्रतिमा० ४.२५ ।।

३. भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।। प्रतिमा० पृ० ३०६ ।।

४. पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः।
प्रतिमा० ३.३ ।।

५. किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ।। प्रतिमा० ४.२३ ।।

से भिगो देंगी।[1] अपनी माता को राज्य का लोभी, पिता की मृत्यु का कारण और राम के वनवास का कारण समझ कर ही वे कैकेयी पर क्रोधित होते हैं और उसको बुरा-भला कहते हैं, परन्तु जब उनको पता लगता है कि उनकी माता निर्दोष है तथा परिवार की भलाई के लिए ही उन्होंने ऐसा किया था तो वे माता से क्षमा माँगते हैं।[2]

(iii) वंश के प्रति गौरव-भाव—भरत का अपने वंश के प्रति अटूट अनुराग और गौरव है। अपने वंश के अपमान को वे सहन नहीं कर सकते। रावण द्वारा सीता के अपहरण का समाचार सुनकर उनको महान् कष्ट होता है और वे कैकेयी से कहते हैं—

हन्त भोः सत्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम्॥ प्रतिमा० ६.१४॥

तदनन्तर कुल के अपमान का बदला लेने हेतु राम की सहायता के लिए वे तुरन्त ही सेना को सज्जित करते हैं।

लोभी नहीं था (iv) निर्लोभीता—भरत में अन्य भी अनेक गुण हैं। उनको राज्य का जरा-सा भी लोभ नहीं है। वे इसलिए भी दुःखी होते हैं कि लोक यह समझेगा कि भरत ने राज्य के लोभ से अपनी माता से कह कर राम को वनवास दिलाया है। वे कैकेयी से कहते हैं कि तुमने हमें अपयश से भर दिया है। राम के सन्तुष्ट होने पर वे समझते हैं कि सभी कलङ्क उनके दूर हो गये हैं। वे कहते हैं—

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽह सुतः।
भ्रातृणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्तेर्महद्भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः॥ प्रतिमा० ४.२७॥

(v) शौर्य—भरत में शौर्य और ओज भी कम नहीं है। सीता के अपहरण के समाचार सुनकर वे तुरन्त ही सेना को तैयार करके राम की सहायता के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

(vi) बाह्य सौन्दर्य—कवि ने भरत के बाह्य सौन्दर्य और स्वर की बहुत प्रशंसा की है। भरत का स्वर अत्यधिक प्रभावशाली है—

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररसः।

श्रुति

---

१. क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः॥ प्रतिमा० ३.३॥
२. भरतः—दिष्ट्यालपराद्धात्रभवती। अम्बः यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तद् सर्वं मर्षयितव्यम्। अम्ब! अभिवादये॥
प्रतिमा० पृ० १९०–१९१॥

यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ प्रतिमा० ४.७ ॥

कवि ने भरत के रूप को बिल्कुल राम जैसा तथा शरीर को पुष्ट तथा प्रभावशाली कहा है—

मुखमनुपमं आर्यस्याभं शशाङ्कमनोहरं
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम् ।
द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥ प्रतिमा० ४.८ ॥
अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः ।
सङ्क्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति ॥ प्रतिमा० ४.११ ॥

(ग) लक्ष्मण—

राम के प्रिय तथा अनुगामी भ्राता के रूप में भास ने अपने नाटक में लक्ष्मण को प्रस्तुत किया है। वे राम के अनुगत हैं तथा कभी भी उनसे अलग रहना नहीं चाहते। वन जाने का निश्चय करने वाले राम द्वारा वल्कल धारण करने पर वे राम से कहते हैं कि हर एक वस्तु का आधा मुझे देते थे, तो इस वल्कल का लालच क्यों करते हैं।[1] सीता से वे कहते हैं कि वन में राम के एक चरण की सेवा तुम करना और एक की मैं करूँगा।[2] भाई के प्रेम में उनका रोम-रोम भरा हुआ है। वन में वे राम की सम्पूर्ण रूप से सेवा करते थे। कोई भी कार्य उपस्थित होने पर राम उनका ही स्मरण करते थे। काञ्चनपार्श्व मृग को पकड़ने के लिए राम ने लक्ष्मण का ही स्मरण किया था।[3] जल लाने के लिये वे लक्ष्मण को ही कहते हैं। जब भरत इस कार्य को करने के लिए कहते हैं, तो राम कहते हैं कि लक्ष्मण का कार्य तो छिना जा रहा है।[4] वे राम का छाया के समान अनुगमन करते हैं।[5]

भास ने लक्ष्मण में अन्य भी आन्तरिक गुणों की अभिव्यञ्जना की है। वे धैर्य के सागर हैं[6] और शौर्य उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ है। वे भक्ति के साक्षात् मूर्ति हैं। उनको क्रोध भी उत्पन्न होता है, परन्तु तब, जबकि राम पर कोई विपत्ति

---

१. निर्योद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे ।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥ प्रतिमा० १.२६ ॥
२. गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ प्रतिमा० १.२७ ॥
३. अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ॥ प्रतिमा० ५.१३ ॥
४. राम—(आचम्य) मैथिलि ! विशीर्यं ते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः । पृ० १२७ ।
५. तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तं दिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥ प्रतिमा० २.१० ॥
६. लक्ष्मणो धैर्यसागरः ॥ प्रतिमा० १.१७ ॥

हो। उनको राज्य का लोभ नहीं है, परन्तु क्योंकि कैकेयी द्वारा राम को १४ वर्ष का वनवास भी देने की बात कही गयी;[1] अतः वे कुपित होकर उनका भी वध कर सकते हैं। इस प्रसंग में वे उद्धत भी हो सकते हैं।

(घ) दशरथ—

भास ने दशरथ की दो विशेषताएँ व्यक्त की हैं—एक तो वे अत्यधिक शौर्यशाली थे तथा देवासुर संग्रामों में इन्द्र भी उनसे सहायता की याचना करते थे। दूसरे उनका राम के प्रति अत्यधिक स्नेह था।

कवि ने स्थान-स्थान पर जिस प्रकार से दशरथ के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, उससे उनकी वीरता व्यञ्जित होती है तथा देवासुर संग्रामों में वे इन्द्र की सहायता के लिए जाते थे; यथा—

देवासुरसङ्ग्रामेषु अप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति ।। प्रतिमा० पृ० ६।।

यस्याः शक्रसमो भर्ता ।। प्रतिमा० १.१३ ।।

दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य ।। प्रतिमा० ४.२ ।।

अपने पुत्र राम के प्रति दशरथ के अगाधस्नेह की उज्ज्वल अभिव्यञ्जना कवि ने की है। राम के वनगमन के समाचार को सुनकर दशरथ उधर को ही चल पड़े थे, परन्तु उसको देख नहीं पाये। वे पीड़ित होकर समद्रगृह में लेट जाते हैं तथा पुत्र का समाचार लाने वाले सुमन्त्र की प्रतीक्षा करते हैं। अपने बच्चों के लिए वे कहते हैं कि हाय वे वन चले ही गये।[2] खाली रथ लाने वाले सुमन्त्र को देखकर वे कहते हैं कि मेरा काल ही आ गया है।[3] राम को, सीता को और लक्ष्मण को वे बार-बार पुकारते हैं। राम को न आया देखकर हृदय में अत्यधिक उत्पीड़ित होकर वे स्वर्गगमन करते हैं।

(ङ) सुमन्त्र—

कवि ने सुमन्त्र को एक उदात्त, राजा का हितकारी तथा स्वामीभक्त सारथि के रूप में प्रस्तुत किया है। वह इक्ष्वाकुकुल में इन विपत्तियों को देखकर अपनी दीर्घ आयु की निन्दा करता है—

---

१. यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः। वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ।। प्रतिमा० १.२३ ।।

२. हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम
हा वत्स लक्ष्मण सलक्षणसर्वगात्र ।
हा साध्वि मैथिलि पतिस्थितचित्तवृत्ते
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ।। प्रतिमा० २.४ ।।

३. शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ।। प्रतिमा० २.११ ।।

नरपतिविपन्नं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथता कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराधमायुषा मे ॥

प्रतिमा० ४.१८ ॥

राजा दशरथ के मर जाने पर वह समझता है कि मैं सूने रथ का सारथि हूँ। मैं कृतघ्न हो गया हूँ, जो कि अब भी जीवित हूँ—

अभ्यास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्बयमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥

प्रतिमा० ३ १५ ॥

इक्ष्वाकुवंशियों के सुख-दुःख में वह सदा साथ है, जो कि उनके आदेश का पालन करता है। भरत ने राम आदि का वृत्तान्त जानने के लिए सुमन्त्र को भेजा था। उसके अत्यधिक दुःखी होकर लौटने पर भरत को शंका हुई कि कहीं वह बीच में से ही तो नहीं लौट आया। तब सुमन्त्र कहता है कि आपके आदेश से जब मैं राम को देखने के लिए जनस्थान को चला था तो बीच में से ही कैसे लौट आता।[1]

सुमन्त्र इक्ष्वाकुवंशियों का सारथि ही नहीं है, अपितु सहायक भी है। भरत जब भी राम के वियोग क कारण घबराते हैं, तो वह उनको सान्त्वना देता है। वह यह भी जानता है कि राजसिंहासन खाली नहीं रहना चाहिये, इससे राज्य पर विपत्तियाँ आ सकती हैं ;[2] अतः वह भरत को राज्याभिषेक कराने का परामर्श भी देता है।

(घ) रावण—

महाकवि भास ने 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटकों में रावण के चरित्र को चित्रित किया है। 'अभिषेक' नाटक में युद्ध का दृश्य होने के कारण रावण का अधिक विस्तृत वर्णन है। 'प्रतिमानाटक' में रावण का केवल एक दृश्य है, जबकि वह परिव्राजक का रूप रखकर आता है और सीता का अपहरण करके ले जाता है।

भास ने रावण को राक्षस जाति का कहा है, जो कि निशाचर है।[3] अर्थात् वे रात के अँधेरे में अपना कार्य निष्पन्न करने में अधिक चतुर होते हैं। रावण ने इस दृश्य में कपट का आचरण करके अपना कार्य किया है, परन्तु इस दृश्य के द्वारा कवि ने 'रामायण' की कथा की अनेक विसंगतियों को दूर कर दिया है। 'रामायण' में मायामृग को पकड़ने के लिए जाते समय राम, सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को छोड़ गये थे तथा सीता ने कटु वचनों का प्रयोग करके लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए भेजा था, परन्तु भास ने जिस प्रकार सीता का हरण रावण से कराया, उससे वह कटुताजनक वातावरण नहीं बनने पाया।

---

१. सुमन्त्रः—कुमार ! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तयिष्ये ॥ प्रतिमा० पृ० १७९ ॥

२. एवं नृपतिहीनाहि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ प्रतिमा० ३.२३ ॥

३. निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा ॥ प्रतिमा० ५.१ ॥

रावण ने सीता का अपहरण अकारण अथवा केवल वासना के वशीभूत होकर ही नहीं किया। वह राम से वैर का बदला लेना चाहता था; क्योंकि राम ने शूर्पणखा को विकृत किया था तथा खर-दूषण का वध किया था।[1] वह प्रत्यक्ष रूप से राम से युद्ध करने से बचना चाहता रहा होगा इसलिए नहीं कि वह युद्ध से डरता था, परन्तु इसलिए कि एक नारी के लिए युद्ध करना और सैनिक की प्राणहानि करना वह अभीष्ट नहीं समझता होगा।

'प्रतिमानाटक' में रावण को एक विद्वान् पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है, जो अनेक विद्याओं का ज्ञाता था।[2] उसने जान-बूझ कर श्राद्धकल्प की भी बात कही। सम्भवतः उसने गुप्तचरों से पता लगवा लिया होगा कि राम को पिता का श्राद्ध करने की चिन्ता है। इसके लिए वह पहले से तैयारी करके आया होगा।

रावण को अपने पराक्रम का बहुत गर्व था। सीता का अपहरण करते समय उसने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और अपने पराक्रम के विषय में इस प्रकार बताया—

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिताः
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ।
दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्यच्छलैः
स त्वां हर्तुमनाः विशालनयने प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥ प्रतिमा० ५.१६ ॥
भग्नः शक्रो कम्पितो वित्तनाथः क्रुष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥
प्रतिमा० ५.१७ ॥

रावण को अपने पराक्रम का भी बहुत अभिमान है। सीता का अपहरण करते समय वह जनस्थाननिवासियों से कहता है कि मैं सीता का अपहरण किये ले जा रहा हूँ। राम यदि क्षत्रिय हैं तो अपना पराक्रम दिखायें।[3]

(घ) कैकेयी—

भास ने कैकेयी के जिस चरित्र को अंकित किया है, वह 'रामायण' की कैकेयी से सर्वथा भिन्न है। 'रामायण' की कैकेयी तो मन्थरा के बहकाने के वशीभूत हो गई थी और राज्य के लोभ में आकर उसने भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए वनवास, ये दो वर माँगे थे, परन्तु भास ने कैकेयी के चरित्र को अति

---

१. प्रतिमा० ५.७ ॥

२. भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतस श्राद्धकल्पं च ॥ प्रतिमा० पृ० १५१ ॥

३. बलादेष दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ प्रतिमा० ५.१२ ॥

उज्ज्वल दिखाया है। उसने पति की और कुल की रक्षा के लिए सब प्रकार की निन्दाओं और ताड़नाओं को सहन किया। दशरथ उसको व्याघ्री के समान कहते हैं[1] और सेवक-सेविकाएँ उसे राज्य की लोभिन, पति की हत्यारिन और पुत्र को वनवास देने वाली कहते हैं।[2] भरत उसके प्रति अत्यधिक घृणा प्रकट करते हैं तथा उसे पति से द्रोह करने वाली बताकर माता भी मानना स्वीकार नहीं करते।[3] उसका हृदय विधाता ने वज्र के समान कठोर बनाया है।[4] सीता के अपहरण की बात सुनकर तो भरत को और भी अधिक उत्तेजना होती है और वे कहते हैं कि तुम वधू को पाकर ही इस कुल का अपमान हुआ और यहाँ की पुत्रवधू का अपहरण हुआ।[5]

परन्तु कैकेयी ऐसी नहीं है। वह तो कुल की मङ्गलकारिणी है और राम को अपना पुत्र मानती है। भरत द्वारा सीता-अपहरण के लिए स्वयं को दोषी ठहराये जाने पर उसका स्वाभिमान जागृत हो जाता है और उसके आदेश से सुमन्त्र इस रहस्य को बताते हैं, जिस कारण राम को वनवास हुआ—

सुमन्त्र—पुरामृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित्सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानुकारि शब्दसमुत्पन्नवनगजशंकया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः।

भरतः—हिंसित इति शान्तं शान्तं पापम्। ततस्ततः।

सुमन्त्र—ततस्तमेवंगतं दृष्ट्वा—

तेनोक्तं रूदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाऽहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे॥

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम।

कैकेयी—जात! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति।

भरतः— अथ तुल्ये पुत्रविप्रसे कथमस्मरण्यं न प्रेषितः?

कैकेयी—जात! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्तेविप्रवासः।

भरतः—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि?

---

१. वने व्याघ्री च कैकेयी। प्रतिमा० २.८॥

२. अहो! अत्याहितम्। राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम्। लोकोऽपिविनाशं गमितः। निर्घृणा खलु भट्टिणी। पापकं कृतम्। प्रतिमा० पृ० १०॥

३. भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता। प्रतिमा० ३.१८॥

४. अहो धात्रा सृष्टं भवति हृदय वज्रकठिनम्। प्रतिमा० ३.२॥

५. हन्त भो सत्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यान्नभवतीं वधूम्॥ प्रतिमा० ५.१४॥

कैकेयी—जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश-वर्षाणीत्युक्तम् ।

भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य ?

सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च ।

तदनन्तर कैकेयी के अन्तर्मन को और राम के प्रति उनके स्नेह को जान कर भरत को ग्लानि हुई और उन्होंने माता से क्षमा माँगी । उदारहृदया कैकेयी ने भी कहा कि कौन-सी ऐसी माता है, जो पुत्र के अपराध को क्षमा नहीं कर देगी ।[1] अन्त में कैकेयी सेना के साथ वन की ओर जाती है और राम के जनस्थान पहुँचने पर वहीं उनका राज्याभिषेक करने का आदेश देती है ।

(ज) कौशल्या—

राम की माता कौशल्या को भास ने विश्वस्त तथा सेवापरायण पत्नी और उदारहृदया माता के रूप में प्रस्तुत किया है । 'प्रतिमानाटक' में उसका चरित्र उज्ज्वल है । पुत्र को वन भेजने वाले पति की भी वह लगन से सेवा करती है और किसी प्रकार का उलाहना नहीं देती । उसकी सेवा से प्रभावित दशरथ कहते हैं कि तू ही श्रेष्ठ है, जिसने राम को गर्भ में धारण किया है ।[2]

कौशल्या का हृदय अत्यधिक उदार है । पुत्र को वन भेजने वाली कैकेयी तथा उसके पुत्र भरत के प्रति उसके हृदय में कोई ईर्ष्या, द्वेष या कटुता नहीं है । प्रतिमागृह में भरत द्वारा अभिवादन करने पर वह उसको दुःखों से रहित होने का आशीर्वाद ही देती है । तदनन्तर वह भरत से कहती है कि शिष्टाचार का पालन करते हुए तुम अपनी माता की भी वन्दना करो ।[3] जनस्थान में राम के लंका-विजय के अनन्तर पहुँचने पर वह किसी प्रकार का आदेश-प्रत्यादेश नहीं देती । केवल अपना आशीर्वाद ही सबको देती है ।

(झ) सुमित्रा—

भास ने सुमित्रा के चरित्र में धैर्य, सेवावृत्ति और पतिपरायणता की अभिव्यञ्जना की है । उसका एक पुत्र लक्ष्मण तो सदा राम की सेवा में रहता है और दूसरा पुत्र शत्रुघ्न भरत की । दशरथ की रुग्ण अवस्था में सुमित्रा उसकी पूर्ण लगन से सेवा करती है, परन्तु संकोची स्वभाव वश कुछ बोलती नहीं । कौशल्या को ही

---

१. कैकेयी—जात ! का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति ? प्रतिमा० पृ० १९१ ॥

२. राजा—कौशल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु गर्भे रामो धृतः । प्रतिमा० पृ० ५६ ॥

३. कौसल्या—जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे भारतम् । प्रतिमा० पृ० ९९ ॥

बताना पड़ता है कि यह सुमित्रा है। तब दशरथ कहते हैं कि हे सुमित्रे ! तू ही धन्य है। जिसका पुत्र दिन-रात छाया के समान राम का अनुगमन करता है।[१]

(ब) सीता—

सीता के रूप में भास ने एक आदर्श पतिपरायण, सरल स्वभाव की, देवरों के प्रति सहज स्नेह रखने वाली तथा पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली नारी का चित्रण किया है। आज भी भारतीय नारियाँ सीता को पतिव्रत्य का आदर्श मान कर उनको माता मान कर पूजन करती हैं।

सीता उत्तम चरित्र का एक उदाहरण है। पति के साथ वह इतना घुल मिल गयी है कि राम के राजा होने में भी वह डरती है कि कहीं राजकार्यों में उलझ कर वे उससे दूर न हो जावें; अतः राम का राज्याभिषेक रुक जाने पर वह कहती है कि यह मेरे लिए प्रिय बात है कि महाराज ही महाराज रहे और आर्यपुत्र, आर्यपुत्र ही रहे।[२] पति की उन्नति में ही उसकी प्रसन्नता है। पति के राज्याभिषेक का समाचार पाकर कि महाराज उनका अभिषेक कर रहे हैं, वह दासियों से झोली फैलाने को कहती है,[३] जिससे कि उनको पारितोषक बाँट सके।

सीता की सबसे बड़ी विशेषता राम की अनुवर्तिता है। वह राम की अर्धांगिनी है। सीता के वल्कल पहनने पर राम कहते हैं कि जब तुमने ये बाँध लिए तो मेरे आधे शरीर ने पहले ही बाँध लिये।[४] वह राम की केवल भार्या ही नहीं, अपितु सहधर्मचारिणी है;[५] अतः राम के वन जाने का निश्चय करने पर वह तुरन्त ही उनके साथ जाने का निर्णय कर लेती है। पति के साथ वन में रहना और वहाँ के कष्ट उठाना भी उसके लिए प्रसाद है।[६] तारा द्वारा चन्द्रमा के, लता द्वारा वृक्ष के और हथिनी द्वारा हाथी के अनुगमन करने के समान पतिव्रता पत्नी पति का अनुगमन

---

१. राजा—आर्य सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तं दिवं वने।
रामो रघुकुलश्रेष्ठ श्छाययेवानुगम्यते ॥ प्रतिमा० २.१० ॥

२. सीता—प्रियं मे। महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।
प्रतिमा० पृ० २२ ॥

३. सीता—यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशातरमुत्सङ्गं कुरु। प्रतिमा० पृ० १४ ॥

४. शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ प्रतिमा० १.१० ॥

५. (क) सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्। प्रतिमा० पृ० ३९ ॥
(ख) सुमित्रा—भर्तुः सहधर्मचारिणी ॥ प्रतिमा० पृ० ६० ॥

६. सीता—तत्खलु मे प्रसादः। प्रतिमा० पृ० ३९ ॥

करके धर्म का आचरण करती है।[1] वह तो पति की छायामात्र ही है।[2]

कवि ने सीता के पातिव्रत्य की बहुत प्रशंसा की है। भारतीय साहित्य में अरुन्धती को पतिव्रताओं में श्रेष्ठ माना गया है। भास ने भी सीता को साक्षात् अरुन्धती कहा है तथा उनका पति होने के कारण ही राम का आदर है।[3] भरत कहते हैं कि सीता के रूप में अरुन्धती दो हो गयी हैं।[4] सीता के तेज को देखकर रावण को भी आश्चर्य होता है।[5] वह यह कहने को भी बाध्य होता है कि वह भूमि धन्य है' जहाँ सीता है।[6] सीता को सुमन्त्र साक्षात् शील (सदाचार) रूप कहते हैं।

भास ने सीता की तेजस्विता और कोमलता का भी वर्णन किया है। सीता को तपोवन में देखकर भरत कहते हैं कि यह तो स्त्री के रूप में साक्षात् तेज ही है, जो राजा जनक के खेतों में से उत्पन्न हुआ था।[7] राम उनकी कोमलता का वर्णन करते हैं कि सीता के हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाया करते थे, परन्तु अब वृक्षों का सेचन करने में घड़े उठाने में भी नहीं थकते। वन ने उसको कठोर बना दिया है।[8]

कवि ने सीता के स्नेहमय गुण की बहुत अधिक अभिव्यक्ति की है। सबसे पहले तो वह राम के प्रति स्नेहमयी है। जिसका सम्पर्कमात्र राम के सब शोकों को दूर कर देता है।[9] वह लक्ष्मण के प्रति भी बहुत स्नेहशील है। लक्ष्मण के वन जाने के लिए प्रार्थना करने पर राम से कहती है कि उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लें। भरत के प्रति भी सीता का स्नेह न तो कम था और न कम हुआ। तपोवन में भरत के आने पर वह प्रसन्न होती है और अभिवादन किये जाने पर आशीर्वाद वचन कहती है। भरत

---

१. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु व्रजतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ प्रतिमा० १.२५ ॥

२. छायेव न दृश्यते सीता ॥ प्रतिमा० २.७ ॥

३. इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ प्रतिमा० ५.८ ॥

४. अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचरित्रम् । प्रतिमा० पृ० १७८–१७९ ॥

५. अहह, अहो, पतिव्रतायास्तेजः । प्रतिमा० पृ० १६५ ।

६. धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता । प्रतिमा० ५.१७ ॥

७. प्रतिमा० ४.१४ ॥

८. प्रतिमा० ५.३ ॥

९. ईदृशशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि । प्रतिमा० पृ० १४१ ॥

के आगमन से होने वाली सीता की प्रसन्नता तथा वात्सल्य को कवि ने इन शब्दों में कहा है—

> इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मतिव भावं तनये निवेश्य ।
> तुषारपूर्णोत्पलपत्रलेखा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥ प्रतिमा० ४.१३

सीता में नारी सुलभपरिहासप्रियता, कुतूहल और व्यवस्था रखने की प्रवृत्ति भी है। प्रथम अङ्क में ही सखियों के साथ वह हास-परिहास करती है। वल्कल को देखकर कुतूहलवश उसको धारण कर लेती है। तपोवन की सुव्यवस्था उसके आधीन है। प्रातःकाल ही पूजा के लिए पुष्पचयन करती है, झाड़ू-बुहारी लगाती है, और देवपूजन करती है। उसके बाद वह हाथ में घड़ा लेकर आश्रम के वृक्षों को सींचती है। सीता एक आदर्श गृहिणी भी है; जो पति का मनोविनोद करती हुई आवश्यक कार्यों में पति को परामर्श भी देती है। श्राद्ध किस प्रकार किया जावे। इसका परामर्श उसने राम को दिया। गृहस्थ धर्म के अनुसार वह अतिथि-सत्कार में भी तत्पर रही।

११. प्रतिमानाटक का काव्य-सौन्दर्य
(गुण और रीति)

संस्कृत के प्रथम नाटककार भास का काव्य-सौन्दर्य निश्चय ही उच्च कोटि का है। उन्होंने यथासम्भव प्रायः छोटे-छोटे असमस्त सरल वाक्यों का प्रयोग किया है, जो कि कम से कम शब्दों में अधिक भावों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ हैं। यद्यपि कहीं-कहीं उनकी भाषा में लम्बे समास अवश्य आ गये हैं, तथापि सामान्यतः वह भाषा असमासा और मध्यमसमासा ही है।

किसी काव्य के काव्य-सौन्दर्य की परीक्षा के लिए गुण, रीति, अलङ्कार, रस और छन्द की समीक्षा की जाती है। यहाँ इस शीर्षक के अन्तर्गत गुण, रीति और अलङ्कार की समीक्षा की जा रही है, जो कि काव्य के बाह्य-सौन्दर्य को प्रदर्शित करते हैं। रस आदि, जोकि काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य-आधायक हैं। उनकी समीक्षा अगले शीर्षक के अन्तर्गत की गयी है। छन्दों की समीक्षा परिशिष्ट में है।

(क) गुण—

काव्यगत गुणों की संख्या सदा विवाद का विषय रही है। भरत ने दस काव्य-गुण गिनाये थे।[१] भामह ने गुणों की संख्या तीन बतायी। वामन ने दश शब्द-गुण एवं दश अर्थ-गुण कहे, परन्तु उत्तरवर्ती ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों की संख्या तीन ही निर्धारित की। इसके आधार पर यहाँ भी तीन गुण मानकर इनकी समीक्षा की जा रही है।

---

१. श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्यच व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ॥ नाट्यशास्त्र १७/९६ ॥

(१) माधुर्य—माधुर्य गुण में कोमल वर्णों का प्रयोग होता है, रचना में समास या तो होते नहीं या छोटे होते हैं। 'प्रतिमानाटक' में इसके प्रयोग के उदाहरण निम्न हैं—

जय नरवर सेय: स्याद् द्वितीयस्तवारिस्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा।
इति मुनिभिरनेकै: स्तूयमान: प्रसन्नै: क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात्॥
प्रतिमा० ७.१॥

अथवा

अधिगतनृपशब्द धार्यमाणातपत्रं विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम्।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघैर्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्ति।
प्रतिमानाटकम् ७.१२॥

(२) ओज—कठोर वर्णों का प्रयोग तथा लम्बे समासों से ओज गुण अभिव्यक्त होता है; जैसे—

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलं सवेष्टनं चेष्टते।
तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नरवैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाटयते॥ प्रतिमा० ६.३॥

अथवा

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतै:।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम्॥ प्रतिमा० ५.२२॥

(३) प्रसाद—सुनने मात्र से जब अर्थ की प्रतीति हो, तो उस रचना में प्रसाद गुण होता है। यथा—

अयशसि यदि लोभ: कीर्तयित्वा किमस्मान् यदि नृपफलतर्ष: किं नरेन्द्रो न दद्यात्।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो वदतु भवति सत्यं किं तवार्यो न पुत्र:॥
प्रतिमा० ३.२१॥

अथवा

हृदय भव सकामं यत्कृते शङ्कितस्त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं न तावत्
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्य:॥ प्रतिमा० ३.६॥

(ख) रीति—

साहित्य में सामान्यत तीन रीतियों—गौड़ी, पाञ्चाली और वैदर्भी का प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टि से भास की रचनाओं में अधिकांश रूप में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। तथापि गौड़ी और पांचाली रीतियाँ भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाती है। 'प्रतिमानाटक' में इनके उदाहरणों को प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।

(१) गौड़ी रीति—ओज और कान्ति गुणों से युक्त रीति गौड़ी कहलाती है। यह समासबहुला तथा उत्कट पदों से युक्त होती है। कठोर भावों की अभिव्यक्ति के लिए इसका प्रयोग होता है। 'प्रतिमानाटक' में इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—

स्वपक्षपवनोत्क्षेप क्षुभितवनखण्डप्रचण्डचञ्चु-
रभिधावत्येष जटायु । प्रतिमा० पृ० १६६

अथवा कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानुकारिशब्द-
समुत्पन्नगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्न-
चक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसित । प्रतिमा० पृ० १८९

(२) **पाञ्चाली रीति**—माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त रीत को पाञ्चाली कहा जाता है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए इसका प्रयोग होता है; जैसे—

नरपतिनिधनं मयानुभूतं नृपतिसुतकसन मयैव दृष्टम् ।
श्रुत इह च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ।। प्रतिमा० ६.८ ।।

अथवा
हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम
हा वत्स लक्ष्मण सलक्षणसर्वगात्र ।
हा साध्वि ! मैथिलि पतिस्थितचित्तवृत्ते
हा हा गताः किल वन वत मे तनूजा ।। प्रतिमा० २.४।।

(३) **वैदर्भी**—ओज, प्रसाद और माधुर्य से सम्पन्न रीति को वैदर्भी रीति कहा जाता है। यह असमासा या अल्पसमासा होता है। इसमें अर्थ का स्पष्टीकरण शीघ्र होता है। 'प्रतिमानाटक' में प्राय वैदर्भी रीत का ही प्रयोग हुआ है। जैसे—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्ट पिबन्ति जलं खगाः ।
स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटाः बिल जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ।। प्रतिमा० ५.२ ।।

अथवा आर्ये ! उपहारसुमन आकीर्णः । सम्मार्जितः आश्रमः ।
आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद्यावद-
दार्यपुत्रो नागच्छति तावदिमान् बालवृक्षानुदक-
प्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि ।। प्रतिमा० पृ० १४० ।।

१३. प्रतिमानाटक के अलङ्कार

काव्य के शरीर शब्द और अर्थ की शोभा को बढ़ाने वाले तत्त्व अलङ्कार कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार। सत्कवियों के काव्यों में ये अनायास स्वतः सन्निकिष्ट हो जाते हैं। 'प्रतिमानाटक' अलङ्कारो से समृद्ध है और इसमें विभिन्न अलङ्कार विद्यमान हैं। इनका संक्षिप्त निदर्शन कराना समुचित होगा।

(१) **अनुप्रास**—वर्णों का साम्य अनुप्रास होता है। 'प्रतिमानाटक' मे इसका स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। यथा—

स्वपनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डश्चण्डचञ्चुः । प्रतिमा० पृ० १६६ ॥

(१) तीक्ष्णंरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तर वक्षसो ।

(२) वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाटयते ॥ प्रतिमा० ६.३

(३) यमक—अर्थ होने पर भिन्न अर्थ वाले स्वर-व्यञ्जन समुदाय की पुनः उसी क्रम से आवृत्ति होने पर यमक अलङ्कार होता है । यथा—

(क) इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसां मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना ।

निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥

प्रतिमा० ६.१ ॥

(ख) नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ प्रतिमा० ३.२४ ॥

यहाँ पहले उदाहरण में निशा इस स्वर-व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति है; अतः यमक अलङ्कार है । दूसरे उदाहरण में 'आयोध्या' इस स्वर-व्यञ्जना समुदाय की उसी क्रम से आवृत्तियाँ हैं ।

(३) मुद्रा अलङ्कार—प्रकृत अर्थ को बताने वाले पदों से सूचनीय अर्थ का बोधन करना मुद्रा अलङ्कार है । यथा—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।

यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥

प्रतिमा० १.१ ॥

यहाँ प्रकृत मंगलाचरण रूप अर्थ के बोधक पद 'प्रतिमानाटक' की सूचनीय कथा का बोध कराते हैं; अतः मुद्रा अलङ्कार है ।

(४) उपमा—उपमान और उपमेय में जहाँ साहश्य का कथन हो । वहाँ उपमा अलङ्कार होता है । उपमान और उपमेय में साहश्य के साथ कुछ भेद भी विद्यमान रहता है । जहाँ उपमा के चारों अंग विद्यमान हों, वहाँ पूर्णोपमा तथा कोई अंग लुप्त हो, वहाँ लुप्तोपमा है ।

(क) पूर्णोपमा—

माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात् ।

हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् । प्रतिमा० ५.१५ ॥

यहाँ सीता उपमेय, आहुति उपमान, इव उपमावाचक पद और हरामि साधारण धर्म हैं । इस प्रकार उपमा के चारों अङ्ग होने से पूर्णोपमा है ।

(ख) समासगा उपमा—

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः सम्प्रावृणोति दिशः पवनावधूतः ।

शङ्खस्वनश्च परहस्वनधीरनादं सम्मूर्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥ प्रतिमा० ७.४ ॥

यहाँ रेणु उपमेय, लोध्र उपमान, समान उपमावाचक और गौर साधारण धर्म हैं । उपमान लोध्र, उपमावाचक समान और साधारण धर्म गौर के समस्त होने के कारण यह समासगा उपमा है ।

(ग) वाचकलुप्तोपमा—

स्वरसंयोग—घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररमसः ।
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ प्रतिमा० ४.७ ॥

यहाँ भरत का स्वर उपमेय, समदवृषभ का स्वर उपमान, और स्निग्ध तथा मधुर होना साधारण धर्म है। उपमावाचक पद न होने से वाचकलुप्तोपमा है।

(घ) मालोपमा—

एक उपमेय का अनेक उपमानों के साथ सादृश्य वर्णन करने पर मालोपमा अलङ्कार होता है। यथा—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ।
प्रतिमा० २.१॥

यहाँ एक ही नरेन्द्र उपमेय का अनेक उपमानों-मेरु, महोदधि और सूर्य के साथ सादृश्य वर्णन करने से मालोपमा अलङ्कार है।

(५) रूपक—उपमान और उपमेय के अभेद को स्थापित करने के लिए उपमान का उपमेय पर आरोप होने पर रूपक अलङ्कार होता है। यथा—

स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।
दृष्टुं प्रयात्यकृपणेषु तपोवनेषु रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ प्रतिमा० ४.१ ॥

यहाँ राम उपमेय पर शशाङ्क उपमान का आरोप होने से रूपक अलंकार है।

हृदयास्थितशोकाग्निशोषितानमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥ प्रतिमा० ६.५ ॥

यहाँ शोक उपमेय पर अग्नि उपमान का आरोप होने से रूपक अलकार है।

(६) साङ्गरूपक—यदि एक उपमेय-उपमान आरोप के साथ उसके अङ्ग रूप अनेक उपमेय-उपमान आरोपों का कथन किया जावे तो साङ्गरूपक होता है। यथा—

तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः ।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ॥ प्रतिमा० १.२८ ॥

यहाँ धर्मरूप उपमेय पर सारथि रूप उपमान का आरोप है। इसके साथ तप उपमेय पर संग्राम उपमान का, नियम उपमेय पर द्विरद उपमान का और इन्द्रिय उपमेय पर अश्व उपमान का आरोप होने से साङ्गरूपक है।

(७) उत्प्रेक्षा—उपमान में उपमेय की सम्भावना करने पर उत्प्रेक्षा अलकार होता है। यथा—

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ प्रतिमा० १.१७ ॥

यह एक लक्ष्मण में शताकीर्ण की सम्भावना होने से वस्तु उत्प्रेक्षा है।

द्रुमाः धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया ॥ प्रतिमा० ३·२ ॥

यहाँ स्थिर वृक्षों में धावन्ति क्रिया की सम्भावना करने से क्रिया उत्प्रेक्षा है।

(८) **व्यतिरेक**—उपमेय में उपमान की अपेक्षा गुणों का अतिशय कथन होने पर व्यतिरेक अलङ्कार होता है।

योऽहमुत्पतितो वेगान्नदग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिक्षरैः ॥ प्रतिमा० ५·२० ॥

यहाँ "शप्तोऽसीति अरक्षरैः" उपमेय में उपमान "सूर्यरश्मिभिः" की अपेक्षा अधिक गुणों का कथन करने से व्यतिरेक अलङ्कार है।

(९) **रूपकातिशयोक्ति**—उपमान द्वारा उपमेय का निगरण करके अध्यवसान होने पर रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार होता है। यथा—

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमोघम् ॥ प्रतिमा० ७·१० ॥

यहाँ शत्रु से उत्पन्न विपत्ति इस उपमेय का तमोघ उपमान ने निगरण कर लिया है ; अतः रूपकातिशयोक्ति है।

(१०) **अर्थान्तरन्यास**—सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होने पर अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है। यथा—

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतत् वाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।
निर्दोषदृश्याहि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥ प्रतिमा० १·२९ ॥

यहाँ द्वितीयार्ध के सामान्य से पूर्वार्द्ध के विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपितारा पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति य च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं व्रजतु व्रजुतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥
प्रतिमा० १·२५

यहाँ पर तीन चरणों के विशेषों से चतुर्थ चरण के सामान्य का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(११) **अप्रस्तुतप्रशंसा**—प्रस्तुत वृत्तान्त का वर्णन करने के लिए अप्रस्तुत वृत्तान्त का वर्णन करना अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है। यथा—

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसंक्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्तन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं भर्तृद्रोहादस्तुमाताऽप्यमाता ॥
प्रतिमा० ३·१८ ॥

यहाँ कैकेयी के माता होने पर भी वह माता नहीं कही जायेगी, इस प्रस्तुत का वर्णन करने के लिए "भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता" इस अप्रस्तुत का कथन करने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

(१२) **दृष्टान्त**—उपमान का उपमेय में प्रतिबिम्बित होना दृष्टान्त अलङ्कार है। यथा—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।
किं वा स्यात् कुपुरुषसश्रितैर्वचोभिः न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥
प्रतिमा०,५·१८॥

यहाँ चतुर्थ चरण के उपमान का पहले वाक्य उपमेयों में प्रतिबिम्बन होने से दृष्टान्त अलङ्कार है।

(१३) **निदर्शना**—उपमेय वाक्य का उपमान वाक्य के साथ साम्य होने पर निदर्शना अलङ्कार होता है। यथा---

काले खल्वागताः देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।
हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥प्रतिमा० ३·१२ ॥

यहाँ 'मातृणां हस्तस्पर्शः' इस उपमेय वाक्य का 'अजलस्य जलाञ्जलिः' इस उपमान वाक्य के साथ सादृश्य वर्णन करने से निदर्शना अलङ्कार है।

(१४) **काव्यलिङ्ग**—समर्थनीय वस्तु का समर्थन करने पर काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। यथा—

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कलमषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः ।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया
किञ्चोत्पाद्य भवाद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥ प्रतिमा० ४·२३ ॥

पिता के वचन को तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिये, इस समर्थनीय वस्तु का समर्थन करने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

(१५) **दीपक**—जब एक कारक का अनेक क्रियाओं से अथवा एक क्रिया का अनेक कारकों से सम्बन्ध हो, तो दीपक अलङ्कार होता है। यथा—

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमाश्च विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु दीप्तिरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥
प्रतिमा० ५·११

यहाँ हरिण, द्रुम, वन और लता इन अनेक कर्म कारकों का आपृच्छ इस एक क्रिया से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलङ्कार है।

(१६) **तुल्ययोगिता**—यदि अनेक प्रकृतों अथवा अप्रकृतों का एक ही धर्म के साथ सम्बन्ध कहा जावे, तो इसमें तुल्ययोगिता अलङ्कार होता है। यथा—

वयमयशा चीरेणार्यो नृपो गृहमृत्युना
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या मृगैः सह लक्ष्मणः ।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥ प्रतिमा० ३·१७

यहाँ अनेक प्रकृतों वयमयशा, आर्यः चीरेण, नृपः गृहमृत्युना, अयोध्या रुदितैः, लक्ष्मणः मृगैः, अम्बाः शोकेन, स्नुषा ऊध्वपरिश्रमैः, आत्मा धिगिति वचसा का एक ही धर्म योजिताः के साथ सम्बन्ध कहा गया है ; अतः तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

(१७) परिकर—अभिप्राय गर्भित विशेषणों का प्रयोग करने पर परिकर अलङ्कार होता है। यथा—

असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापैरनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यः।
रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशे भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥ प्रतिमा० ४·१०

यहाँ अभिप्रायगर्भित विशेषणों का प्रयोग करने से परिकर अलङ्कार है।

(१८) परिकराङ्कुर—अभिप्रायगर्भित विशेष्य का प्रयोग करने पर परिकराङ्कुर अलङ्कार होता है—

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।
रामाभिधान मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥ प्रतिमा० १·४॥

यहाँ भूमिपाल इस विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग करने से परिकराङ्कुर अलङ्कार है।

(१९) सन्देह—उपमेय का उपमान में सन्देह होने पर सन्देह अलङ्कार होता है। यथा—

मुखमनुपमं त्वार्यस्यामं शशाङ्कमनोहरं
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम्।
द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥ प्रतिमा० ४·८ ॥

यहाँ उपमेय भरत में नरपति दशरथ, देवेन्द्र या मधुसूदन इन उपमानों का सन्देह होने से सन्देह अलङ्कार है।

(२०) विरोधाभास—विरोध न होने पर विरोध का आभास होने पर विरोधाभास अलङ्कार होता है। यथा—

बालाऽप्यबालचारित्रा (वैदेही)। प्रतिमा० ६२.॥

बाला होते हुए भी जिसका चरित्र बाला का नहीं है! इस प्रकार विरोध का आभास होता है, परन्तु इसका यथार्थ है कि वह बालिका होते हुए भी आदर्श चरित्र वाली है।

(२१) पर्यायोक्त--किसी प्रस्तुत विषय को भङ्ग्यन्तर से कहना पर्यायोक्त अलङ्कार है। यथा—

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः।
रुधिरैरार्द्रगात्र त्वां नयामियमसादनम् ॥ प्रतिमा० ५·२२ ॥

मैं तुमको मार डालूँगा, इस प्रस्तुत विषय को भङ्ग्यन्तर से कहा गया है कि रुधिर से भीग शरीर वाले तुमको यम के घर पहुँचा दूँगा; अतः यहाँ पर्यायोक्त अलङ्कार है।

(२२) अनुज्ञा--किसी प्रस्तुत वस्तु की अकथन रूप संकेत से कहने पर अनुज्ञा अलङ्कार होता है। यथा--

शोकादवचनाद् राजा हस्तेनैव विसर्जितः ।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ।। प्रतिमा० १·१६ ।।

यहाँ अपने अभिप्राय को मुख से न कह कर संकेत से कहने से अनुज्ञा अलङ्कार है ।

(२३) **अनुमान**—हेतु के द्वारा साध्य का अनुमान करने पर अनुमान अलङ्कार होता है । यथा—

नागेन्द्राः यवसाभिलाषाविमुखा सास्त्रेक्षणा वाजिनो
ह्रेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्ययी ।। प्रतिमा० २·२ ।।

यहाँ जिस दिशा की ओर ये सब देख रहे हैं, इस हेतु से अनुमान किया गया है कि राम उसी दिशा से गये होंगे; अतः अनुमान अलङ्कार है ।

(२४) **हेतु**—कार्य-कारण भाव का कथन होने पर हेतु अलङ्कार होता है—

विलयसि किमिदं विशालनेत्रे विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः
।। प्रतिमा० ५·१९ ।।

राम मुझसे युद्ध करने में असमर्थ हैं । इस कारण से मुझको तुम अपने आर्य पुत्र के समान समझो, इस कार्य का कथन करने से हेतु अलङ्कार है ।

(२५) **समुच्चय**—कार्य की सिद्धि के लिए एक साधक के रहने पर भी अनेक साधकों का कथन करने पर समुच्चय अलङ्कार होता है । यथा—

वनगमगनिवृत्तिः पार्थिवस्यै तावन्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।
नवनृपतिविमर्शे नास्तिशङ्का प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्चिताः
भ्रातरो मे प्रतिमा० ।।१·१४ ।।

राम के राज्याभिषेक न होने में एक ही गुण से प्रसन्नता हो सकती है । तथापि अनेक गुणों का कथन करने से समुच्चय अलङ्कार है ।

(२६) **विषम**—योग्य वस्तु का अयोग्य वस्तु के साथ संयोग होने पर विषम अलङ्कार होता है । यथा—

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनी करोति ।।
प्रतिमा० ५·३ ।।

अतिकोमल हाथों वाली सीता के हाथों में अयोग्य वस्तु भारी कलश का संयोग होने से विषम अलङ्कार है ।

(२७) **स्वभावोक्ति**—वस्तु आदि का स्वाभाविक वर्णन करने पर स्वाभावोक्ति अलङ्कार होता है । यथा—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।

स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटाः बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ।। प्रतिमा० ५. २ ।।

वृक्षों के सींचने की स्वाभाविक अवस्था का वर्णन करने के कारण स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

(२७) सहोक्ति—रमणीय रूप से सह का प्रयोग करने पर सहोक्ति अलङ्कार होता है। यथा—

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं रावणेन ।। प्रतिमा० ५.१६।।

यहाँ रावण के साथ समुद्र का भी विनाश करता है, इस प्रकार रमणीय रूप से सह का प्रयोग करने से सहोक्ति अलङ्कार है।

(२८) भाविक—भूत या भविष्य-काल की घटनाओं को साक्षात् रूप से वर्णन करने पर भाविक अलङ्कार होता है। यथा—

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मिराज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ।।
प्रतिमा० ३.३ ।।

अयोध्या पहुँच कर मेरा इस प्रकार स्वागत होगा, यह भविष्यत् की घटना का साक्षात् रूप से वर्णन करने के कारण यहाँ भाविक अलङ्कार है।

(२९) स्मरण—किसी एक वस्तु को देखकर अन्य सम्बन्धित वस्तु का स्मरण करने पर स्मरण अलङ्कार है। यथा—

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानिनः ।
स्मारितो वनवासं च तातस्त्रापि रोदिति ।। ५.६ ।।

श्राद्ध में दर्भ पर फल रखकर दिये जाने पर पितृलोक में दशरथ को राम का वनवास स्मरण आयेगा। इस प्रकार वर्णन करने से स्मरण अलङ्कार है।

(३०) यथासंख्य—क्रम से रखी गयी वस्तुओं के सम्बन्ध का उसी क्रम से उल्लेख करने पर यथासंख्य अलङ्कार होता है। यथा—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु किग्रहवत् स्थिताः ।।प्रतिमा०।।४.४।।

यहाँ राम में सत्य, सीता में शील और लक्ष्मण में भक्ति का उसी क्रम से वर्णन किया गया है; अतः यहाँ यथासंख्यअलङ्कार है।

(३१) उल्लेख—एक ही वस्तु का अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार से उल्लेख करने से उल्लेख अलङ्कार है। यथा—

सखीति सीतेति च जानकीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति ।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भास्यमाणा समुपैति मन्दम् ।।
प्रतिमा० ७.३।।

एक ही सीता का विविध वर्ग की स्त्रियों द्वारा अनेक प्रकार से उल्लेख करने के कारण उल्लेख अलङ्कार है।

(३२) परिवृत्ति—जहाँ न्यूनाधिक से परस्पर विनिमय हो, वहाँ परिवृत्त अलङ्कार होता है यथा—

समं बाष्पेण पतता तस्योपरिममाप्यधः।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥ प्रतिमा० १.६॥

राम ने पिता के चरणों को आँसुओं से भिगो दिया। पिता ने भी बदले में राम के सिर को आँसुओं से भिगो दिया; अतः परस्पर विनिमय होने से परिवृत्ति अलङ्कार है।

(३३) तद्गुण—एक वस्तु के संयोग से अपने गुणों का परित्याग करके अन्य के गुणों का आधान होना तद्गुण अलङ्कार है। यथा—

सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्। प्रतिमा० पृ० १२॥

सीता के सवर्णाभ शरीर के सम्पर्क से वल्कल का अपने गुण का परित्याग कर सीता की सौवर्णिक आभा को धारण करने से तद्गुण अलङ्कार है।

(३४) उदात्त—किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु की समृद्धि का कथन करने या महान् पुरुषों के उपलक्षण से स्थानक का महत्व कहने पर उदात्त अलङ्कार होता है। यथा—

धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥ प्रतिमा० ५.१७॥

सीता के उपलक्षण से वहाँ की भूमि को धन्य कहने से उदात्त अलङ्कार है।

१४. रसादि निष्पत्ति

काव्य में आनन्द की अनुभूति रसानुभूति के रूप में होती है। इस अनुभूति के लिए कवि काव्य में रसों की योजना करता है। आचार्य भरत के अनुसार बिना रस के काव्य का कोई अर्थ नहीं है। रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है। भास ने अपने रूपकों में उज्जवल रस-योजना को अभिव्यक्त किया है। इस प्रसङ्ग में यहाँ केवल 'प्रतिमानाटकं' की रस-योजना की समीक्षा की जा रही है।

प्रतिमानाटक में प्रायः सभी रसों की न्यूनाधिक अभिव्यक्ति है, परन्तु यह कहना कठिन है कि इनमें प्रधान रस कौन-सा है। 'प्रतिमानाटक' के नायक राम है, क्योंकि राज्याभिषेक रूप मुख्य फल की प्राप्ति राम को ही होती है। राम की पत्नी सीता नायिका है। पञ्चम अंक में नायक से विमुक्त होकर भी सप्तम अंक में सीता का पुनः राम से मिलन हो जाता है। इस प्रकार नायक-नायिका का मिलन हो जाने पर भी 'प्रतिमानाटक' में शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति के स्थल अत्यल्प हैं। 'नाटक' में नायक राम अपने शौर्य के प्रभाव से रावण को मारकर सीता को प्राप्त करके राज्याभिषेक को पाते हैं; अतः वीर रस की उसमें अभिव्यक्ति उज्जवल माननी चाहिये। इसके अतिरिक्त दशरथ और भरत के लिए प्रयुक्त विशेषणों तथा कार्यों

से एवं लक्ष्मण के उद्‌गारों से वीर रस की अभिव्यक्ति होती है; अतः इस नाटक का अङ्गीरस वीर होना चाहिये ।

अनेक समालोचकों ने 'प्रतिमानाटक' में करुण रस को अङ्गीरस माना है । यह ठीक है कि राम के वनवास के कारण सभी लोग अत्यधिक शोक में निमग्न होते हैं और दशरथ की तो मृत्यु ही हो जाती है, तथापि नाटक का अन्त दुःखान्त न होने से इसको करुणरस प्रधान मानना कठिन है । यह मानने योग्य है कि करुण रस इसमें अन्य रसों की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल रूप से अभिव्यक्त हुआ है ।

वीर और करुण रस के अतिरिक्त अन्य रसों की अभिव्यक्ति स्वल्प मात्रा में कहीं-कहीं है । भाव आदि की भी स्थिति कहीं-कहीं है । इनकी निष्पत्ति को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

(१) **वीर रस**—प्रतिमानाटक का अङ्गीरस वीर रस है । वीर रस की अभिव्यञ्जना उत्साह नामक स्थायी भाव के माध्यम से होती है । 'प्रतिमानाटक' में दशरथ, राम, भरत, लक्ष्मण और रावण के आश्रय से वीर रस अभिव्यक्त हुआ है । वीर रस के चार भेव हैं—युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और दयावीर । उनमें युद्धवीर रस की अभिव्यञ्जना अधिक है । धर्म और दानवीर रस भी कहीं-कहीं अभिव्यञ्जित होते हैं । उनके उदाहरण निम्न प्रकार से हैं—

(क) गत्वा पूर्वं स्वसैन्यै रभिसरिसमयेखंसमानैर्विमानै-
विख्यातो यो विमर्दे सस इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ॥
प्रतिमा० ४.१७॥

यहाँ दशरथ के आलम्बन से वीर रस की अभिव्यञ्जना होती है ।

(ख) सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥ प्रतिमा० ५.१२॥

यहाँ राम के आलम्बन से वीर रस अभिव्यक्त हुआ है ।

(ग) क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥प्रतिमा० १.१९॥

यहाँ लक्ष्मण के आलम्बन से वीर रस की अभिव्यञ्जना हो रही है ।

(घ) वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम् ।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह राघवेन ॥प्रतिमा० ६.१६॥

यहाँ भरत के आलम्बन वीर रस अभिव्यञ्जित हुआ है ।

(ङ) बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ ५.२१ ॥

यहाँ रावण के आलम्बन से वीर रस अभिव्यञ्जित हुआ है ।

(च) स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येषु जटायुः ।
प्रतिमा० पृ० १६६॥

यहाँ जटायु के आलम्बन से वीर रस अभिव्यञ्जित हुआ है ।

(छ) सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्ज्वलिधर्मप्रदीपो दिलीपः ॥ प्रतिमा० पृ० ५॥

यहाँ दिलीप के आलम्बन से धर्मवीर रस अभिव्यञ्जित हुआ है।

(ज) रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशः ॥ प्रतिमा० ३.१७॥

यहाँ रघु को आलम्बन बनाकर दानवीर रस की अभिव्यञ्जना हुई है।

(२) **करुण रस**—करुण रस की अभिव्यञ्जना शोक नामक स्थायी भाव के माध्यम से होती है। 'प्रतिमानाटक' में इस रस की अभिव्यञ्जना के आश्रय राम हैं, जिनके वन जाने के कारण राम के पिता तथा अन्य सब परिजन और नगरनिवासी भी शोक से परिपूर्ण हो जाते हैं। दशरथ की तो मृत्यु ही हो जाती है। करुण रस के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

(क) नागेन्द्राः यवसाभिलाषविमुखाः सास्त्रेक्षणा दन्तिनो
द्वेषाशून्यामुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो यति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्तमी ॥ प्रतिमा० २.२ ॥

यहाँ राम को आश्रय करके अयोध्यावासियों के आलम्बन से करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(ख) हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम
हा वत्स लक्ष्मण सलक्षणसर्वगात्र।
हा साध्वि मैथिलि पतिस्थितचित्तवृत्ते
हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः ॥ प्रतिमा० २.४ ॥

यहाँ राम, लक्ष्मण और सीता को आश्रय करके दशरथ के आलम्बन विभाव से करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(ग) क्वतेज्येष्ठो रामः प्रियसुत सुतः सा क्व दुहिता,
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने।
क्व वा सौमित्रिर्णा हतपितृकमासन्नमरणं,
किमाप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ प्रतिमा० २.१४ ॥

यहाँ भी राम, लक्ष्मण और सीता का आश्रय करके दशरथ के आलम्बन विभाव से करुण रस की अभिव्यञ्जना हुई है।

(३) **हास्य रस**—हास्य रस का स्थायी भाव हास है, जिसके माध्य से हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है। 'प्रतिमानाटक' में यद्यपि हास्य के प्रसङ्ग कम ही हैं, तथापि कहीं-कहीं इस रस की स्थिति परिलक्षित होती है—

(क) भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम् ॥ प्रतिमा० पृ० ११॥
यहाँ चेटी के आलम्बन से हास्य रस की अभिव्यञ्जना है।

(ख) मैथिलि ! विशीर्यतेखलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ॥प्रतिमा० पृ० ११७॥

भरत को जल लाने के लिए आग्रह करते देखकर राम परिहास के लिए इस प्रकार कह रहे हैं। यहाँ राम के आलम्बन से हास्य रस व्यक्त हुआ है।

(४) शृङ्गार रस— पुरुष की स्त्री के प्रति या स्त्री का पुरुष के प्रति प्रेम का भाव रति कहलाता है। शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति रति नामक स्थायी भाव के माध्यम से होती है। राम के नायक होने तथा सीता के नायिका होने पर भी 'प्रतिमा-नाटक' में शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना अत्यल्प है—

(क) रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये। (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ—

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेय नियमस्पृहा॥ प्रतिमा० १.९॥

यहाँ राम का सीता विषयक रतिभाव व्यञ्जित होने से शृङ्गार रस व्यञ्जित हो रहा है।

(ख) मा स्वयं मन्युमुत्पाद्यपरिहासेविशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया॥ प्रतिमा० १.१०॥

यहाँ भी राम का सीता विषयक रतिभावव्यञ्जित हुआ है।

(ग) सखीति सीतेति च ज्ञानमीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम्॥ प्रतिमा० ५.३॥

यहाँ राम का सीता विषयक रतिभाव व्यञ्जित हो रहा है।

(५) रौद्र रस— रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। यह अभिव्यक्त होकर रौद्र रस की अवस्था को प्राप्त होता है। 'प्रतिमानाटक' में रौद्र रस की अभिव्यक्ति लक्ष्मण के तथा भरत के कथनों में हुई है; यथा—

(क) लक्ष्मणः—(सक्रोधम्) कथं-कथं मोहमुपगत इति—

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया,
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचितं मुञ्चत्वं मामहं कृतनिश्चयः,
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम्॥ प्रतिमा० १.१८॥

राम के राज्याभिषेक के रुकने तथा वनवास के आदेश से कुपित लक्ष्मण की यह उक्ति रौद्र रस की अभिव्यञ्जक है।

(ख) त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता॥ प्रतिमा० १.२१॥

कुपित लक्ष्मण की अवस्था का राम द्वारा यह वर्णन रौद्र रस का अभिव्यञ्जक है।

(ग) भरतः—(सरोषमुत्थाय) आः पापे!

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता॥ प्रतिमा० ३.१६॥

कुपित भरत की माता के प्रति यह भर्त्सना रौद्र रस की अभिव्यञ्जक है।

(६) भयानक रस—भयानक रस का स्थायी भाव भय है। इस रस की अभिव्यक्ति 'प्रतिमानाटक' में कहीं-कहीं हुई है; यथा—

(क) भरतः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः क्रुष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥ प्रतिमा० ५.१७

पराजित देवताओं में भय की अभिव्यञ्जना होने से यहाँ भयानक रस की स्थित है।

(ख) सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व, परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्वमाम्
॥ प्रतिमा० पृ० १६३ ॥

अपहरण की जाती हुई सीता की भय की अवस्था से भयानक रस की भी अभिव्यक्ति हो रही है।

(७) बीभत्स रस—बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुत्सा है। इस रस की भी अभिव्यक्ति कहीं-कहीं हुई है; यथा—

रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि—यमसादनम् ॥ प्रतिमा० ५.२२ ॥

रक्त से भीगे शरीर को देखने से जुगुप्सा होती है। अतः यहाँ बीभत्स रस की अभिव्यञ्जना है।

(ख) तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तर वक्ष सो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाट्यते ॥ प्रतिमा० ६.३ ॥

तीक्ष्ण पंजों से वक्ष को अन्दर तक विदीर्ण करने से जुगुप्सा भाव उत्पन्न होता है; अतः यहाँ बीभत्स रस की अभिव्यञ्जना है।

(८) अद्भुत रस—अद्भुत रस का स्थायीभाव विस्मय है। 'प्रतिमानाटक' में अनेक स्थल विस्मयजनक होने से अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना करते हैं; यथा—

(क) रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरः पतितगङ्गाम्बुपायिनो वैदूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः यैर्वैखानसबालखिल्य नैमिषीयादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्षयन्ति—
तैस्तर्पिताः सुनफलं पितरो लभन्ते हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः।
तुल्यं सुरैः समुपयन्ति विमानवास मार्थतिभिश्च विषयैर्न बलाद्ध्रियन्ते ॥
प्रतिमा० ५.१० ॥

यहाँ हिमालय, काञ्चनपार्श्व मृग, ऋषियों का प्रभाव और श्राद्धफल का विस्मयजनक वर्णन करने से अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना होती है।

(ख) अहो बलमहो वीर्यमहो सत्वमहो जवः।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ प्रतिमा० ५.१४ ॥

यहाँ राम के विस्मयजनक प्रभावातिशय का वर्णन करने से अद्भुत रस व्यञ्जित होता है।

(ग) अये ! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् ।
सम्प्राप्तं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् । ...ममयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छति
।। प्रतिमा० पृ० २१३ ।।

यहाँ विस्मयजनक अद्‌भुत प्रभवशाली पुष्पक विमान का वर्णन करने से अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति होती है ।

(९) **शान्त रस**—शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है । 'प्रतिमानाटक' में शान्त रस की भी कहीं-कहीं अभिव्यक्ति हुई है; यथा—

प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तराजा अजः ।
प्रतिमा० पृ० ८५ ।।

यहाँ प्रिय के वियोग से निर्वेद रूप स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होने से आलम्बन में शान्त रस की अभिव्यञ्जना है ।

(१०) **भाव**—देव, राजा, पुत्र, भाई आदि विषयक रति भाव को भाव कहते हैं । 'प्रतिमानाटक' में इनकी अभिव्यञ्जना अनेक स्थलों में है ।

(क) **रामविषयक रतिभाव**—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्य प्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ।। प्रतिमा० १.१ ।।

यहाँ कवि का राम विषयक रतिभाव व्यञ्जित हुआ है ।

(ख **नृपविषयक रतिभाव**—

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ।। प्रतिमा० ३.१५।।

यहाँ सुमन्त्र का नृप दशरथविषयक रति भाव व्यञ्जित हुआ है ।

(ग) **पुत्र विषयक रतिभाव**—

सकृत् स्पृशामि वा रामं सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ।। प्रतिमा० २.१६ ।।

यहाँ दशरथ का रामविषयक रतिभाव अभिव्यक्त हुआ है ।

(घ) **भ्रातृविषयक रतिभाव**—

रामः—हं हि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव—
वक्षः प्रसार्य कवाटपुटप्रमाण मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।।
प्रतिमा० ४.१६; ७.७ ।।

यहाँ राम का छोटे भाई भारत विषयक रति भाव अभिव्यक्त हुआ है ।

(ङ) **पितृ-मातृ मातृ विषयक रतिभाव**—

त्वरितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इवभ्रातरः क्लेदयन्तीवमाश्रुभिर्मातरः ।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं भाषा च सौमित्रिणा ।। प्रतिमा० ३.२ ।।

यहाँ भरत का पिता, माता, भाइयों के प्रति रति भाव अभिव्यक्त हुआ है।

(११) रसाभास—

अनुचित रूप से प्रवर्तित रस को रसाभाव कहते हैं; यथा—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम्।
विपुल बलयुतो ममैवयोद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ।। प्रतिमा० ५.१६ ।।

रावण का सीता के प्रति प्रेमप्रदर्शन अनुचित होने से रसाभाव है। इस प्रकार राम की वीरता के प्रति अवहेलना करना भी अनुचित वीर रस होने से रसाभास है।

(१२) भावाभास—अनुचित रूप से भाव की अभिव्यक्ति भावाभास है; यथा—

रावण—अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः—

योऽहमुत्पतितो वेगान्नदग्धः सूर्यरश्मिभि ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ।। प्रतिमा० ५.२० ।।

यहाँ रावण द्वारा सीता के प्रति तिरस्कारयुक्त वचनों से अभिव्यञ्जित असूया भाव अनुचित होने से भावाभास है।

(१३) भावशान्ति—उदित होते हुये भाव का शान्त होना भावशान्ति है; यथा—

अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम्।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघैर्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ।।
प्रतिमा० ७.१२

राम के वन जाने तथा राज्यत्याग के लिये अपने को कारण समझते हुए भरत में ग्लानि रूप भाव की यहाँ शान्ति हो रही है; अतः भावशान्ति है।

(१४) भावोदय—भाव का उदय होने पर भावोदय होता है।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन नानानदीनदगतेन तवप्रमास,
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ।।
प्रतिमा ७.९ ।।

यहाँ राम का राज्याभिषेक देखने के लिये मुनियों के हृदय में औत्सुक्य नामक व्यभिचारी भाव अभिव्यञ्जित होकर भाव दशा को प्राप्त हो गया है। अतः भावोदय है।

(१५) भावसन्धि—दो भावों की सन्धि होने पर भावसन्धि होती है। यथा

उभयस्यास्मि सान्निध्यं यत्नेनत् साधयिष्यति।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ।। प्रतिमा० ५.९ ।।

यहाँ धनुषि से उत्साह और तपसि से निर्वेद नामक भावों की अभिव्यक्ति एक साथ हो रही है; अतः यहाँ भावसन्धि है।

भावसबलता—जहाँ एक के बाद दूसरा भाव उपस्थित होता है, वहाँ भाव-सबलता होती है; यथा—

वयमयशसा चोरेणार्यो नृपो गृहमृत्युना
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या मृगैः सहलक्ष्मणः ।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः स्नुषाऽध्वपरिश्रमैः
धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ।।प्रतिमा० ।।३.१७ ।।

यहाँ क्रमशः एक के बाद एक ग्लानि, विशाद, मोह, दैन्य, लज्जा, निर्वेद; श्रम और असूया नामक व्यभिचारी भाव अभिव्यञ्जित होकर रस दशा को प्राप्त हो रहे हैं; अतः यहाँ भावसबलता है ।

१५. प्रकृति-चित्रण

भास के प्रकृति-चित्रणों की समालोचकों ने बहुत प्रशंसा की है। ये सूक्ष्म, व्यापक और स्वाभाविक हैं । प्रकृति का अति सूक्ष्म निरीक्षण करके भास ने इनका वास्तविक रूप प्रदर्शित किया है; अतः ये सूक्ष्म हैं । इनमें प्रकृति के सम्पूर्ण चित्र व्यापक रूप से विद्यमान हैं । जिस रूप में कवि ने प्रकृति का दर्शन किया था, उसी रूप में चित्रित होने के कारण ये स्वाभाविक भी हैं । भास के नाटकों में प्रकृति-वर्णन बहुत व्यापक होते हुए भी 'प्रतिमानाटक' में अधिक विस्तृत नहीं है । कवि ने उपमानो के रूप में भी प्राकृतिक दृश्यो का उपयोग किया है 'प्रतिमानाटक' के प्राकृतिक तथा अन्य दृश्यों का संक्षेप से नीचे वर्णन किया जा रहा है—

शरद् ऋतु—'प्रतिमानाटक' में ऋतुओं का वर्णन अधिक नहीं है । नाटक की प्रस्तावना मे नट द्वारा नटी को शरत्काल का गीत गाने के लिए कह कर नट स्वयं इस ऋतु की एक विशेषता का वर्णन करता है—शरद् ऋतु में कास के श्वेत पुष्प प्रचुर मात्रा मे खिलते हैं । इस ऋतु में शुभ्र वर्ण के हंस भी पुलिनों में विचरण करते हुए दिखायी देते हैं; अतः ऐसा प्रतीत होता कि कास रूपी वस्त्रों को धारण करके प्रसन्न चित्त हंसी पुलिनों में विचरण कर रहीं है ।[1]

(२) **सूर्योदय**—'प्रतिमानाटक' में सूर्योदय को उपमान के रूप में लिया गया है । उदय होने पर सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों से अन्धकार को नष्ट कर देता है । उसी प्रकार राम ने शत्रु रूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया है ।[2]

(२) **सूर्यास्त**—'प्रतिमानाटक' में सूर्यास्त का वर्णन भी उपमानों के रूप में है । सूर्य अस्त हो गया, उसके पीछे दिन भी चला गया है । अब छाया दिखायी नहीं देता ।[3] जब सूर्य अस्त होता है, तो उसका केवल मण्डलमात्र ही दृष्टिगोचर होता है ।[4]

---

१. चरित पुलिनेषु हंसो कासांशुकवासिनी सुसंहृष्टा ।। प्रतिमानाटक १.२ ।।
२. हत्वारिपुप्रभवमन्तिमं तमोघ
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।।प्रतिमा०७.१०।।
३. सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ।।प्रतिमा० २.७ ।।
४. सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः । प्रतिमा०२.१ ।।

(४) चन्द्रवर्णन—चन्द्रमा का वर्णन उपमानों के रूप में है और दो प्रकार से है—(१) चन्द्रमा मेघों से आच्छन्न होने पर अपनी कान्ति से रहित हो जाता है[1] तथा शरद् ऋतु में मेघों से मुक्त होने पर इसकी यह शोभा निर्मल होती है[2] (२) चन्द्रमा के उदय होने पर संसार में प्रकाश फैल जाता है।[3] इसके अतिरिक्त कवि ने चन्द्रग्रहण का भी संकेत दिया है। जैसा कि पुराणों में वर्णन है, राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसने पर चन्द्रग्रहण होता है। इस समय तारों की चन्द्रमा के साथ गति में कोई परिवर्तन नहीं होता।[4]

(५) वनों के दृश्य—भास को वन और तपोवन बहुत प्रिय हैं। उन्होंने विविध प्रकार से वनों के वर्णन किये हैं तथा उनको उपमानों के रूप में भी ग्रहण किया है। इनका परिचय निम्न प्रकार से हो सकता है—

(क) वन में विविध प्रकार के पशु निवास करते हैं। इनमें विशालकाय हाथी विशिष्ट हैं। वनों में हाथी और हथिनी प्रेम से साथ-साथ रहते हैं। हाथी के विपत्ति में पड़ जाने पर भी हथिनी उसका साथ नहीं छोड़ती।[5] अनेक बार हाथी मदमस्त होकर वृक्षों को तोड़ना प्रारम्भ कर देते हैं। नव वनभूमि उनके द्वारा तोड़े गये वृक्षों से आच्छन्न हो जाती है।[6] बूढ़े हाथी जब वनों में भूमि पर लोटते हैं तो उनके अङ्ग धूल से भर कर धूसरित हो जाते हैं।[7]

(ख) वनों में बाघ भी प्रचुर संख्या में होते हैं। ये बहुत क्रूर तथा निर्दय होते हैं तथा किसी को नहीं छोड़ते। क्रूरता की उपमा वन की व्याघ्री से दी गयी है।[8] वनों में ये बाघ हरिणों का शिकार करते हैं, परन्तु हरिण उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं।[9]

(ग) भास ने वनों को अनेकों दोषों या विपत्तियों से भरा हुआ कहा है।[10]

---

१. जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः। प्रतिमा० ६.१२ ॥
२. मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम्। प्रतिमा० ७.६ ॥
३. पुनः प्रकाशतां याति सामस्येवोदये जगत्। प्रतिमा० ७.१३ ॥
४. अनुचरित-शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा ॥ प्रतिमा० १.२५ ॥
५. त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रम् ॥ प्रतिमा० १.२५ ॥
६. नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥ प्रतिमा० ६.४ ॥
७. उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
   कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः। प्रतिमा० २.८ ॥
८. वने व्याघ्री च ।। प्रतिमा० २.८ ॥
९. न व्याघ्रा मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥ प्रतिमा० ५.१८ ॥
१०. बहुदोषाण्यरण्यानि ॥ प्रतिमा० २१५ ॥

इसीलिए दशरथ को शंका है कि सीता वन में कहीं दुःख पाती होगी । वन का जीवन भी कठोर होता है। इससे वहाँ रहने वालों का शरीर भी कठोर हो जाता है ।[1]

(घ) वनों के विपत्तियों से भरे तथा कठोर होने पर भी आर्यजन तथा तपस्वी वहाँ रहते थे । वहाँ के वृक्षों, हरिण आदि पशुओं, लताओं आदि को वे अपने बालकों के समान देखभाल करते । कहीं जाते थे तो उनसे अनुमति लेते थे ।[2] वनों में वे वहाँ के अनुकूल वल्कलवस्त्र धारण करते थे ।[3]

(६) गति की तीव्रता—तीव्र गति के यान से जाने पर चारों ओर के परिवेश के प्राकृतिक सौन्दर्य का भास ने सजीव अंकन किया है । तीव्र रथ पर आरूढ़ भरत अयोध्या लौट रहे हैं । उस समय वृक्ष दौड़ते से प्रतीत होते हैं; धूल उठने के कारण पृथ्वी मानो रथ की धुरी में प्रविष्ट-सी होती जा रही है, पहियों के अरे एक प्रतीत होते हैं और पहिये का घेरा खड़ा-सा लगता है । तथा रथ से उड़ी धूल आगे उड़ रही है, पीछे नहीं है ।[4]

(७) उड़ती धूल का दृश्य—सेनाओं, रथों और अनेक लोगों के चलने के कारण आकाश में बहुत ऊंचाई तक तथा चारों ओर फैलने वाली धूल का सुन्दर चित्र भास ने अंकित किया है । लोध्र पुष्पों के समान वर्ण की धूल उड़ रही है और वायु से उड़ाई जाकर सब दिशाओं को व्याप्त कर रही है ।[5]

(८) सिञ्चन के बाद वृक्ष का सौन्दर्य—वृक्षों का सींचना भारतीय परम्परा का एक विशेष अङ्ग है तपोवन में वृक्षों को सींचती हुई बालिकाओं और युवतियों के दृश्य कवियों ने प्रायः अंकित किये है । भास को भी ये दृश्य अति प्रिय हैं । तपोवन में सीता वृक्षों को सींच रही है ।[6] सींचने के बाद इस जल में झाग हो जाते है तथा यह थांवले में घूमने लगता है । जल मिलेगा, इस विश्वास के कारण प्यासे

---

१. कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं
समं लताभि, कठिनीकरोति । प्रतिमा० ५.३ ॥

२. आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च ।
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ।।प्रतिमा० ५.११ ।।

३. चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ।।१.३१ ।।

४. द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ।।प्रतिमा० ३.२ ।।

५. रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः ।।प्रतिमा० ७.४ ।।

६. तावदिमान् बालवृक्षकानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि । प्रतिमा० पृ० १४० ।।

भी पक्षी उस पर तुरन्त नहीं टूट पड़ते । बिलों के जल से भर जाने के कारण कीड़े उसमें से निकल कर रेंगने लगते हैं । जल के पृथिवी में समा जाने से वृक्षों के मूल प्रदेश में नये वलय से बन जाते हैं ।[१]

(६) **प्रतिमागृह**—प्रकृतिचित्रण में इस प्रसङ्ग में प्रतिमागृह के सौन्दर्य का वर्णन यद्यपि अधिक सङ्गत प्रतीत नहीं होता, तथापि मानवनिर्मित इस मनोहारित्व की रूपरेखा सौन्दर्य के रसास्वादन के निमित्त से प्रस्तुत की गयी है ।

अयोध्या नगरी के बाह्य प्रदेश में विशाल आकार का प्रतिमागृह है । इसमें इक्ष्वाकु वंश के दिवंगत राजाओं की प्रतिमाएँ स्थापित की गयी हैं । प्रतिमाओं के निर्माण की कला अद्भुत है और वे सजीव मनुष्य ही प्रतीत होती हैं । प्रतिमागृहों का आकार विशाल है और इनकी ऊँचाई महलों से भी अधिक है ।[२] इनके चारों ओर घने वृक्ष हैं । सामान्यतः देवमन्दिरों पर देवता का चिह्नभूत कोई ध्वजा या अन्य निशान होता था, परन्तु इन प्रतिमागृहों पर यह ध्वजा नही होती थी । सामान्यतः इन प्रतिमागृहों पर कोई आता नहीं था, परन्तु विशिष्ट अवसरों पर राजकुल के लोग आकर दिवंगत राज-प्रतिमाओं का पूजन करते थे तथा मन्दिर की सजावट-सफाई की जाती थी । भरत ने कहा था कि मन्दिर में पुष्पों और खीलों से पूजन किया गया है, दीवारों पर चन्दन के पञ्चांगुलिथप्पे लगाये गये हैं, दरवाजों पर मालाएँ लटकायी गयी हैं और मार्ग पर रेती बिछायी गयी है ।[३]

१६. प्रतिमानाटक में अभिव्यञ्जित सामाजिक अवस्था

भास के नाटकों से उसके युग की सामाजिक अवस्थाओं और परम्पराओं का विस्तृत परिचय उपलब्ध होता है । कवि के १३ नाटक उस युग के सम्बन्ध में विशद प्रकाश डालते हैं, परन्तु यहाँ विस्तृत विवरण को प्रस्तुत करना एक विशाल कार्य होगा तथा उसकी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती है । प्रस्तुत प्रकरण में 'प्रतिमानाटक' में अभिव्यञ्जित सामाजिक अवस्थाओं और परम्पराओं को ही अंकित किया जा रहा है ।

(१) **पारिवारिक सम्बन्ध**—भास ने पिता-पुत्र माता-पुत्र पति-पत्नी सास-

---

१. भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।
स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिलेजलपूरिते
नववलयिनो वृक्षामूले जलक्षयरेखया ॥ प्रतिमा० ५.५ ॥

२. इदं गृहं तत् प्रतिमा नृपस्य नो
समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः, ॥प्रतिमा० ३.१८ ॥

३. साक्षुमुक्तपुष्पलाजावकृता वलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाभित्तयः,
अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः ; प्रतिमा० पृ० ८० ॥

ससुर, पुत्रवधू, भाई, देवर-भाभी, गुरु, मित्र और सेवक के परस्पर सम्बन्ध और स्नेह का उज्ज्वल चित्रण किया है।

(क) पुत्र-वधू—

पुत्र और पिता स्नेह के पवित्र सम्बन्ध में बँधे होते हैं। पिता का पुत्र बहुत अधिक आदर-स्नेह करते हैं तथा पुत्र की पिता के प्रति अत्यधिक स्नेह-भक्ति होती हैं। राम के राज्याभिषेक का निर्णय होने पर राम पिता के चरणों में सिर रख देते है। दशरथ के आंसू राम के सिर को और राम के आंसू दशरथ के पैरों को भिगो देते हैं।[१] राम के बिना दशरथ जीवित नहीं रह सकते और उनके वनगमन के कारण प्राणों का परित्याग कर देते हैं। उनका राम के प्रति स्नेह अनिर्वचनीय है।[२] राम ने भी पिता का आदेश पालन करके लोक में अपना पितृस्नेह प्रकट किया है।[३] ननिहाल से लौटते समय भरत कल्पना करते हैं कि वे जब पिता के चरणों में सिर रख देंगे तो पिता उनको स्नेह से ऊपर उठा लेगा।[४] पुत्र अपने पिता के आदेश का निश्चित रूप से पालन करते ही हैं।[५]

(ख) माता-पुत्र—

माता के प्रति पुत्र का आदर का भाव होता है। वह माता की निन्दा न तो कर सकता है और न सुन सकता है।[६] माता का हाथ का स्पर्श पुत्र के लिए ऐसा ही है, जैसेकि प्यासे को पानी मिल जाना।[७] पुत्र के महान् अपराध को भी माता निश्चय से क्षमा कर देती है।[८]

(ग) पति-पत्नी—

पति-पत्नी का सम्बन्ध अविच्छेद है। विवाह संस्कार के होने पर पत्नी पति का आधा अंग हो जाती है।[९] पत्नी के प्रति पति अत्यधिक स्नेह और आदर करता है तथा पत्नी प्रत्येक अवस्था में पति के दुःखों को दूर करके मन को बहलाती है।[१०]

---

१. समं बाष्पेण पतता तस्योपरिममाप्यधः।
पितुर्मेक्लेदितौ पादौ ममाभिक्लेदित शिरः॥ प्रतिमा० १.९॥
२. कीदृशस्तनयस्नेहः॥ प्रतिमा० ४.१२॥
३. लोकाविष्कृतपितृस्नेहः॥ प्रतिमा० पृ० १७८॥
४. पतितमिवशिः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः॥
प्रतिमा० ३,३॥
५. स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः॥ प्रतिमा० १.५॥
६. न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि॥ प्रतिमा० पृ० ३१॥
७. हस्तस्पर्शो हिमातृणामजलस्य जलाञ्जलिः॥ प्रतिमा० ३.१२॥
८. का नाम माता पुत्रकस्यापराध न मर्षयति ? प्रतिमा० पृ० १६१॥
९. शरीरार्धेन मेवमाबद्धा हि यदात्वया॥ प्रतिमा० १.१०॥
१०. यावदिदानी मीदृशशोकविनोदनार्थमवस्याकुटुम्बिनी मैथिलीं पश्यामि।
प्रतिमा० पृ० १४१॥

पति उसका सदा स्वामी है।[1] धर्म के अनुसार वह पति की सदा अनुगामिनी है और सहधर्मचारिणी है।[2] वह छाया के समान सदा उसके साथ रहती है।[3] पत्नी की चित्तवृत्तियाँ पति के प्रति ही स्थित रहती हैं।[4] पति के प्रति पत्नी का द्रोह करना कभी भी क्षम्य नहीं है। माता होने के बाद भी यदि वह पति के प्रति द्रोह करती है, तो वह अक्षम्य है। उस अवस्था में वह माता नहीं रहेगी।[5] भास ने स्त्री के पातिव्रत्य को बहुत महत्त्व दिया है। पतिव्रत का तेज आश्चर्यजनक होता है।[6] 'रामायण' में वशिष्ठ की पत्नी को पतिव्रताओं में शिरोमणि कहा गया है और सीता मानो इस विषय में दूसरी ही अरुन्धती है।[7]

(घ) सास-ससुर—पुत्रवधू के आदर-स्नेह सम्बन्ध की अभिव्यक्ति भी 'प्रतीमानाटक' में हुई है। पुत्रवधू को सास-ससुर की सेवा करनी ही चाहिये।[8] सास-ससुर भी पुत्रवधू के प्रति अत्यधिक स्नेह का भाव रखते हैं। वह वंश का गौरव है तथा उसका अपमान वंश का अपमान है। सीता के वन जाने पर दशरथ उसके लिए बार-बार विलाप करते हैं। सीता का अपहरण होने पर भरत को अत्यधिक अपमान का अनुभाव होता है।

(ङ) भाई-भाई—भास ने भाई-भाई के परस्पर स्नेह और आदर को बहुत बहुत महत्त्व दिया है। भाई-भाई प्रत्येक वस्तु तो आधा आधा बाँट कर उपभोग करते हैं।[9] छोटे भाई बड़े भाई की सब प्रकार से सेवा करते हैं।[10] वे बड़े भाई के चरणों की सेवा करन मे गौरव का अनुभव करते हैं[11] और उसको देवता ही मानते हैं।[12] बड़े भाई भी छोटे भाई के प्रति वात्सल्य का भाव रखते हैं। भाई के कहीं से

---

१. भर्तृनाथा हि नार्यः। प्रतिमा० १.२५ ॥
२. ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्। प्रतिमा० पृ० ३६ ॥
३. छायेव न दृश्यते सीता ॥ प्रतिमा० २.७ ॥
४. मैथिलि पतिस्थित चित्तवृत्ते ॥ प्रतिमा० २.४ ॥
५. भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता ॥ प्रतिमा० ३.१८ ॥
६. अहो पतिव्रतायास्तेजः प्रतिमा० पृ० १६५
७. अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् ? प्रतिमा० पृ० १७८-१७९ ॥
८. श्वश्रूश्वसुरसेवापि चते निर्वर्तयितव्या ॥ प्रतिमा० पृ० ३९ ॥
९. निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे ॥ प्रतिमा० १.२६ ॥
१०. क्रमेण शुश्रूषयिष्ये। अहमेव यास्यामि। प्रतिमा० पृ० १२७ ॥
११. तवैव दक्षिणो पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ प्रतिमा० १.२७ ॥
१२. तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ प्रतिसा० ४.३ ॥

बाहर से आने पर वे तुरन्त उसके पास आकर उसका स्वागत करते हैं[1] तथा उसको आलिगन में भर लेते हैं।[2] भाई का स्नेह अनिर्वचनीय है।[3]

(च) देवर-भाभी---भास ने देवर-भाभी के पवित्र स्नेह की भी झाँकी प्रस्तुत की है। देवर भाभी को माता के समान पूजनीय मानते हैं तथा भाभी देवर को माता की दृष्टि से देखती है। भरत और शत्रुघ्न सीता को प्रणाम करके आशीर्वाद लेते हैं। भरत के आने पर राम सीता से कहते हैं कि अपनी आँखों को फैला लो और माता के समान आगे बढ़कर स्नेह से भरत का स्वागत करो।[4]

(छ) गुरु, मित्र और सेवक---गुरु, मित्र और सेवक के आदर्श सम्बन्धों का भी भास ने परिचय दिया है। गुरुओं के वचनों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।[5] मित्र परस्पर एक-दूसरे के कार्यों को निश्चय रूप से सम्पन्न करते हैं। मित्रता स्थापित होने पर राम ने बाली का वध करके सुग्रीव को उसका राज्य तथा पत्नी दिलवायी।[6] स्वामी के प्रति सेवक की निश्छल भक्ति होती है। वह स्वामी के आदेश का भी कभी उल्लघन नहीं कर सकता। इक्ष्वाकुवंश की विगति में सुमन्त्र को अपना जीवित रहना तथा लम्बी आयु होना बहुत कष्ट देता है।[7] राम के वन जाने पर सब सेवक रुदन करते हुए दिखायी देते हैं।[8]

(२) नारी के प्रति भावनाएँ---नारी के प्रति भास ने एक ओर जहाँ तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया है, वहीं दूसरी ओर उसके महान् तेज को भी प्रकट किया है। कैकेयी के व्यवहार के कारण वह स्त्रियों का तिरस्कार करते हैं[9] और सीता की तेजस्विता को अनिर्वचनीय बताते हैं।[10] भास ने नारी की कोमलता और कठोरता

---

१. त्वरितमुपगता हि भ्रातरः। प्रतिमा० ३.३ ॥
२. वक्षः प्रसारयकबाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन। प्रतिमा० ४.१६
३. भ्रातृस्नेहोऽपमीदृशः। प्रतिमा० ४.१२ ॥
४. इम स्वय गच्छतु मानहेहोमातिव भावं तनये निवेश्य। प्रतिमा० ४.१३ ॥
५. न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। प्रतिमा० पृ० ७६ ॥
६. सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना।
हृतदारो वसञ्छैलं तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ प्रतिमा० ६.१० ॥
७. नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरता षादमनायता कुलस्य।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसहयं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ प्रतिमा० ४.१८
८. एतेभृत्याः स्वानिकर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातवाष्पाकुलाक्षाः।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ प्रतिमा० २.१३ ॥
९. अलमुपहतासुस्त्रीबुद्धिषुस्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम् ॥ प्रतिमा० पृ० २८ ॥
१०. इद तव स्त्रीमय तेजो जातं क्षेत्रोदशद्धलात्।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥ प्रतिमा० ४.१४ ॥

का वर्णन किया है। सीता इतनी कोमल है कि दर्पण को उठाने में भी उनका हाथ थक जाता है, परन्तु वन में रहते हुए वे कठोर परिश्रम करती हैं तथा कलश हाथों में उठा कर वृक्षों की सिंचाई करती हैं।[१] स्त्रियों को आभूषण भी प्रिय होते हैं। सीता सदा हाथों में और गले में आभूषण पहनती थीं। ठीक प्रकार से पहनने के लिए वे दर्पण का उपयाग करती थीं। तथापि बल्कल धारण करने के लिए उन्होंने आभूषण त्याग दिये थे। भास की मान्यता है कि कुलीन स्त्रियों को पर्दे में रहना चाहिये। प्रतिमागृह में पूजन के लिए आते समय दशरथ की रानियाँ अवगुण्ठन में हैं, जिसको कि वे मन्दिर में प्रवेश के समय हटा देती हैं, परन्तु कुछ विशिष्ट अवसरों पर, यज्ञ, विवाह, आपत्ति और वन में रहना, उनको सब लोग देख सकते हैं।[२] भास ने विवाह के समय स्त्रीशुल्क का भी उल्लेख किया है,[३] परन्तु इसको अच्छा नहीं समझा गया था।[४]

(२) **शिष्टाचार तथा परम्पराएँ**--भास ने विविध प्रकार के शिष्टाचार तथा परम्पराओं के निर्वाह पर बल दिया था। गुरुजनों तथा अन्य लोगों के दोषों का उद्घाटन करना उचित नहीं समझा जाता था।[५] अभिवादन करते हुए क्रम का ध्यान रखना आवश्यक है।[६] भरत पहले कौशल्या का और उसके बाद सुमित्रा का अभिवादन करते हैं। सब परिजनों के मिलने पर पहले राम, तदनन्तर लक्ष्मण और उसके बाद सीता माताओं का अभिवादन करते हैं। इसी प्रकार भरत पहले राम का, तदनन्तर सीता का और उसके बाद लक्ष्मण का अभिवादन करते हैं।[७]

समृद्ध जनों द्वारा प्रसन्न होने पर अपने सेवकों को प्रचुर पारितोषिक दिया जाता था। राज्याभिषेक का समाचार सुनकर सीता ने सारे आभूषण दासियों की झोली में भर दिये। नगरों में प्रवेश के समय लोग पहले कुछ विश्राम करके फिर अन्दर जाते थे।[८] इन कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त का भी ध्यान रख जाता था।[९] घर

---

१. योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि सनैति खेदं कलशं वहन्त्या। प्रतिमा० ५.३।
२. निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च॥ प्रतिमा० १.२९॥
३. शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते। प्रतिमा० १.१५॥
४. स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्दः। प्रतिमा० ३.९॥
५. सुमन्त्रः— कुमार! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम्।
भरतः-- सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्। प्रतिमा० पृ० १११॥
६. तात! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि। प्रतिमा० पृ० ९६॥
७. प्रतिमानाटक पृ० २०४–२०७॥
८. अथ च उपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति समुदाचारः। प्रतिमा० पृ० ८०॥
९. एकनाडिकावशेषः कृत्तिका विषयः। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः। प्रतिमा० पृ० ७६॥

से किसी के विदा होने पर कम से कम द्वार तक उसको छोड़ने जाना चाहिये।[1] ब्रह्म-हत्या को महान् पाप समझा गया था। उसका प्रायश्चित्त अवश्य करना होता था।[2]

(४) श्राद्ध:—भास के समय में श्राद्ध करने की परम्परा विद्यमान थी। यह कल्पना की गयी थी कि दिवंगत होने पर पितृगण पितृलोक में रहते हैं। वे पुत्रों द्वारा श्राद्ध में प्रदान किये पदार्थों का उपभोग करते हैं। श्राद्ध की व्यवस्था के लिए श्राद्धकल्प नामक शास्त्र की रचना हो चुकी थी तथा उसका अध्ययन प्रचलित था।[3] श्राद्ध को कुल की परम्परा और वैभव के अनुरूप सम्पन्न करना चाहिये।[4] श्राद्ध द्वारा किये जाने पर ही यह श्राद्ध है।[5]

(५) अतिथि-सत्कार—भास ने अतिथि-सत्कार को महत्त्व दिया है।[6] अतिथि के आने पर सबसे प्रथम वचनों से उसका स्वागत करना चाहिये।[7] तदनन्तर आसन देकर जल से चरण-प्रक्षालन करना चाहिये। पुरुष को यदि किसी कारण बाहर भी जाना हो, तो गृहिणी द्वारा अतिथि-सत्कार किया जाना चाहिये। घर में जिस प्रकार की सामग्री या ऐश्वर्य हो उसको अतिथि के लिए तैयार करना चाहिये।[8]

(६) विद्याध्ययन—विद्याध्ययन के सम्बन्ध में भास ने कुछ संकेत किया है। विद्याध्ययन के केन्द्र तपोवन होते थे। यहाँ के प्रधान व्यवस्थापक को कुलपति कहा जाता था कार्यवश कुलपति बाहर भी चले जाते थे। अध्ययन विषयों का भास ने विस्तृत विवरण दिया है। मुख्य विषय थे—वेद, वेदाङ्ग, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, मेधातिथि का न्यायशास्त्र और प्राचेतस श्राद्धकल्प।[9] ज्योतिष का भी अध्ययन होता था। नक्षत्रों की गतियों तथा उनके शुभाशुभ फल से विद्वान् लोग परिचित थे।

(७) वर्णव्यवस्था—'प्रतिमानाटक' में वर्णव्यवस्था के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। भास के समय में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था प्रचलित थी और भास ने इनका समर्थन किया है। राजा को इस वर्ण व्यवस्था का संरक्षक माना गया था और वह चारों वर्णों को

---

१. आश्रमपदद्वारमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यामः। प्रतिमा० पृ० १३९॥

२. केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चितमिव मे प्रतिभाति। किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते? प्रतिमा० पृ० १११॥

३. सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता। प्रतिमा० पृ० १५१॥

४. कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः। प्रतिमा० पृ० १४६॥

५. सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्। प्रतिमा० पृ० १५१॥

६. यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। प्रतिमा० पृ० १४६॥

७. वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः। प्रतिमा० पृ० १५१॥

८. आश्रमपदे अस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पमिव्यं, तत् सर्वं सज्जीकृतम् ॥ प्रतिमा० पृ० १६५।

९. साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्य-अर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च। प्रतिमा० पृ० १५१॥

अभय प्रदान करता है ।[१] कवि ने वैश्य वर्ण का कहीं उल्लेख नहीं किया है, परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र का यत्किञ्चित उल्लेख आता है । ब्राह्मणों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था और सब उनको प्रणाम करते थे ! ब्राह्मण अन्य वर्णों को प्रणाम करे इसको सामाजिक शिष्टाचार तथा परम्परा के विरुद्ध समझा गया था ।[२] ब्राह्मणों को प्रचुर दान मिलता था । हर समय उनके द्वारा उच्चरित पुण्याहवाचन (स्वस्तिवाचन) की ध्वनि सुनायी देती थी ।[३] क्षत्रिय के लिए युद्ध कर्त्तव्य था और ललकारे जाने पर वे युद्ध में अपना पराक्रम प्रदर्शित करते थे ।[४] शूद्रों के लिए देव पूजन यज्ञ आदि का अधिकार तो था, परन्तु उसमें वे वेद-मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर सकते थे ।[५]

आश्रम-व्यवस्था—भास के समय में आश्रम-व्यवस्था भी अवश्य प्रचलित थी। शास्त्रों में चार आश्रमों का उल्लेख है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । इनमें उत्तरवर्ती तीन आश्रमों की अभिव्यञ्जना है । पति-पत्नी मिलकर गृहस्थ धर्म का पालन करते थे । पत्नी का कर्त्तव्य था कि पति के दुःखों को दूर करे । अतिथि सत्कार इनका परम धर्म था । राम-सीता ने परिव्राजक वेशधारी रावण का अतिथि-सत्कार किया था ।[६] गृहस्थ आश्रम के पश्चात् पुत्र को घर का भार सौंपकर तपस्या के लिए लोग वनों (तपोवनों) में चले जाते थे ।[७] इक्ष्वाकुवंश में यह परम्परा थी कि वे वृद्धावस्था में वल्कल पहन कर तपोवन में चले जाते थे; अतः भास ने वल्कल वस्त्रों को वृद्ध इक्ष्वाकुओं का अलङ्कार कहा है ।[८] इस अवस्था में वल्कलवस्त्रों को मङ्गलकारी कहा गया है,[९] परन्तु पिता के प्रति स्नेह में बँधे पुत्रों को सम्भवतः पितृ वियोग अच्छा नहीं लगता था; अतः राज्याभिषेक न होने पर दशरथ अब वन नहीं जायेंगे । इससे राम को प्रसन्नता होती है ।[१०] संन्यास आश्रम का भी उल्लेख है।

---

१. चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः । प्रतिमा० ४.७ ॥
२. दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः ।
प्रतिमा० पृ० ८३ ॥
३. संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्त पुण्याहशब्दरवो रघुः ।
प्रतिमा० पृ० ८५ ॥
४. क्षात्रधर्मे यदिस्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् । प्रतिमा० ५.२१ ॥
५. वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चित दैवतः ॥ प्रतिमा० ३.५ ॥
६. यावदहमप्यति मुदाचारमनुष्ठास्यामि । प्रतिमा० पृ० १४६ ॥
७. (क) भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यति । प्रतिमा० पृ० १५ ॥
(ख) इत्यादिश्य च ते तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया ॥ प्रतिमा० २.१६ ॥
८. इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारं स्तनया धार्यते ॥ प्रतिमा० पृ० २४ ॥
९. मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलां स्तावदानय ॥ प्रतिमा० १.२४ ॥
१०. वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैवतावत् ॥ प्रतिमा० १.१४ ॥

संन्यासी को परिव्राजक भी कहा गया है; क्योंकि वह सदा परिभ्रमण करता रहता है। रावण ने परिव्राजक का रूप रख कर ही सीता का अपहरण किया था।[1] संन्यासी का अतिथि-सत्कार अनिवार्य कर्त्तव्य था।

(९) **तपोवन**—वानप्रस्थ आश्रम के साथ तपोवनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राचीन कवियों ने तपोवनों में रहकर तप के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। धर्म का पालन करने के लिए तप को कवच कहा गया है।[2] जो कार्य पराक्रम से सिद्ध नहीं हो सकते, वे तप से सिद्ध हो जाते हैं।[3] तपोवन में रहने से सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है, परन्तु गलत आचरण करने पर यह नष्ट भी हो सकती है।[4] तपोवनों को मुनिजनों का आवास कहा गया है।[5] इन मुनिजनों की रक्षा करना क्षत्रिय का कर्त्तव्य था। इन्हीं की रक्षा के निमित्त राम ने राक्षसों से वैर मोल ले लिया था।[6] मुनिजनों के क्रोधित होने पर उनके शाप से बचा नहीं जा सकता था।[7] तपोवनों में रहने वाले जटाएँ भी धारण करते थे। तपोवनों में स्त्रियाँ भी रह सकती थीं। इनका मुख्य कार्य आश्रमों की देखभाल करना, सफाई करना, देवपूजन आदि थे।

(१०) **आभूषण**—भास ने कहीं कहीं आभूषणों के प्रयोग, कलाओं और मनोरञ्जन के साधनों की बात भी लिखी है। स्त्रियाँ प्रचुरमात्रा में आभूषण पहनती थीं। दर्पण को सामने रखकर आभूषण धारण किये जाते थे। आभूषणों को पहनने से शरीर के अङ्गों पर निशान भी बन जाते थे।[8]

(११) **कला और मनोरञ्जन**—भास के समय में मूर्तिकला अपने उत्कृष्ट शिखर पर थी। प्रतिमागृह में मूर्तियों को देखकर भरत कहते हैं कि मूर्ति की रचना में पत्थरों में भी माधुर्य भर दिया गया है और ये बिल्कुल मनुष्य प्रतीत होती हैं।[9] राजाओं के मनोरञ्जन का एक महत्त्वपूर्ण साधन मृगया (शिकार खेलना)

---

१. ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः ॥ प्रतिमा० पृ० १४८ ॥

२. तपः सङ्ग्रामकवचम् ॥ प्रतिमा० १.२८ ॥

३. श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ प्रतिमा० ५.६ ॥

४. तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ प्रतिमा० ६.२ ॥

५. मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मिभूयः ॥ प्रतिमा० ७.२ ॥

६. वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसामहता कृतम् ॥ प्रतिमा० ६.११ ॥

७. अपरिहरणीयो महर्षिशापः ॥ प्रतिमा० पृ० १९० ॥

८. कर्णौ त्वरापहृतभूषण भुग्नपाशौ संस्रसिताभरणगौरतलौ न हस्तौ ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥
प्रतिमा० १.८ ॥

९. अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् । दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासता प्रतिमानाम् ॥ प्रतिमा० पृ० ८० ॥

था। मृगया के लिए गये हुये ही दशरथ ने मुनिपुत्र का धोखे से बध कर दिया था।[1]

(१२) **अभिनय**—भास के समय अभिनय कला का समुचित विकास हो चुका था। समय के योग्य नाटकों का अभिनय कराया जाता था।[2] अभिनय के कार्य को रङ्ग कहते थे। अभिनयोचित सामग्रियों के रखने का स्थान नेपथ्य कहलाता था। उसकी देखभाल करने वाली महिला नेपथ्यपालिका थी। अभिनय के स्थान को सङ्गीतशाला भी कहते थे।[3] इससे प्रतीत होता है कि अभिनय में सङ्गीत को प्रचुर महत्त्व प्राप्त था। भास के उच्च कोटि के नाटक स्वयं ही उस युग की अभिनय-कला के साक्षी हैं।

(१३) **धर्म की महत्ता**—भास के प्रतिमानाटक में धर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है। धर्म का पालन करने वाले धर्मपरायण व्यक्ति का बहुत अधिक आदर था।[4] धर्म के कार्यों में विघ्न करना उचित नहीं समझा गया था।[5] यज्ञ करना एक धार्मिक कार्य था और धर्मरूपी दीपक को जलाना कल्याणकारी था।[6] धर्म को सारथि कहा गया है. जो मनुष्य के जीवन का सञ्चालन करता है।[7] धार्मिक कार्यों में यज्ञ का बहुत महत्त्व था। विश्वजिन यज्ञ को सम्पन्न करने वाले दिलीप वन्दनीय थे। यज्ञों में मन्त्रोच्चारण के साथ घृत की आहुति दी जाती थी, परन्तु मन्त्रोच्चारण में स्वरों और पदों का विशेष महत्त्व था। इससे हीन आहुति असफल होती थी।[8] अमन्त्रोक्त आहुति निन्दनीय थी।[9] यज्ञान्त स्नान को अवभृथ कहते थे। यह रजोगुण को शान्त करता है।[10]

(१४) **देवतावाद**—भास ने देवतावाद का समर्थन किया है। देवताओं का स्थान स्वर्ग कहा गया है, रावण के साथ युद्ध में मारे गये जटायु के लिए राम कहते हैं कि इसको स्वर्ग प्राप्त हो।[11] रघुवंशी राजा देवासुर संग्रामों में इन्द्र की सहायता के लिए जाते थे, इस प्रकार की कल्पना कवियों ने की है। यद्यपि यह कल्पना

---

१. पुरा मृगयां गतेन महाराजेन···मुनितनयोहिंसितः ॥ प्रतिमा० पृ० १८९ ॥
२. कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवत। प्रतिमा० पृ० १० ॥
३. प्रतिमानाटक पृ० ४१ ॥
४. नमोऽस्तु धर्मपरायणाय ॥ प्रतिमा० पृ० ८५ ॥
५. यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ॥ प्रतिमा० पृ० १०४ ॥
६. यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्ज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः ॥ प्रतिमा० पृ० ८५ ॥
७. गृह्यानां धर्मसारथिः ॥ प्रतिमा० १.२८ ॥
८. स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिव······हर्तुकामः प्रयामि ॥ प्रतिमा० ५.७ ॥
९. हरामि रुदतीं बालामन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥ प्रतिमा० ५.१५ ॥
१०. नित्यावभृथप्रशान्तरजा अजः ॥ प्रतिमा० पृ० ८५ ॥
११. स्वर्गोऽस्यास्तु ॥ प्रतिमा० ॥

'वाल्मीकि-रामायण' में नहीं है तथापि यह उत्तरवर्ती काल में प्रचलित हुई थी। दशरथ को देवासुर-संग्रामों में विजय प्राप्त करने वाला कहा गया है।[1] उनके वक्षःस्थल पर असुरों के बाणों के घाव बन गये थे।[2] असुर या राक्षस अधिक शक्तिशाली थे और युद्धों में प्रायः जीतते थे। रावण कहता है कि मैंने इन्द्र, कुबेर, चन्द्र और यम को पराजित किया है तथा वे डर कर स्वर्ग में घुस गये हैं।[3] मृत्यु के पश्चात् इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के देवलोक (स्वर्ग लोक) जाने की कल्पना अनेक स्थानों पर भास ने की है।[4]

(१५) देवमन्दिर—देवताओं की उपासना के लिए देवमन्दिरों की रचना भास के युग में प्रचलित थी। नगरों के बाहर देव मन्दिर बनते थे और उनमें लोग पूजन के लिए जाते थे। विशिष्ट पर्वों पर मन्दिरों की सफाई-सजावट भी की जाती थी। देवमन्दिर के आने पर देवता को प्रणाम किये बिना जाना उचित नहीं समझा जाता था।[5] तपोवनों में भी देवमन्दिर होने होंगे। सीता कहती है कि मैंने आश्रम में उपलब्ध सामग्री से देवपूजन कर लिया है।

(१६) पितृलोक—भास ने पितृलोक की कल्पना की है। यहाँ रहकर पितर लोक अपने सांसारिक बन्धुओं को देखते हैं तथा उनसे पिण्डदान की कामना करते हैं। वे स्वर्ग में देवताओं के साथ भी रहते हैं।

(१७) पुनर्जन्म—भास पुनर्जन्म को भी मानते हैं। अपने कर्मों के अनुसार मनुष्य को पुनः जन्म लेना होता है। सांसारिक विषय-भोग पुनर्जन्म के कारण हैं, परन्तु जो इन विषय भोगों में फँसते नहीं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।[6]

(१८) प्रतिमागृह—भास ने इस परम्परा का उल्लेख किया है कि उनके समय में मृत राजाओं की मूर्तियाँ नगरों के बाहर बनाये गये प्रतिमागृहों में स्थापित की जाती थीं। ये मन्दिर विशाल आकार के ऊँचे बनाये जाते थे, जो राजभवनों से होड़ करते थे और इनमें लोग बेरोक टोक आ सकते थे।[8] इन मन्दिरों में समय-

---

१ (क) देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथः ॥ प्रतिमा० पृ० ७ ॥
(ख) गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये खं समानैर्विमानै-
र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ॥
प्रतिमा० ४.१७॥

२. पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम् ॥ प्रतिमा० ४.८ ॥

३. भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः कृष्टः सोमो मर्दितः कर्णपुत्रः ।
धिग्भो स्वर्गं भीतदैत्यैर्निविष्टम् ॥ प्रतिमा० ५.१७ ॥

४. प्रतिमा० ४.१५, ४.१७, ४.२२, ४.७, ५.१० ॥

५. कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः ॥ प्रतिमा० ३.५ ॥

६. आश्रमादविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः ॥ प्रतिमा० पृ० १४० ॥

७. आवर्तिभिश्च विषयैर्न बलात् ध्रियन्ते ॥ प्रतिमा० ५.१० ॥

८. इदं गृहं तत् प्रतिमा नृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥ प्रतिमा० ३.१३ ॥

समय पर पूजन के लिये परिवार के लोग आते थे । उस समय इन की विशे सजावट सफाई की जाती थी । इनकी देखभाल के लिये पुजारी (देवकुलिक) नियु होता था ।

(१९) राजनीतिक प्रसङ्ग—'प्रतिमानाटक' में यद्यपि राजनीतिक प्रस न है, तथापि विशेषण आदि के निमित्तों से भास ने राजनीतिक वातावरण का बहुत कुछ निर्देश कर दिया है । राज्य में सुव्यवस्था और प्रजा के हित के लिये राज का होना अनिवार्य है । राजा के न होने पर प्रजाओं का विनाश हो जाता है राज्य का भार महान् है, जिसका वहन करना अकेले कठिन होता है ।[२] अतः राज की उपेक्षा क्षण भर के लिये भी नहीं करनी चाहिये ।[३] राम के बन चले जाने त भरत को उनको वापिस लेने के लिये जाने पर अयोध्या राजा विहीन हो गई है अतः राम कहते हैं कि मेरी सौगन्ध है, जो तुम राज्य की रक्षा के लिये न जाओ राजा को चाहिये कि वह राज्य की उपेक्षा न करे और धर्म के अनुसार लोक पालन करें ।[५] प्रजा का धर्म के अनुसार पालन करने वाला राजा उनका स्नेह भाज होता है । प्रजा-पालन के कारण ही राम अति लोकप्रिय हो गये थे । राम के वनवा को सुनकर सारे प्रजाजन आँखों में आँसू भरकर उनके प्रासाद के बाहर गये थे ।[६] भोजन छोड़कर, दीन मुख से उच्च स्वर से रुदन करते हुये वे उसी दि की ओर देखते थे, जिधर राम गये थे ।[७] भरत कहते हैं कि हे राम ! आपको देख की इच्छा वाले नगरनिवासी आशायें लगाये हुये हैं । आपका दर्शन करके ही उन प्रसन्नता होगी ।[८]

(२०) सैन्य पद्धति—भास ने सैन्य पद्धति पर भी कुछ प्रकाश डाला है सेना चतुरङ्गिणी होती थी—गज सेना, अश्व सेना, रथ सेना और पदाति सेना इसके अतिरिक्त नौसेना भी निश्चित रूप से विद्यमान थी । भरत कहते हैं कि तैरने वाली सेनाओं द्वारा समुद्र को पार करके रावण को पराजित करेंगे ।[९]

---

१. एवं नृपति हीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः । प्रतिमा० ३.२३ ।।
२. कष्टं भोः नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति । प्रतिमा० ५.१ ।।
३. राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् । प्रतिमा० पृ० १३८ ।।
४. मे शापितो न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् । प्रतिमा० ४.२४ ।।
५. धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् । प्रतिमा० ७.११ ।।
६. स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् वाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः । प्रतिमा० १.२९ ।।
७. ...... सवृद्धवनिताबालाश्च पौराः जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ।। प्रतिमा० २.२ ।।
८. आशावन्त : पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद् दिदृक्षया ।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ।। प्रतिमा० ४.२८ ।।
९. बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ।। प्रतिमा० ६.१६।।

(२१) राज्याभिषेक—भास ने राज्याभिषेक की प्रक्रिया का वर्णन किया है। द्ध होने पर राजा अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके वनों को चले जाते थे। राज्याभिषेक के समय बनाये गये पटहो से नगर गूँज जाते थे। उस समय गुरुजन यथोचित आसन पर बैठते थे, नये राजा को राजसिंहासन पर बिठाया जाता था, घड़ों को कन्धों तक ऊँचा उठाकर मन्त्रोच्चारण के साथ अभिषेक का जल गिराया जाता था।[1] यह कार्य नवाभिषिक्त राजा के भाइयों द्वारा किया जाता था। निवर्तमान राजा स्वयं छत्र लेकर उस पर लगाता है।[2] राज्याभिषेक के लिए प्रयुक्त होने वाला जल अनेक तीर्थों तथा नदियों से लाया जाता था।[3] राज्याभिषेक की तैयारी का वर्णन कञ्चुकी ने इस प्रकार किया है—

छत्र और चँवर तैयार है, नगाड़े बजाये जा रहे हैं, राजसिंहासन को सजा दिया गया है, विविध तीर्थों से लाये गये जल से भरे स्वर्ण घटों पर दर्भ तथा कुसुम सजा दिये गये हैं, पुष्परथ (राज्याभिषेक के पश्चात् तथा राजा इस पर बैठकर नगर का परिभ्रमण करता है) को जोत दिया गया है, नगरनिवासी और मन्त्रिगण उपस्थित हो गये हैं और यज्ञ की वेदी पर वशिष्ठ मुनि राज्याभिषेक कराने के लिए उपस्थित हो गये हैं।[4]

१६. उपसंहार

'प्रतिमानाटकम्' की ऊपर की गयी समालोचना से भास की कृतियों की, विशेष रूप से 'प्रतिमानाटक' की सभी विशेषताएँ स्पष्ट हो गयी हैं। संस्कृत नाटककारों में भास सबसे प्राचीन कवि हैं। इनके १३ नाटक उपलब्ध हुए हैं तथा इनके अवलोकन से स्पस्ट है कि भास में नाटक लिखने की सभी प्रकार की योग्यताएँ थीं। कथानक के संयोजन, संवाद, चरित्र चित्रण, भाषा, शैली, अलंकार-योजना, छन्द, रस-योजना, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इन सभी दृष्टियों से भास के नाटक अनुपम और अतुलनीय हैं। भास की कृतियों की उत्तरवर्ती कवियों और समालोचकों ने बहुत प्रशंसा की है तथा उत्तरवर्ती कवियों को भास ने बहुत प्रभावित किया है।

---

१. आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लंघिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ॥ प्रतिमा० १.५ ॥

२. शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ॥ प्रतिमा० १.७ ॥

३. तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ॥ प्रतिमा० ७.६ ॥

४. छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं,
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णाः घटाः।
युक्तः पुष्परथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वशिष्ठः स्थितः ॥ प्रतिमा० १.३ ॥

भास का कालिदास पर प्रभाव स्पष्ट हैं। भास के अनेक भावों को कालिदास ने ग्रहण किया है। सौन्दर्य को बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं है। उन पर सभी कुछ सुन्दर लगता है। यथा—

भास—सर्वशोभनीयं सरूपंनाम। प्रतिमा० पृ० १२।

कालिदास—किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

अभिज्ञानशाकुन्तलम् १.१७॥

तपोवन की वनस्पतियाँ और जन्तु तपस्वि बालिकाओं द्वारा पुत्रवत् पाले जाते हैं। उस विषय का सुन्दर चित्रण कालिदास ने भास के अनुकरण पर किया—

भास—आपृच्छ पुत्रकृतवान् हरिणान् द्रुमांश्च।
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च॥ प्रतिमा० ५.११॥

कालिदास—पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्येव: कुसुमप्रसूतिसमये यस्या: भवत्युत्सव:
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ अभिज्ञान० ४.८।

भास ने भवभूति को भी प्रभावित किया है। 'प्रतिमानाटक' में करुण रस उद्रेक है, जो नाटक के सुखान्त होने पर भी सहृदयों को विगलित करने में समर्थ है। इसी प्रकार भवभूति के 'उत्तररामचरित' में करुण रस का उद्रेक है, जो सुखान्त होते हुये भी सहृदयों का हृदय करुणा से पूर्ण किये रहता है। भास ने यदि 'प्रतिमानाटक' में प्रतिमावीथी की कल्पना की है। तो सम्भवत: इसी का आश्रय लेकर भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में चित्रवीथी को कल्पना की है। भास के 'अविमारक' नाटक के कथानक की कल्पनाओं ने भवभूति के 'मालतीमाधव' के कथानक को निश्चित रूप से प्रभावित किया है। इसी प्रकार भास का प्रभाव अनेक नाटककारों—विशाखदत्त, दिङ्नाग, हर्ष, राजशेखर आदि कवियों पर पड़ा है। 'रामायण' के कथानक में परिवर्तन करके उसको नाटकीय रूप देना भास का ही प्रथम प्रयास था। सम्भवत: इन्हीं का अनुकरण कर भवभूति, शक्तिभद्र, दिङ्नाग, राजशेखर, जयदेव, मुरारि आदि कवियो ने 'रामायण' के कथानक में परिवर्तन कर उनको नाटकीय रूप दिया था।

वस्तुत: संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रथम कवि और नाटककार भास नाटकीय रचना की दृष्टि से अनुपम हैं और उनके नाटकों का पठन-पाठन एवं अभिनय सामाजिक सहृदयों को रसानुभूति से विभोर करने में समर्थ है। भास को कविता-कामिनी का जो हास कहा गया है, वह यथार्थ ही है।

———

महाकविभासप्रणीतम्

प्रतिमानाटकम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः
सुग्रीवरामः सह लक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या
विभीषणात्माभरतोऽनुसर्गम् ॥१॥

[अन्वयः—सीताभवः सुमन्त्रतुष्टः सहलक्ष्मणः च सुग्रीवरामः अनुसर्गं पातु । यः रावणार्यप्रतिमः, देव्या, विभीषणात्माभरतः ॥१॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है ।)

सूत्रधार—

अर्थ [श्लोक १]—सीता के पति, उत्तम मन्त्रों से प्रसन्न होने वाले, लक्ष्मण के साथ रहने वाले और उत्तम ग्रीवा वाले राम आप सबकी जन्म-जन्म में रक्षा करें। जो कि रावण के शत्रु, (और रावण का) विनाश करने वाले, अनुपमेय, देवी सीता के साथ रहने वाले और अभिन्नहृदय विभीषण से प्रेम करने वाले हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—महाकविर्भासः प्रतिमानामकं नाटकं रचयितुकामः प्रथमं तावदभिनयप्रारम्भकाल एव नाटकस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तिकामः नान्दीरूपपूर्वरङ्गं प्रसाध्य रामस्तवनरूपकं मङ्गलश्लोकपाठं सूत्रधारद्वारेण निर्दिशति ।

सीताभवः सीतायाः जानक्याः भवः क्षेमकारकः पतिरित्यर्थः, सुमन्त्रतुष्टः शोभनैः मन्त्रैः तुष्टः मुदितः सहलक्ष्मणः लक्ष्मणसहितः, सुग्रीवरामः शोभना ग्रीवा यस्य सः सुग्रीवः तादृशः रामः दशरथपुत्रः रामचन्द्रः युष्मान् अनुसर्गं सर्गे सर्गे जन्मनि जन्मनि पातु रक्षतु । यः रामः रावणार्यप्रतिमः रावणस्य अरिः निहन्ता रावणारिः स चासौ अप्रतिमः न विद्यते प्रतिमा उपमा यस्य तादृशः अनुपमेयः, देव्या सीतया सह सदाविद्यमानः विभीषणात्माभरतः विभीषणे तन्नाम्नि रावणानुजे आत्मनः स्वस्य आभा सादृश्यं इति तस्मिन् समदुःखसुखे रतः प्रीतिमान् वर्तते ।

व्याकरण—

सीतायाः भवः=सीताभवः । षष्ठी तत्पुरुष समास । भू+अच्=भव ।

शोभनः मन्त्रः = सुमन्त्रः । सुमन्त्रैः तुष्टः = सुमन्त्रतुष्टः । मन् + त्र = मन्त्र । तुष् + क्त = तुष्ट । शोभना ग्रीवा यस्य सः = सुग्रीवः । सुग्रीवश्चासौ रामः = सुग्रीवरामः । रावणस्य अरिः = रावणारिः । न विद्यते प्रतिमा यस्य सः अप्रतिमः । रावणारिश्च अप्रतिमश्च = रावणार्यप्रतिमः । विभीषणे आत्मनाभे रतः = विभीषणात्माभरतः । रम् + क्त = रत । सर्गे सर्गे = अनुसर्गम् ـअव्ययीभाव समास ।

अलङ्कार—मुद्रालङ्कार । यहाँ प्रकृत अर्थों के द्योतक सीता, सुमन्त्र, सुग्रीव आदि पदों को नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम द्वारा मुद्रा रूप में निबद्ध किया गया है । मुद्रालङ्कार का लक्षण है—

"सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थं पदैः पदैः"

छन्द:—इन्द्रवज्रा

नान्द्यन्ते—

भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार महाकवि भास ने भगवान् राम की मंगलरूपस्तुति की है । नाट्य-परम्परा में कवि अपने इष्टदेव की, जो कि नाट्य-कथा के अनुकूल भी हो, रूपक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए स्तुति करता है । राम इस नाटक के प्रमुख पात्र भी हैं तथा उनकी भगवान् के अवतार रूप में कल्पना भी है ।

संस्कृत नाटकों में प्रायः यह परम्परा है कि पहले इष्टदेव की नान्दी के रूप में स्तुति होती है और उसके पश्चात् सूत्रधार रंगमंच पर प्रविष्ट होकर नाट्य के अभिनय का सूत्र प्रारम्भ करता है, परन्तु भास के नाटकों में इससे कुछ भिन्न स्थिति है । भास के नाटकों में मंगलाचरण रूप देव-स्तुति के पूर्व ही "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः", लिखा है । इससे यह अनुमान लगाया गया है कि भास की दृष्टि में देवस्तुति रूप श्लोक नान्दी नहीं है, अपितु इससे पूर्व ही वाद्यसंगीत द्वारा नान्दी का प्रयोग किया जाता है । तदनन्तर सूत्रधार प्रवेश करके देवस्तुतिरूप मङ्गलाचरण करता है ।

वस्तुतः मङ्गलाचरण रूप श्लोक ही नान्दी है; अतः "सीताभवः०" श्लोक को ही नान्दी मानना चाहिये । इस अवस्था में प्रश्न उत्पन्न होता है कि यहाँ "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" पद से स्पष्ट है कि नान्दी पाठ के अनन्तर रंग-मञ्च पर प्रविष्ट होकर सूत्रधार ने देवस्तुतिरूप मङ्गलाचरण का गान किया है । इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का कथन है कि यहाँ प्रतिलिपिकार का प्रमाद है । उसने भूलवश इस वाक्य को नान्दी से पहले लिख दिया है । बाद में होना चाहिये था, परन्तु यह युक्ति कुछ जमती नहीं । बाण ने भास के नाटकों की विशेषता बताते हुए लिखा है—"सूत्रधारकृतारम्भैः" । इससे स्पष्ट है कि बाण के समय तक भी भास के नाटकों की प्रतिलिपियों में यह वाक्य मङ्गलाचरण श्लोक से पहले ही था; अतः इसका कुछ और स्पष्टीकरण होना चाहिये ।

नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार नान्दीपाठ सूत्रधार द्वारा किया जाता है (सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्)। अतः "सीताभवः०" श्लोक नान्दी ही है। 'नान्द्यन्ते' पद का अर्थ होना चाहिये—नान्द्याः अन्ते समीपे नान्दीं पठितुमित्यर्थः। नान्दी का पाठ करने के लिए सूत्रधार प्रवेश करता है। इस प्रकार अर्थ करने पर संगति उचित हो जाती है।

नान्दी—

अभिनय को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए नान्दी का पाठ करना चाहिये (रङ्गविघ्नोपशान्त्यर्थं नान्दीमादौप्रयोजयेत्)। नान्दी का पाठ करने के अनन्तर ही सूत्रधार अभिनय को प्रारम्भ करता है। नान्दी का लक्षण है—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥

यह नान्दी बारह या आठ पदों से युक्त होती है। पद के दो अभिप्राय हो सकते हैं—श्लोकपाद अथवा सुबन्त-तिङन्त पद। यहाँ पद से सुबन्त-तिङन्त पद लेना चाहिये। यहाँ १२ पद हैं—सीताभवः, पातु, सुमन्त्रतुष्टः, सुग्रीवरामः, सहलक्ष्मणः, यः, रावणारिः, अप्रतिमः, देव्या, विभीषणात्मात्मा, भरतः, अनुसर्गम्। इस प्रकार यह द्वादशपदा नान्दी है।

नान्दीशब्द की व्युत्पत्ति है—नन्दन्ति देवता अस्याम् अनया वा सा नान्दी। जिसमें देवता प्रसन्न होते हैं अथवा जिसके द्वारा देवता प्रसन्न होते हैं, वह नान्दी है। अथवा—नन्दयति देवताः या सा नान्दी। जो देवताओं को प्रसन्न करती है, वह नान्दी है। अथवा—नन्दिः आनन्दस्तस्या इयं नान्दी। जिन क्रियाओं गति-वाद्य आदि द्वारा आनन्द की सृष्टि की जाती है, उसको नान्दी कहते हैं।

नान्दी अनेक प्रकार की होती है। जिस नान्दी द्वारा कथावस्तु का संकेत किया जाता है, वह पत्रावली नान्दी कहलाती है, यहाँ नान्दी के श्लोक से कथा-वस्तु का संकेत मिलता है कि इसमें सीता, सुमन्त्र, सुग्रीव, लक्ष्मण, रावण, विभीषण और भरत प्रमुख पात्र हैं। सीता के राम पति हैं। सुमन्त्र से मन्त्रणा करके दशरथ कार्य करते हैं। सुग्रीव से राम की मित्रता है। लक्ष्मण उनके साथ रहते हैं। राम की रावण से शत्रुता है। विभीषण से उनकी अन्तरङ्गता है और भरत उनके अनुयायी हैं। पत्रावली नान्दी का लक्षण है—

यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा॥ नाट्यदर्पण॥

रावणार्यप्रतिमः—पद द्वारा कवि ने नाटक की अभिधेयता को स्पष्ट किया है कि इसमें प्रतिमाओं द्वारा रहस्य का उद्घाटन किया जाना है; अतः इसका नाम

'प्रतिमानाटकम्' रखा गया। दशरथ की प्रतिमा को मन्दिर में स्थापित देखकर भरत को उनकी मृत्यु का ज्ञान होता है।

....

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये ! इतस्तावत्।

(प्रविश्य)

नटी—आय्य ! इअम्हि [आर्य ! इयमस्मि]।

सूत्रधारः— आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत्।

नटी—आय्य ! तह [आर्य ! तथा]।

(गायति)

सूत्रधारः—अस्मिन् हिं काले—

चरतिपुलिनेषुहंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।

(नेपथ्ये)

अय्य ! अय्य ! [आर्य ! आर्य !]

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः—भवतु विज्ञातम्—

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥२॥

[**अन्वय**—काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति, इव प्रतिहाररक्षी मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता (चरति) ॥२॥]

(निष्क्रान्तौ)

इति स्थापना

हिन्दी रूपान्तरण—

(नेपथ्य की ओर देखकर)

आर्ये ! इधर तो आओ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य ! यह आ गयी हूँ।

सूत्रधारः—आर्ये ! अब इसी शरदृतु को लक्ष्य करके कुछ गाओ :

नटी—आर्य ! बहुत अच्छा।

(गाती है)

सूत्रधार—इस समय मैं—

अर्थ [श्लोक २;—काशपुष्प रूपी शुभ्र वस्त्रों को धारण करने वाली हंसी अति प्रसन्न-चित्त होकर नदी तटवर्ती रेतीले प्रदेश में विचरण कर रही है।

(नेपथ्य में)

ार्य ! आर्य !

(सुनकर)

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया—

जिस प्रकार कि काश के समान शुभ्रवस्त्र धारण करने वाली प्रतिहारिणी प्रसन्न होकर तेजी से राजभवन में प्रवेश करती है ॥२॥

(नट और नटी दोनों निकल जाते हैं)

स्थापना पूरी हुई

संस्कृत-टीका—काशांशुकवासिनी काशाः धवलकाशपुष्पाणि एवं अंशुकानि वस्त्राणि वासयति धारयति इति तादृशी, अथवा काशांशुः काशपुष्प इव प्रकाशमाना के जले वासिनी कवासिनी, सुसंहृष्टा अत्यधिक प्रसन्नचिता हंसी वरटा पुलिनेषु सरित्सैकतेषु चरति विहरति । इव यथा काशांशुकवासिनी काशपुष्प सदृशानि धवलवस्त्राणि धारयन्ति प्रतिहाररक्षी द्वारपालिका मुदिता प्रसन्नचित्ता नरेन्द्रभवने राजमन्दिरे त्वरिता संजातत्वरा चरति ॥२॥

व्याकरण—काशांशुकवासिनी काशा इव अंशुकानि वासयति । अथवा—काशसदृशाः अंशवः यस्याः सा काशांशु, के वसितुं शील यस्याः सा कवासिनी—च काशांशुश्च कवासिनी च काशांशुकवासिनी । वस् + णिनि् + ङीप् = वासिनी । सु + सम् + हृष् + क्त = टाप् = सुसहृष्टा । मुद् + क्त (इट् का आगम) + टाप् = मुदिता । प्रतिहारं रक्षति = प्रतिहार + रक्ष् + अप् + ङीप् = प्रतिहाररक्षी ।

छन्द—आर्या ।

अलङ्कार—काशा एव अंशुकानि यस्याः सा = काशांशुकवासिनी । रूपक अलङ्कार । प्रतिहाररक्षीव = उपमा अलङ्कार । हंसी उपमेय, प्रतिहाररक्षी उपमान, इव उपमा वाचक शब्द, काशांशुकवासिनी आदि साधारण धर्म ।

टिप्पणी—

सूत्रधार—नाटक के अभिनय-सूत्र को सञ्चालित करने वाले को सूत्रधार कहते हैं । वर्तमान समय के अनुसार रंगमंच प्रबन्धक (Stage Manager) ही सूत्रधार है । इस शब्द की परिभाषा है—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्य की उपकरण आदि सामग्री को सूत्र कहते हैं, जो इसको धारण करता है, अर्थात् प्रबन्ध करता है, वह सूत्रधार कहलाता है । नान्दी के पश्चात् सूत्रधार नाटकीय अभिनय को प्रारम्भ करने से पूर्व घटनाचक्र का निर्देश करते हुए नाटक के अभिनय को प्रारम्भ करता है । सामान्यतः संस्कृत नाटकों में सूत्रधार

नाटक तथा नाटक के रचयिता का संक्षिप्त परिचय भी देता है, परन्तु भास के नाटकों में यह कार्य नहीं किया गया है। 'प्रतिमानाटकम्' में भी सूत्रधार ने नाटक तथा नाटककार का परिचय नहीं दिया है। उसने केवल 'नाटकीय कथासूत्र की सूचना दी है। कहा भी है—

वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः उच्यते ॥

नेपथ्य—संस्कृत रंगमंच की रचना के संविधान में नेपथ्य का बहुत अधिक महत्त्व है। नेपथ्य का विशेष प्रबन्ध किया जाता है। नेपथ्य पद के तीन अर्थ लिये जा सकते हैं—

(१) नेपथ्य उन वेश-भूषाओं को कहा जाता है, जिनको अभिनय करने वाले अभिनेता पात्रों की भूमिका निभाने के लिए धारण करते हैं।

(२) नेपथ्य उस पर्दे को भी कहते हैं, जो रंगमंच को और सज्जा के कक्ष को पृथक् करता है।

(३) नेपथ्य उस सज्जा-कक्ष को भी कह सकते हैं, जहाँ नाटक के अभिनय की तैयारी की जाती है तथा अभिनेता आदि अपनी वेश-भूषा को धारण करते हैं। नाट्यशास्त्र में सामान्यतः इसी को नेपथ्य कहा गया है। इसका लक्षण है—

"कुशीलवकुटुम्बस्य—गृहं नेपथ्यमुच्यते"।

स्थापना—संस्कृत नाट्य-परम्परा के अनुसार नाटकीय कथावस्तु के प्रारम्भ में प्रस्तावना का आयोजन किया जाता है। इसको आमुख या स्थापना भी कहते हैं। भास ने यहाँ स्थापना शब्द का प्रयोग किया है। इसका लक्षण है—

सूत्रधारो नटीं ब्रूते माद्य वाद्य विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्।
प्रस्तावना वा "दशरूपक—३.७.८"।

अथवा—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा,
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मुखैः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

प्रस्तुत नाटक में सूत्रधार और नटी के वार्तालाप द्वारा नाटक को प्रारम्भ किया गया है। सूत्रधार नाटकीय कथावस्तु की सूचना देता है कि राजा दशरथ के भवन में कोई विशेष कार्य होने जा रहा है, जब कि प्रतिहाररक्षी प्रसन्न भाव से तेजी से प्रवेश कर रही है।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! को इह कञ्चुईआणं सण्णिहिदो ? [आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।]

(प्रविश्य)

कञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी—अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहद महारहो दररहो आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जपहावसंजोकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति । [आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेस्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेक सम्भारा आनीयन्तामिति ।

कञ्चुकीय—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन, तत् सर्वं सङ्कल्पितम् । पश्य—

(3) **छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं**
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णाः घटाः ।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥३॥

[अन्वयः—छत्रम् सव्यजनम्, सनन्दिपटहम् भद्रासनम् कल्पितम्, सदर्भकुसुमाः तीर्थाम्बुपूर्णाः हेममयाः घटाः न्यस्ताः, पुष्यरथः युक्तः, मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः, अस्य सर्वस्य हि मङ्गलम् सः भगवान् वसिष्ठः वेद्याम् स्थितः ॥३॥

हिन्दी रूपान्तर

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य ! यहाँ कौन कञ्चुकी उपस्थित है ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकीय—आदरणीये ! यह मैं उपस्थित हूँ । क्या कार्य करना है ?

प्रतीहारी—आर्य ! देव-असुर युद्धों में बेरोक-टोक रथ की गति वाले अर्थात् कभी पराजित न होने वाले महाराज दशरथ आदेश देते हैं—राजकुमार राम के राजकीय प्रभाव को सम्पादित करने वाली राज्याभिषेक की सामग्रियों को शीघ्र ले आओ ।

कञ्चुकीय—आदरणीये ! महाराज ने जो आदेश दिया है, उस सबको पहले ही तैयार कर दिया है । देखो—

अर्थ [श्लोक ३]—ये छत्र और चंवर तैयार हैं, आनन्दित करने वाले ये नगाड़े हैं, राजसिंहासन तैयार कर दिया है, कुशाओं और फूलों से युक्त तथा तीर्थों के

जलों से भरे हुए स्वर्णनिर्मित घड़े रख दिये हैं, पुष्यरथ अर्थात् क्रीड़ा-विहार के लिए उपयोगी रथ को जोत दिया है, मन्त्रियों सहित सारे नगर निवासी आ गये हैं, इस सब आयोजन के निश्चय से जो मंगलकारी हैं वे भगवान् वशिष्ठ वेदी पर बैठ गये हैं ।।३।।

संस्कृत-टीका—छत्रं राज्याभिषेकोचितं श्वेतातपत्रं सव्यजनं व्यजनेन चामरेण सहितं कल्पितमित्यर्थः । सनन्दिपटहं नन्दिना हर्षप्रदेन पटहेन वाद्यविशेषेण सहितं भद्रासनं राजसिंहासनं कल्पितं सन्निधापितम् । सदर्भकुसुमाः दर्भैः कुशैः कुसुमैः पुष्पैश्च सहिताः तीर्थाम्बुपूर्णाः तीर्थानां पुण्यस्थलानाम् अम्बुभिः सलिलैः पूर्णाः सम्भृताः हेममया, स्वर्णनिर्मिताः घटाः कलशाः न्यस्ताः सन्निधापिताः । पुष्यरथः क्रीडाविहारप्रयोजनविशिष्टः रथः स्यन्दनः युक्तः योजितघोटकः कृतः । मन्त्रिसहिताः सचिवैः सार्द्धं पौराः नगरनिवासिनः समभ्यागताः समुपस्थिताः । अस्य सर्वस्य यौवराज्याभिषेकसमारोहस्य हि निश्चयेन मङ्गल यः माङ्गल्योपकरणभूतः, सः भगवान् सर्वसमर्थः वसिष्ठः तन्नाम्ना प्रसिद्धः पुरोहितः, वेद्यां राज्याभिषेकानुष्ठानस्थानभूतायां वेद्यां स्थित उपविष्टो वर्तते ।।३।।

व्याकरण—सनन्दिपटहम् = नन्दिना सहितम् । कल्पितम् = क्लृप + णिच् + क्त । न्यस्ताः = नि + अस् + क्त = न्यस्त । पौराः = पुरे वसति, तस्य निवासः अर्थ में अण् प्रत्यय = पुर + अण् = पौर । वसिष्ठः = वसु + इष्ठन् ।

अलङ्कार—समुच्चय । कार्यसिद्धि के लिए एक साधक के रहने पर भी यदि अनेक साधनों का कथन किया जावे तो समुच्च अलङ्कार होता है । यहाँ राज्याभिषेक रूप कार्यसिद्धि के लिए अनेक साधनों का कथन किये जाने से समुच्चय अलङ्कार है ।

छन्दः—शार्दूलविक्रीडित ।

कञ्चुकी—राजाओं के अन्तः पुर का अधिकारी कञ्चुकी कहलाता था । यह अधिकारी अनेक गुणों से सम्पन्न एक वृद्ध ब्राह्मण होता था । सम्भवतः एक विशेष प्रकार का कञ्चुक धारण करने के कारण इसको कञ्चुकी कहा गया होगा । 'नाट्यशास्त्र' में कञ्चुकी की परिभाषा इस प्रकार है—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ।।

राज्याभिषेक के उपकरण—श्लोक ३ में महाकवि भास ने उन उपकरणों की गणना की है, जिनका प्रयोग राज्याभिषेक के अवसर पर किया जाता था । नये राजा के सिर पर श्वेत छत्र ताना जाता था, दोनो ओर चँवर डुलाये जाते थे, नगाड़े बजाकर राज्याभिषेक की घोषणा की जाती थी, राजसिंहासन तैयार किया जाता था, स्वर्णघटों में सभी तीर्थों का जल भरकर उन पर कुश तथा पुष्प बिछा कर स्नान कराया जाता था, सभी मन्त्री और नगरनिवासी इस समारोह

को देखने के लिए उपस्थित होते थे। यज्ञवेदी पर अधिष्ठित होकर पुरोहित राज्याभिषेक की प्रक्रिया को पूरा कराता था। राज्याभिषेक के अनन्तर नवीन राजा विशेष सजाये गये रथ पर, जिसको पुष्यरथ कहते थे, क्रीड़ा-विहार के लिए जाते थे।

प्रतीहारी—जइ एव्वं, सोहणं किद [यद्येव, शोभनं कृतम्]।

कञ्चुकीय—हन्त भोः!

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥४॥

[अन्वयः—इदानीं मेदिन्यां रामाभिधानं शशाङ्कम् अभिषिञ्चता भूमिपालेन प्रजाः कृतकृत्याः कृताः ॥४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

प्रतीहारी—यदि ऐसा है, तो अच्छा किया है।

कञ्चुकीय—अरे, प्रसन्नता की बात है—

अर्थ [श्लोक ४]—इस समय पृथिवी पर राम के नाम वाले चन्द्रमा का राज्याभिषेक करते हुए राजा ने प्रजाजनों को कृतकृत्य कर दिया है ॥४॥

संस्कृत-टीका—इदानीम् अस्मिन् समये मेदिन्यां पृथिव्यां रामाभिधानं राममितिनामकं शशाङ्कं चन्द्रमसम् अभिषिञ्चता राज्याभिषेकद्वारेण राजानं कुर्वता भूमिपालेन राज्ञादशरथेन प्रजाः लोकाः कृतकृत्याः सफलमनोरथाः कृताः विहिता. ॥४॥

अलङ्कार—रूपक और परिकराङ्कुर उपमेय राम पर उपमान शशाङ्क का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है। साभिप्राय विशेष का कथन करने पर परिकराङ्कुर अलङ्कार है। यहाँ भूमिपाल पद साभिप्राय विशेष्य है। राजा भूमि की रक्षा करता है; अतः उसको प्रजा का पालन करना समुचित है; अतः साभिप्राय विशेष्य होने से यहाँ परिकराङ्कुर अलङ्कार है।

छन्द—अनुष्टुप्।

व्याकरण—भूमिं पालयति इति भूमिपालः। भूमि + पाल् + अण्। अभिसिञ्चता = अभि + सिञ्च् + शतृ। तृतीया का एकवचन। अभि + धा + ल्युट् = अभिधान। शशस्य अङ्कः यस्मिन् अथवा शशः अङ्के यस्य सः शशाङ्कः।

प्रतीहारी—तुवरदु तुवरदु दाणिं अय्यो [त्वरतां त्वरतामिदानीमार्य]।

कञ्चुकीय—भवति! इद त्वर्यते। (निष्क्रान्तः)

प्रतीहारी—(परिक्रम्यावलोक्य) अय्य संभवअ! संभवअ गच्छ। तुवं पि

महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवरेहि। (अन्यतो गत्वा) सारसिए! सारसिए! सङ्गीदसालं गच्छिअ नाडईआण विण्णवेहि—कालसंवादिणा नाडएण सज्जा होइस्ति। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति महाराअस्स णिवेदेमि। 'आर्य! सम्भवक! सम्भवक! गच्छ। त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय। सारसिके! सारसिके! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयेभ्यो विज्ञापय कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति। यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि।]

(निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति अवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका:—अहो। अच्चाहिदं। परिहासेण वि इमं वल्कलं उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसी, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदुं विअ इच्छामि। ण खु एआइणीए हसिदव्वं। [अहो! अत्याहितम्। परिहासेनापि वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्। किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितुमेवेच्छामि। न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्।]

हिन्दी रूपान्तर—

प्रतीहारी—आर्य अब शीघ्रता करें, शीघ्रता करें।

कञ्चुकीय—आदरणीये! यह मैं शीघ्रता कर रहा हूँ। (निकल जाता है)।

प्रतीहारी—(घूमकर और देखकर) आर्य सम्भवक! सम्भवक! जाओ। तुम भी महाराज के आदेश से आर्य पुरोहित को यथोचित शिष्टाचार के साथ शीघ्र बुला लाओ। (दूसरी ओर जाकर) हे सारसिके! सारसिके! संगीतशाला में जाकर नाटक करने वालों से कहो—समय के योग्य नाटक का अभिनय करने के लिए तैयार हो जाओ। जब तक कि मैं भी महाराज से निवेदन करती हूँ कि सब कुछ तैयार कर लिया गया है।

(निकल जाती है)

(तदनन्तर वल्कल को लेकर अवदातिका प्रवेश करती है)

अवदातिका—अहो, अनर्थ हो गया। हँसी-हँसी में ही वल्कल को लाते हुये मुझको इतना अधिक भय हो गया है। लोभ के कारण दूसरे का धन हरण करने वाले की तो क्या अवस्था होती होगी। हँसने की ही इच्छा हो रही है, परन्तु अकेले हँसना तो ठीक नहीं है।

व्याकरण—

कालसंवादिना—कालेन संवादितुं शीलं यस्य तेन। काल + सम् + वद् + णिनि = कालसंवादिन्। तृतीया विभक्ति एकवचन। समय के योग्य।

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता—हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ। किं णु हु विअ एदं ? [हञ्जे ! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते। किन्नु खल्वेतत् ।]

चेटी—भट्टिणि ! सुलहावराहो परिणओ णाम। अवरज्झा भविस्सदि। [भट्टिनि ! सुलभापराधः परिजनो नाम। अपराद्धा भविष्यति ।]

सीता—णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि। [न हि, न हि, हसितुमेवेच्छति]।

अवदातिका—(उपसृत्य) जेदु भट्टिणी। भट्टिणि ! ण खु हं अवरज्झा। [जयतु भट्टिनी। भट्टिनि ! न खल्वहमपराद्धा ।]

सीता—का तुमं पुच्छदि। ओदादिए ! किं एदं वामहत्थपरि- गहिदं ? [का त्वां पृच्छति। अवदातिके ! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् ?]

अवदातिका—भट्टिणि ! इदं वक्कलं। [भट्टिणि ! इद वल्कलम्]।

सीता—वक्कलं किस्स आणीदं ! [वल्कलं कस्मादानीतम्]।

अवदातिका—सुणादु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिव्वुत्तरङ्गप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अम्हेहि जाइदा आसि। ण अताए दिण्णं। तदो अरिहदि अवराहो त्ति एदं गहिदं। [श्रृणोतु भट्टिनी। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत्। न च तया दत्तम्। ततोऽर्हत्यपराध इतीद गृहीतम्]।

सीता—पावअं किदं। गच्छ, णिय्यादेहि। [पापकं कृतम्। गच्छ, निर्यातय]।

अवदातिका—भट्टिणि ! परिहासनिमित्तं खु मए एदं आणीदं। [भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम्]।

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर परिजनों सहित सीता प्रवेश करती है)

सीता—हञ्जे ! अवदातिका का रंग कुछ शङ्का-सी उत्पन्न कर रहा है। निश्चय से यह क्या बात है ?

चेटी—स्वामिनि ! सेवकों से स्वाभाविक रूप से कुछ अपराध हो जाता है। इसने कुछ अपराध कर दिया होगा।

सीता—नहीं ! नहीं ! यह हँसना ही चाहती है।

अवदातिका—(समीप आकर) स्वामिनी की जय हो। स्वामिनी ! मैंने कोई अपराध नहीं किया है।

सीता—यह बात तुम से कौन पूछता है ? अवदातिके ! यह बायें हाथ में क्या पकड़ा हुआ है ?

अवदातिका—स्वामिनी ! यह वल्कल है ।

सीता—वल्कल किससे लायी हो ?

अवदातिका—स्वामिनी सुनें । नेपथ्यरक्षिका आर्या रेवा है । रंगशाला में प्रयोग किये जा चुके अशोक वृक्ष के एक किसलय को मैंने उससे माँगा था । और उसने नहीं दिया । उसने यह अपराध किया; अतः मैं इसको ले आयी ।

सीता—यह पाप किया है । जाओ, लौटा दो ।

अवदातिका—स्वामिनी ! इसको मैं हँसी-हँसी में ले आयी हूँ ।

व्याकरण—

हञ्जे—नाटकों में हञ्जे पद का सम्बोधन अपने से छोटी आयु की, हीन कोटि की सेविकाओं के लिए किया जाता है । कहा भी गया है—

हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति ।

परिशङ्कितवर्णा—परिशङ्कितः शङ्का योग्यः वर्णः यस्याः सा । अपराध करने पर मनुष्य का वर्ण कुछ बदल-सा जाता है ।

नेपथ्यपालिनी—रंगमंच के पीछे नेपथ्य में वेश-भूषा आदि अभिनयोपयोगी सामग्री की देखभाल करने वाली को नपथ्यपालिका कहा गया है ।

निर्यातय—दूसरे की वस्तु को बिना अनुमति के यदि लिया जावे तो उसको लौटा देने पर दोष का मार्जन हो जाता है ।

सीता—उन्मत्तिए ! एव्वं दोसो वड्ढइ । गच्छ, णिय्यादेहि, णिय्यादेहि । [उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय, निर्यातय ।]

अवदातिका—ज भट्टिणी आणवेदि । [यद् भट्टिन्याज्ञापयति] । (प्रस्थातुमिच्छति) ।

सीता—हला ! एहि दाव । [हला ! एहि तावत्] ।

अवदातिका—भट्टिणि ! एअम्हि । [भट्टिनि ! इयमस्मि] ।

सीता—हला ! किं णु हु मम वि दाव सोहदि ? [किं नु खलु ममापि तावत् शोभते ?]

अवदातिका—भट्टिणि ! सव्वं सोहणीअं सुरूवं णाम । अलङ्करोदु भट्टिणी । [भट्टिनि ! सर्वं शोभनीयं सुरूप नाम । अलङ्करोतु भट्टिनी ।]

सीता—आणेहि दाव । (गृहीत्वा अलङ्कृत्य) हला ! पेक्ख, किं दाणि सोहदि ? [आनय तावत् । हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ?]

अवदातिका—तव खु सोहदि णाम । सोवण्णिअं विअ वल्कलं संवुत्तम् । [तव खलु शोभते नाम । सौवर्णिकमिव वल्कलं सवृत्तम्] ।

सीता—हञ्जे ! तुवं किञ्चि ण भणासि ? [हञ्जे ! त्वं किञ्चिन्न भणसि ?]

चेटी—णत्थि वाआए पओअणं । इमे पहरिसिदा तणूरुहा मन्तेन्ति ।-[नास्ति वाचा प्रयोजनम् । इमानि प्रहर्षितान तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते] । (पुलकं दर्शयति)

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—अरी पगली ! इसी प्रकार दोष बढ़ता है । जाओ, वापिस कर दो, वापिस कर दो ।

अवदातिका—जैसा स्वामिनी आदेश देती हैं । (प्रस्थान करना चाहती है) ।

सीता—हला ! यहाँ आओ ।

अवदातिका—स्वामिनी ! यह मैं हूँ ।

सीता—क्या ये मुझको भी अच्छे लगेंगे ?

अवदातिका—स्वामिनी ! सुन्दर रूप पर सब कुछ सुन्दर लगता है । स्वामिनी इससे स्वयं को अलङ्कृत करें ।

सीता—तो लाओ । (लेकर और अपने को अलङ्कृत करके) हला ! देखो, क्या यह अच्छा लगता है ?

अवदातिका—आपको तो निश्चय मे अच्छा लगता है । यह वल्कल सुवर्णमय-सा हो गया है ।

सीता—हञ्जे ! तुम कुछ नहीं कह रही हो ।

चेटी—वाणी से कहने का कोई प्रयोजन नहीं है । ये खड़े हुए रोंगटे ही कह दे रहे हैं । (रोमाञ्च को दिखाती है)

टिप्पणी—

उन्मत्तिके—परिहास में यह सम्बोधन किया गया है । तेरा मन भ्रान्त हो रहा है । इसका यह अभिप्राय है । परिहास में चोरी करने पर, पुनः चोरी करने की आदत पड़ जाती है ।

सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम—यह सूक्ति है । सुन्दर शरीर पर धारण की गयी प्रत्येक वस्तु सुन्दर प्रतीत होती है । कालिदास भी अभिज्ञानशाकुन्तल' में कहते हैं—"किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्" ।

सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्—सीता के शरीर का वर्ण सुनहरा था; अतः अवदातिका कहती है कि इस कारण यह वल्कल भी सुवर्णमय-सा लग रहा है । यहाँ तद्गुण और उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ।

प्रहर्षितानि······०—यहाँ अनुमान है । आवश्यक नहीं है कि किसी बात को वाणी से ही कहा जाये ? उसको अनुमान से भी जाना जा सकता है । चेटी का अभिप्राय यह है कि वल्कल पहनने सीता के सौन्दर्य से वह इतनी प्रभावित है कि उसको रोमाञ्च हो गया है ।

सीता—हञ्जे ! आदंसअं दाव आणेहि [हञ्जे ! आदर्शं तावदनाय]।

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिणि अजं आदंसओ। [यद् भट्टिन ! आज्ञापयति। भट्टिनी। अयमादर्शः]।

सीता—(चेटी मुखं विलोक्य) चिट्ठदु दाव आदंसओ। तुवं किं वि वत्तुकामो-विअ। [तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि वक्तुकामेव]।

चेटी—भट्टिणि ! एव्वं मए सुदं। अय्य बालाई कञ्चुई भणादि अहिसेओ अहिसेओ त्ति। [भट्टिनी ! एवं मया श्रुतम्। आर्य बालाकिः कञ्चुकी भणति अभिषेकोऽभिषेक इति।

सीता—को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि। [कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति]।

चेटी—भट्टिनि ! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं। [भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम्]।

सीता—किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि ? [किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ?]

चेटी—भट्टिदारओ किल असिसिच्चीअदि। [भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते]।

सीता—अवि तादो कुसली ? [अपि तातः कुशली?]

चेटी—महाराएण एव्वं अहिसिच्चीअदि। [महाराजेनैवाभिषिच्यते]।

सीता—जइ एव्वं दुदीअं मे पिअं सुदं। विसालदरं उच्छङ्गं करेहि। [यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशालतरमुत्सङ्गं कुरु]।

चेटी—भट्टिणि ! तह। [भट्टिनि ! तथा।] (तथा करोति)

(सीता आभरणान्यवमुच्य ददाति)

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—हञ्जे ! दर्पण तो ले आओ।

चेटी—जैसे स्वामिनी आदेश देती है। (निकलकर और प्रवेश करके) स्वामिनी ! यह दर्पण है।

सीता—(चेटी के मुख को देखकर) दर्पण को तो रहने दो। तुम कुछ कहना-सी चाहती हो।

चेटी—स्वामिनी ! मैंने ऐसा सुना है। आर्य बालाकि कञ्चुकी कहते हैं—अभिषेक हो रहा है, अभिषेक हो रहा है।

सीता—कोई तो राज्य का स्वामी होगा।

चेटी—स्वामिनी ! यह प्रिय संवाद है, प्रिय संवाद है।

सीता—किसी-किसी बात को मन में रख कर कह रही हो।

चेटी—निश्चय से राजकुमार का अभिषेक हो रहा है।

सीता—क्या पिताजी कुशल से हैं।

चेटी—महाराज ही यह अभिषेक करा रहे हैं।

सीता—यदि ऐसा है, तो मैंने यह दूसरी प्रिय बात सुनी है। अपने लम्बे-चौड़े आँचल को फैला लो।

चेटी—स्वामिनी! बहुत अच्छा। (वैसा ही करती है)।

(सीता आभूषणों को उतार कर देती है)

टिप्पणी—

वक्तुकामा—चेटी को कुछ कहने की इच्छा वाला देखकर सीता दर्पण देखना भूल गयी। उसकी बात को सुनने की उत्सुकता उत्पन्न हो गयी। वक्तुं कामयते इति सा। वच् + तुमुन् = वक्तुम्।

कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति—इस वाक्य से सीता की राज्य के प्रति उदासीनता अभिव्यक्त होती है। बिभर्ति अर्थ में भृ + तृच् = भर्तृ।

प्रियाख्यानिकम्—प्रियम् आख्यानम् अस्मिन् इति प्रियाख्यानिकम्।

अपि तातः कुशली—सीता के कहने का अभिप्राय यह है कि दशरथ के जीवित रहते वे ही राजा रहेंगे। अन्य किसी के अभिषेक का प्रश्न नहीं होता। कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनको कुछ हो गया हो; क्योंकि इस प्रकार की अवस्था में ही किसी अन्य का राज्याभिषेक हो सकता है।

द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्—पहली प्रिय बात तो यह है कि राम का राज्याभिषेक हो रहा है। दशरथ ही उनका राज्याभिषेक करा रहे हैं; अतः वे सकुशल हैं। यह दूसरी प्रिय बात हुई; अतः सीता द्वारा प्रसन्न होकर दासी को इनाम देना स्वाभाविक ही है।

चेटी—भट्टिणि! पटहसद्दोविअ। [भट्टिनि! पटहशब्द इव]

सीता—स एव्व। (स एव)

चेटी—एक्कपदे ओघट्टिओ तुह्लीओ पटहसद्दो संवुत्तो। [एकपदे अवघट्टित-तूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः]

सीता—को णु खु उग्घादो अहिसेअस्स। अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम। [को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य। अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम]।

चेटी—भट्टिणि! एव्वं मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिच्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदि त्ति। [भट्टिनि! एवं मया श्रुतम्—भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति]।

सीता—जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदओ, । मुहोदअं णाम [यद्येवं न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम]।

(ततः प्रविशति रामः)

राम--हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे ।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ॥५॥

[अन्वयः---पटहे आरब्धे, गुरुजने स्थिते, भद्रासने लंघिते, घटे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये, राज्ञा आहूय मयि विसर्जिते, मे धैर्येण जनः विस्मयः। स्वः पुत्रः यदि पितुः वचः कुरुते, भोः, तत्र कः विस्मितः ॥५॥

हिन्दी रूपान्तर—

चेटी—स्वामिनी ! नगाड़े का-सा शब्द हो रहा है।

सीता—वही है।

चेटी---नगाडे का शब्द एकदम ही बन्द हो गया है।

सीता—राज्याभिषेक में कौन-सा विघ्न उपस्थित हो गया है ? अथवा राजकुलों में अनेक घटनाएँ होती रहती हैं।

चेटी—मैंने ऐसा सुना है—राजकुमार का अभिषेक करके महाराज बन को चले जायेंगे।

सीता—यदि ऐसा है, तो यह राज्याभिषेक का जल नहीं है, मुख धोने का जल है।

(तदनन्तर राम प्रवेश करते हैं)

राम—हे लोगों ! प्रसन्नता की बात है—

अर्थ [श्लोक ५]—नगाड़ों का बजाना आरम्भ कर देने पर, वशिष्ठ आदि गुरुजनों के अपने आसनों पर स्थित हो जाने पर, मेरे द्वारा सिंहासन पर आरूढ हो जाने पर, घड़ों को कन्धों तक ऊँचा ले जाकर उनका मुख झुका कर जलों के गिराये जाने पर भी राजा ने मुझको बुला कर विदा कर दिया। मेरे धैर्य को देखकर सारे लोग विस्मित हो गये। अपना पुत्र यदि पिता के वचनों का पालन करता है, तो हे लोगों ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या---पटहे एतन्नामवाद्यविशेषे आरब्धे वादनक्रियायाः प्रारभ्यमाणे सति, गुरुजने वसिष्ठादिगुरुवर्गे स्थिते अभिषेकक्रियां सम्पादयितुं स्वं स्वमासनमलङ्क्रियमाणे सति, मयि भद्रासने राजसिंहासने लंघिते समारूढे सति, घटे तीर्थानीतपुण्यसलिलसम्पूर्णे कलशे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये स्कन्धं

यावत् असंपर्यन्तं पूर्वम् उच्चारणं शिरःपर्यन्तमुपरि आनयनं, तदनन्तरं च नम्यमानम् आवर्जनीयमानं वदनं मुखभागः, तदनन्तरं तस्मात् प्रच्योति पतयमानं तोयं जलं यस्मात् तथाभूते सति, मयि रामे राज्ञा दशरथेन मम पित्रा आहूय आकार्य विसर्जिते विश्रामाय गृहं गम्यतामिति आदिष्टे सति, मे मम रामस्य धैर्येण स्थितप्रज्ञतया जनो लोको विस्मितः आश्चर्याभिभूतः सञ्जातः । स्वः निजः पुत्रः सुतः यदि पितुः जनकस्य वचः कथनं कुरुते पालयति, भोः जनाः तत्र तस्मिन् विषये कः विस्मयः आश्चर्यं वर्तते । न कोऽपि विस्मयः कर्तुं शक्यत इत्यर्थः अभिषेकार्थमुपस्थितस्य विनापि कमपि कारणमभिषेक-क्रिया निरुद्धा, तथा पि रामो न धैर्यच्युतोऽभूत् ॥५॥

. व्याकरण - आ + रभ् + क्त = आरब्ध । स्था + क्त = स्थित । स्कन्धं यावत् उच्चारणं तदनन्तरं नम्यमानं वदनं तदनन्तरं प्रच्योति तोयं यस्मात् तस्मिन् = स्कन्धोच्चारण नम्यमानवदनप्रच्योतितोये । उत् + चर् + णिच् + ल्युट् (अन) = उच्चारण । आ + हृ + क्त्वा (ल्यप्) = आहूय । धीरस्य भाव कर्म वा = धीर् + ष्यञ् = धैर्य ।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग । यहाँ "कस्तत्र भो विस्मयः" इसको हेतु द्वारा समर्पित करने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम—राजभवनों में अनेक घटनाएँ हर समय होती रहती हैं । कभी प्रसन्नता की, कभी शोक की, कभी विस्मय की; अतः कब क्या होना है, इस पर अधिक ध्यान देना उचित नहीं ।

महाराजो वनं गमिष्यति—प्राचीन आर्य-परम्परा रही थी कि वृद्ध होने पर राजा लोक राजसिंहासन पर अपने पुत्र का अभिषेक करके वानप्रस्थ संस्कार लेकर तप करने वनों में चले जाते थे । रघुकुल में भी यह परम्परा प्रचलित थी; अतः राम का राज्याभिषेक करके दशरथ का वन जाना स्वाभाविक था ।

मुखोदक नाम—श्वसुर के वन जाने की बात से सीता का मन दुःखी होता है । वह कहती है कि राज्याभिषेक मे जो जल का प्रयोग होगा, वह इस दुःख से उत्पन्न आँसुओं को धोने के काम मे आयेगा ।

"विश्रम्यतामिदानीं पुत्रेति" स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीभारोच्छ्वसितमिव मे मनः । दिष्ट्या स एव रामः, महाराज एव महाराजः । यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि ।

अवदातिका—भट्टिणि ! भट्टिदारओ खु आगच्छइ । णावणीदं वक्कलं ?
[भट्टिनि ! भर्तृदारकः खलु आगच्छति । नापनीतं वल्कलम् ?]

रामः– मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—हं अय्यउत्तो ? जेतु अय्यउत्तो । [हं आर्यपुत्रः । जयतु आर्यपुत्रः] ।

रामः—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति)

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति] (उपविशति)।

अवदातिका—भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे । [भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेशः । अलीकमिवैतद् भवेत्] ।

सीता—तादिसो जणो अलिअं न मन्तेदि । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम । [तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।]

रामः—मैथिलि ? किमिदं कथ्यते ?

हिन्दी रूपान्तर-

"पुत्र ! इस समय विश्राम करो" । इस प्रकार स्वयं राजा से विदा किया जाकर राज्य-भार से दूर हो जाने के कारण मेरा मन उच्छ्वसित-सा हो रहा है । भाग्य से मैं वही राम हूँ और महाराज भी वही महाराज हैं । तो अब सीता को देखता हूँ ।

अवदातिका—स्वामिनी ! राजकुमार निश्चय से आ रहे हैं । आपने वल्कल नहीं उतारा ।

राम—सीते ! क्या आप बैठी हैं ?

सीता—अहो ! आर्यपुत्र हैं । आर्यपुत्र की जय हो ।

राम—सीते ! आप भी बैठें । (बैठता है)

सीता—जैसे आर्यपुत्र आदेश देते हैं । (बैठती है)

अवदातिका—स्वामिनी ! राजकुमार का वही वेश है । यह बात असत्य ही होगी ।

सीता—उस प्रकार के लोग असत्य नहीं कहते । अथवा राजकुलों में अनेक घटनाएँ होती रहती हैं ।

राम—सीते ! यह क्या कहती है ।

टिप्पणी—

अपनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः—राम को राज्य की आकांक्षा नहीं थी और वे उसको भार ही समझते थे । राज्य का भार अब नहीं रहा, इससे उनके मन को शान्ति प्राप्त हुई । उत्+श्वस्+क्त (इट् का आगम)=उच्छ्वसितम् ।

नापनीतं वल्कलम्—पति के आने पर पत्नी को सुन्दर शृङ्गार से विभूषित रहना चाहिये । राम के आने पर भी सीता को वल्कल न उतारते देखकर अवदातिका विकल होती है । अप+नी+क्त=अपनीत ।

स एष भर्तृ बारकस्य वेषः—राम को राजकीय वेश से रहित सामन्य वेश में देखकर अवदातिका को शङ्का होती है कि कहीं राज्याभिषेक का समाचार असत्य तो नहीं था।

सीता—ण खु किञ्चि। इअं दारिआ भणादि–अहिसेओ अहिसेओत्ति। [न खलु किञ्चित्। इयं दारिका भणति––अभिषेकोऽभिषेक इति]।

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम्। अस्त्यभिषेकः। श्रूयताम्। अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसल-राज्य कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य "पुत्र! राम! प्रतिगृह्यतां राज्यम्" इत्युक्तः।

सीता—तदाणिं अय्यउत्तेण किं भणिदं? [तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम्]

राम—मैथिलि! त्वं तावत् किं तर्कयसि?

सीता—तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चिदिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स पादमूलेसु पडिअं त्ति। [तर्कयामि आर्यपुत्रेणाभवित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति।]

रामः—सुष्ठु तर्कितम्। अल्प तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। तत्र हि पादयोरस्मि पतितः।

(6) समं वाष्पेण पतता तस्योपरि समाप्यधः।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥६॥

[अन्वयः––समम् उपरि पतता तस्य वाष्पेण मम शिरः क्लेदितम्। अध पतता मम अपि वाष्पेण मे पितुः पादौ क्लेदितौ ॥६॥]

हिन्दी रूपान्तर––

सीता––कोई बात नहीं है। यह लड़की—"अभिषेक-अभिषेक", इस प्रकार कह रही है।

राम—तुम्हारे कौतूहल की बात को समझ रहा हूँ। अभिषेक की बात तो है––सुनो। आज महाराज ने उपाध्यायों, अमात्यों और प्रजाजनों के सामने ही, मानो एक प्रकार से कोसल राज्य को संक्षेप से एकत्रित करके, बचपन से अभ्यस्त गोदी में बिठा कर, मुझको माता के नाम (कौशल्यापुत्र) से स्नेह से पुकार कर कहा––"हे पुत्र राम! राज्य को स्वीकार कर लो।"

सीता––तब आर्यपुत्र ने क्या कहा?

राम––सीते! तो तुम क्या समझती हो?

सीता--मैं समझती हूँ कि आर्यपुत्र कुछ भी न कहकर, लम्बा प्रवास छोड़कर महाराज के चरणों में गिर गये।

राम--तुमने ठीक समझा। विधाता समान स्वभाव वाले युगलों को कम ही बनाता है। मैं निश्चय ही उनके चरणों में गिर गया।

अर्थ [श्लोक ६]-एक साथ ऊपर गिरते हुए उन पिता के आँसुओं ने मेरे सिर को भिगो दिया। नीचे गिरते हुए मेरे भी आँसुओं ने मेरे पिता के चरणों को भिगो दिया ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या--समं तुल्यकालमेव उपरि ऊर्ध्वप्रदेशे शिरोभागे पतता प्रवहता तस्य महाराजस्य मे जनकस्य बाष्पेण अश्रुधारया मम मे रामस्य शिरः उत्तमाङ्गं क्लेदितम् आर्द्रतां नीतम्। अधः अधोभागे नम्रीभूतशिरस्कतया पतता प्रवहता मम अपि बाष्पेण अश्रुधारया मे पितुः जनकस्य पादौ चरणौ क्लेदितौ आर्द्रतां नीतौ ॥६॥

व्याकरण--पत् + शतृ = पतत्। तृतीया का एकवचन = पतता। क्लिद् + णिच् + क्त = क्लेदित।

छन्द--अनुष्टुप्।

अलङ्कार--स्वाभावोक्ति अलङ्कार। पिता-पुत्र के स्नेह श्रद्धा की स्वाभाविक अवस्था प्रदर्शित करने से स्वाभावोक्ति अलङ्कार है।

इयं दारिका भणति'''--चेटि का कथन करके सीता अपने मन की उत्सुकता को प्रकट करती है और राज्याभिषेक के सम्बन्ध में जानना चाहती है।

अवगच्छामि ते'''--राम सीता की उत्सुकता को समझकर सारा वृत्तान्त वर्णन करते हैं।

अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते--संसार में देखा जाता है कि समान स्वभाव वाले पति-पत्नी का युगल कम ही होता है। कवियों ने विधाता पर इस प्रकार का आक्षेप प्रायः लगाया है। इसका अभिप्राय है कि कम ही कवियों का गृहस्थ जीवन सुखी होगा।

तुल्यं शीलं यस्य तत् तुल्यशीलम्।

सीता—तदो तदो ? [ततस्ततः।]

रामः--ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

सीता—तदो तदो [ततस्ततः।]

रामः—ततस्तदानीम —

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥७॥

[अन्वयः—अभिषेके शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे, च रुदता नृपतिना स्वयं छत्र गृहीते, सम्भ्रान्तया मन्थरया राज्ञः कर्णे किमपि शनैः अभिहितम्। राजा च न अस्मि ॥७॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—उसके बाद।

राम—तब राजा ने मेरे अनुनय को अस्वीकार कर दिया। उनके प्राणों में बुढ़ापे का दोष उत्पन्न हो गया था और उन्होने उसकी मुझको शपथ दिलायी।

सीता—तब क्या हुआ!

राम—उसके बाद तब—

अर्थ [श्लोक ७]—अभिषेक के अवसर पर शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने अभिषेक के घट को ले लिया और रोते हुए राजा ने स्वय छत्र को पकड़ लिया। उस समय घबरायी हुई मन्थरा ने राजा के कान में कुछ धीरे से कहा और मैं राजा नहीं हुआ ॥७॥

संस्कृत व्याख्या—अभिषेके राज्याभिषेकावसरे शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे शत्रुघ्नेन लक्ष्मणेन च द्वाभ्यामेव भ्रातृभ्यां गृहीतः आहृतः घटः तीर्थजलसम्भृतोऽभिषेकघटः यत्र तस्मिन् काले, रुदता आनन्दाश्रूणि विमुञ्चता नृपतिना राज्ञा दशरथेन स्वयमात्मनैव छत्रे राजचिह्नसूचकातपत्रे गृहीते सति, सम्भ्रान्तया कैकेय्याः ऐकिकया राज्ञः भूपालस्य कर्णे श्रोत्रे किमपि अनिवचनीयं शनैः मन्दस्वरेण अभिहितं कथितम्। राजा च न अस्मि. तदनन्तरमहं राजपदं न अलं चकार ॥७॥

व्याकरण—लक्ष्मणेन शत्रुघ्नेन च गृहीतः घटः यस्मिन् अवसरे तथाभूते सति। अभि + सिच् + घञ् = अभिषेक। सम् + भ्रम + क्त = सम्भ्रान्त। अभि + धा + क्त = अभिहित।

छन्द—वसन्ततिलका।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग। "काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता"। जहाँ अनुपपन्न कार्य के लिए वाक्यार्थ या पदार्थ को हेतुरूप में कहा जावे, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। यहाँ राम के राजा न होने का हेतु, मन्थरा द्वारा राजा के कान में कुछ कहना, यह वाक्यार्थ है; अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

अप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु—पिता के रहते हुए राम राजा होना नहीं चाहते थे; अतः वे बार-बार प्रार्थना करते रहे। वृद्ध होने के कारण दशरथ राज्यभार नहीं

सँभाल पाते थे; अतः उन्होंने राम को अपने प्राणों की शपथ दी और राज्यभार ग्रहण करने का अनुरोध किया। न + प्रति + ग्रह् + क्यप् + शानच् = अप्रतिगृह्यमाण। अनु + नी + अच् = अनुनय।

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे—रामायण की कथा के अनुसार दशरथ जब राम के राज्याभिषेक की तैयारी कर रहे थे, तो भरत के साथ शत्रुघ्न भी उनका ननिहाल गये थे। अयोध्या में वे उपस्थित नहीं थे। केवल लक्ष्मण ही थे। भास ने यहाँ राम के राज्याभिषेक की तैयारी के समय शत्रुघ्न और लक्ष्मण की उपस्थिति दिखायी है। इस प्रकार कवि ने यहाँ रामायण की कथा में कुछ परिवर्तन किया है।

सीता—पिअं मे। महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो।
[प्रियं मे। महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एव आर्यपुत्रः।]

रामः—मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि?

सीता—ण खु दाव आवज्झामि। [न खलु तावदावध्नामि।]

रामः—न खलु। प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथाहि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत्॥८॥

[**अन्वयः**—त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ कर्णौ संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ, गात्रे एतानि च आभरणभारनतानि स्थानानि तावत् समताम् न एव उपयान्ति॥८॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—मेरे लिए यह प्रिय बात है। महाराज ही महाराज रहें और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहें।

राम—सीते! तुमने अलङ्कार क्यों छोड़ दिये?

सीता—नहीं, उनको तो मैं पहनती हूँ।

राम—निश्चय से ऐसा नहीं है। आभूषणों को अभी ही उतारा होगा। क्योंकि—

अर्थ [श्लोक ८]—शीघ्रता से आभूषणों को उतारने के कारण कानों के छेद (पाश) अभी झुके हुए हैं। हाथों की हथेलियाँ तुरन्त ही कंगन आदि आभूषण उतारने के कारण अभी गौर वर्ण की हैं। उनकी स्वाभाविक लालिमा नहीं आयी है और शरीर पर ये आभूषणों के भार से झुके हुए स्थान अभी तक तो स्वाभाविक समदशा को प्राप्त नहीं हुए हैं॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—त्वरापहृभूतषणभुग्नपाशौ त्वरया शीघ्रतया अपहृतानि

अपनीतानि भूषणानि अलङ्काराः ययोः तथाभूतौ अतएव भुग्नौ वक्रीभूतौ पाशौ भूषणाधारभूतौ कर्णछिद्रप्रदेशौ ययोः तादृशौ कर्णौ श्रोत्रौ वर्तते । संस्रंसिताभरणगौरतलौ संस्रंसितानि दूरीकृतानि आभरणानि कटकाद्यलङ्काराणि ययोः तथाभूतौ, अतएव गौरौ पाण्डुरौ रक्तिमाविहीनौ तलौ ययोः तथाभूतौ हस्तौ करौ वर्तते । गात्रे शरीरे एतानि इमानि च आभरणभारनतानि आभरणानां भूषणानां धारेण नतानि निम्नीभूतानि स्थानानि अलङ्कारधारणयोग्यस्थानानि तावत् अधुना अपि समतां पूर्ववद् समावस्थात्वं न एव उपयान्ति प्राप्नुवन्ति ॥८॥

व्याकरण—त्वरया अपहृतानि भूषणानि ययोः तथाभूतौ अतः भुग्नौ पाशौ ययोः तादृशौ=त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ । भुज्+क्त=भुग्न । संस्रंसितानि आभरणानि ययोः तथाभूतौ अतः गौरौ तलौ ययोः तादृशौ=संस्रंसिताभरणगौरतलौ । सम्+स्रंस्+णिच्+क्त=संस्रंसित । आभरणानां भारेण नतानि=आभरणभारनतानि । आ+भृ+ल्युट् (अन)=आभरण । सम्+तल्+टाप्=समता ।

छन्द—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—स्वभावोक्ति । तत्काल ही आभूषण उतारने के बाद शरीर की जो अवस्था होती है । उसका स्वाभाविक वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है । कानों में आभूषण पहनने से उनके छेद नीचे को झुक जाते हैं । सीता ने तत्काल ही ये आभूषण उतारे हैं; अतः अभी भी ये झुक हैं । हथेलियों से कंगन आदि उतारने पर उस समय वे सफेद पड़ जाती हैं और स्वाभाविक लालिमा आने में समय लगता है । हथेलियाँ अभी भी सफेद पड़ी हैं । आभूषण पहनने से उन अङ्गों पर गहरा चिह्न पड़ जाता है, जो सीता के अभी भी हैं; अतः सीता ने तत्काल ही आभूषण उतारे हैं । यदि देर से उतारे होते तो शरीर के ये सभी अङ्ग पूर्व की स्वाभाविक सम अवस्था में आ जाते ।

सीता—पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं । [पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।]

रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम् । अहमादर्शं धारयिष्ये । (तथाकृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ—

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ॥९॥

[अन्वयः—आदर्शे वल्कलानि इव । किम् एते सूर्यरश्मयः ? हसितेन परिज्ञातम् । इयं क्रीडा नियमस्पृहा (वा) ? ॥९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र असत्य को भी सत्य के समान कहने में समर्थ हैं ।

राम—तो फिर अलङ्कार धारण कर लो। मैं दर्पण को पकड़ लूँगा। (वैसा करके और देखकर) ठहरो —

अर्थ [श्लोक ९] —दर्पण में यह वल्कलों के समान-सा है। क्या ये सूर्य की किरणें हैं। तुम्हारी हँसी से मैंने पहचान लिया है कि ये वल्कल हैं। यह तुमने खेल-खेल में किया है अथवा तप के नियमों का पालन करने की इच्छा है? ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—आदर्शे दर्पणे वल्कलानि तापसवस्त्राणि इव दृश्यन्ते। किम् एते इमे सूर्यरश्मयः सूर्यस्य भास्करस्य रश्मयः किरणानि सन्ति? हसितेन तव हसनेन मया परिज्ञातम् अवगतम्। वल्कलान्येव सन्तीमानि। ततः कथय-इयं ते क्रियाक्रीडा परिहासखेलनं वर्तते नियमस्पृहा नियमेषु तापसजनव्रतपालनेषु स्पृहा अभिलाषा वा वर्तते। कथय किं त्वया परिहासे नैव वल्कलवसनानि धारितानि अथवा तापसजनव्रत-पालनाभिलाषिणी वर्तसे? ॥९॥

व्याकरण—सूर्यस्य रश्मयः=सूर्यरश्मयः। हस् + क्त (इट् का आगम)= हसित। परि + ज्ञा + क्त = परिहसित।

छन्द—अनुष्टुप।

अवदातिके! किमेतत्।

अवदातिका—भट्टा! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आबज्झा। [भर्तः! "किन्नु खलु शोभते न शोभते" इति कौतूहलेनाबद्धानि।]

रामः—मैथिलि! किमिदम्? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते। अस्त्यस्माकं प्रीतिः। आनय।

सीता—मा खु मा खु अय्यउत्तो अमङ्गलं भणादु। [मा खलु मा खलु आर्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु।]

रामः—मैथिलि! किमर्थं वारयसि?

सीता—उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि। [उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति।]

रामः—

मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥१०॥

[अन्वयः—विशेषतः परिहासे स्वयं मन्युम् उत्पाद्य मा, हि यदा त्वया मे शरीरार्धेन पूर्वम् आबद्धाः ॥१०॥]

हिन्दी रूपान्तर—

अवदातिके! यह क्या है?

अवदातिका—स्वामिन्! "क्या मुझको, ये अच्छे लगेंगे या अच्छे नहीं

लगेंगे", इस कौतूहल से इन्होंने इन्हें पहन लिया (अर्थात् सीता की तप की इच्छा नहीं है)।

राम—सीते ! यह क्या बात है ? वृद्धों के अलङ्कार को तुम क्यों धारण कर रही हो ? इनके प्रति हमारा भी प्रेम हो रहा है। लाओ।

सीता—नहीं, नहीं। आर्यपुत्र अमङ्गल की बात न कहें।

राम—सीते ! तुम किसलिए रोकती हो ?

सीता—आर्यपुत्र ने अभी ही राज्याभिषेक को छोड़ दिया है; अतः मुझको अमङ्गल-सा प्रतीत होता है।

राम—

अर्थ श्लोक १०]–विशेष रूप से जबकि में परिहास में वल्कल माँग रहा हूँ, तो स्वय दुःख को उत्पन्न करने से बस करो; क्योंकि जबकि तुमने मेरे शरीर क आधे भाग स अपने आप पहले ही इन वल्कलों को बांध लिया है। तुम मेरे शरीर की आधा भाग हो। तुमने जब इनको पहन लिया है, तो मैंने भी पहन लिया है ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—विशेषत: विशेषरूपेण परिहासे विनोदार्थं मयि वल्कलयाच ने स्वयम् आत्मनैव मन्युं शोकम् उत्पाद्य विधाय मा अलम्। विनोदवचस्येव मया वल्कलानि याचितानि। अतः मा शोकं कुरु। हि यतः यदा त्वया सतिया मे शरीरार्धेन वपुषोऽर्ध-भागेन सह पत्न्याः देहार्धतया पूर्वं प्रथममेव विवाहसंस्कारसमये मम शरीरस्यार्धमा-गंगतया आबद्धाः इमे परिधापिताः ॥१०॥

व्याकरण–मन् + युच् = मन्यु। उत् + पद् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्) = उत्पाद्य। आ + बध् + क्त = आबद्ध।

इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारः—प्राचीन साहित्य और इतिहास में प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकुवंशी राजा वृद्धावस्था मे पुत्रों को राज्य देकर बल्कलवस्त्र पहनकर तपोवनों को चले जाते थे; अतः कवि ने वल्कलों को इक्ष्वाकुओं का वृद्धालङ्कार कहा है।

अमङ्गलं भणतु – वल्कल विरक्त होकर तपोवनो मे जान के लिए पहन जाते हैं; अतः युवावस्था मे इनका पहनना अमङ्गल ही है।

(नेपथ्य)

हा हा महाराजः।

सीता—अय्यउत्त ! किं एदं ? [आर्यपुत्र ! किमेतत् ?]

रामः—(आकर्ण्य)

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥११॥

[अन्वयः—यदा नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादः ध्वनिः, सुव्यक्तं प्रभवामि, दैवेन मूले ताडितम् इति ॥११॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(नेपथ्ये)

हाय, हाय महाराज !

सीता—आर्यपुत्र ! यह क्या ?

राम—(सुनकर)—

अर्थ [श्लोक ११]—जबकि स्त्रियों और पुरुषों का बहुत जोरों का शोर हो रहा है, तो स्पष्ट रूप से समझ रहा हूँ कि विधि ने जड़ पर प्रहार किया है ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—यदा यस्मिन्नेव काले नारीणां स्त्रीणां पुरुषाणां मनुष्याणां च निर्मर्यादः मर्यादां सीमामतिक्रम्य वर्तमानः ध्वनिः कोलाहलः समुत्तिष्ठति, सुव्यक्तम् अतिस्पष्टरूपेण प्रभवामि सम्भावयामि, यत् दैवेन विधिना मूले कुलस्य मूलभूते प्रधान पुरुषे महाराजे ताडितम् प्रहृतम् ॥११॥

व्याकरण—मर्यादामतिक्रान्तः = निर्मर्यादः । सु + वि + अञ्ज् + क्त = सुव्यक्तः । यस्मिन् काले अर्थ में = यत् + दा = यदा ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा । मूल पर दैव ने प्रहर किया है, इस सम्भावना के कारण शीघ्र ही इस कोलाहल का कारण ज्ञात करो ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

कञ्चुकीयः—महाराजः ।

रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ?

कञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

रामः—स्वजनादिति । हन्त ! नास्ति प्रतिकारः—

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ॥१२॥

[अन्वयः—अरिः शरीरे प्रहरति तथा स्वजनः हृदये । कस्यस्वजनशब्दः, मे लज्जाम् उत्पादयिष्यति ॥१२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

कञ्चुकीय—कुमार रक्षा करें, रक्षा करें ?

राम—आर्य ! किसकी रक्षा करनी है ?

कञ्चुकीय—महाराज की ।

राम— महाराज की ! आर्य तब तो निश्चय से यह कहना चाहिए कि एक शरीर में सिमट कर स्थित हुई पृथिवी की रक्षा करनी है । तो यह दोष कहाँ से उत्पन्न हुआ है ?

कञ्चुकीय—आत्मीयजन से ।

राम—आत्मीयजन से ! खेद है कि इसका प्रतिकार नहीं है ।

अर्थ [श्लोक १२]—शत्रु शरीर पर प्रहार करता है और आत्मीयजन हृदय पर प्रहार करता है; अतः आत्मीयजन का प्रहार अधिक कष्टदायक है । किसको आत्मीयजन पद से कहा जावे । वह मेरे में लज्जा को ही उत्पन्न करेगा । जो आत्मीयजन हृदय पर प्रहार करे, उसको स्वजन कहते हुए मनुष्य लज्जा का ही अनुभव करेगा ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—अरिः शत्रुः शरीरे वपुषि प्रहरति ताडयति । तथा स्वजनः आत्मीयः हृदये अन्तर्मर्मणि प्रहरति । कस्य तथाभूतस्य जनस्य स्वजनशब्दः आत्मीयजन इति पदवाच्यः । अयं तु मे मम मनसि लज्जां त्रपाम् उत्पादयिष्यति जनयिष्यति । हृदये प्रहरन् स्वजनः शरीरं प्रहर्तुः अरेरपि दुःखदायकः । एतादृशो जनः स्वजनपदवाच्यः सन् मनसि लज्जामुत्पादयति ॥१२॥

व्याकरण—ऋ + इन् = अरि । हृ + कयन् (दुक् का आगम) हृदय । लज्ज् + अ + टाप् = लज्जा ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

मूले दंवेन ताडितम्—राज्याभिषेक के रुक जाने से राम को पहले से ही पिता के अमङ्गल के प्रति आशङ्का हो रही थी । महाराज की विपत्ति का घोर सुनकर उनको निश्चय हो गया कि उन पर कोई गहरा संकट आ गया है । वंश का मूल पिता ही होता है । विधाता ने उन पर प्रहार किया है ।

हन्त नास्ति प्रतिकारः—मनुष्य शत्रु का तो मुकाबला कर सकता है; क्योंकि वह उससे सावधान रहता है । शत्रु है तो वह अवसर पाकर प्रहार करेगा ही, परन्तु आत्मीयजन का प्रहार जैसे अन्तःकरण और हृदय पर चोट करता है; किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर मनुष्य उसका प्रतिकार कठिनाई से ही कर सकता है ।

कञ्चुकीयः—तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।

रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

कञ्चुकीयः--कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्--

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ।।१३।।

[**अन्वयः**—यस्याः भर्ता शक्रसमः, या च मया पुत्रवती, तस्याः, कस्मिन् फले स्पृहा, येन अकार्यं करिष्यति ।।१।।]

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकीय--आदरणीया कैकेयी से महाराज की रक्षा करनी है ।

राम--क्या माता से ! तो इसमें निश्चय से कोई लाभकारी परिणाम होना चाहिये ।

कञ्चुकीय--किस प्रकार ?

राम--सुनो--

अर्थ [श्लोक १३]--जिस माता कैकेयी का पति इन्द्र के समान परमैश्वर्य-शाली है और जो मेरे से पुत्रवती है अर्थात् मैं जिसका पुत्र हूँ, उसकी और किस फल के प्रति अभिलाषा होगी, जो इस बुरे कार्य को करेगी ।। ७।।

संस्कृत व्याख्या--यस्याः कैकेय्याः भर्ता-पतिः 'राजा दशरथः शक्रसमः शक्रेण इन्द्रेण समः परमैश्वर्यशाली पराक्रमी वर्तते' या च मया रामेण सर्वगुण सम्पन्नेन पुत्रवती ससन्तनारामसदृशः 'यस्याः पुत्रो वर्तते इत्यर्थः, तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा अभिलाषा वर्तते । लोके सर्वाण्येव काम्यमानानि वस्तूनि फलानि वा तदधीनानि वर्तन्ते । येन हेतुना सा अकार्यं पतिव्यसनरूपं कुत्सित कर्म करिष्यति सम्पादयिष्यति ? अत. केनापि महता कारणेनात्र भवितव्यम् ।।१३।।

व्याकरण--शक्रेणसमः शक्रसमः । पुत्रः अस्या अस्ति अर्थ में पुत्र + मतुप् + ङीप् = पुत्रवती ।

छन्दः--अनुष्टुप् ।

कञ्चुकीयः—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम् । तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः ।

रामः--आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।

कञ्चुकीयः--कथमिव ?

रामः--श्रूयताम्--

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।

नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्काप्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥१४॥

[अन्वयः—तावत् पार्थिवस्य एव वनगमननिर्वृत्तिः, मम पितृपरवत्ता, स एव बालभावः, नवनृपतिविमर्शे प्रजानां शङ्का न अस्ति। अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः ॥१४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकीय—कुमार! विनष्ट अर्थात् स्वभाव से कुटिल बुद्धि वाली स्त्रियों की बुद्धियों के प्रति अपनी सरलता न दिखावें। निश्चय से उसके ही कहने से आपका राज्याभिषेक रुक गया था।

राम—आर्य! इसमें तो निश्चय से अच्छाइयाँ हैं।

कञ्चुकीय—वह कैसे?

राम—सुनो—

अर्थ [श्लोक १४]—पहले तो राजा का ही वन के लिए जाना रुक जायेगा। मैं उसी प्रकार पिता के आधीन रहूँगा और मेरा वही बचपन बना रहेगा। नये राजा के कार्यों का चिन्तन करने में प्रजाजनों को कोई शङ्का नहीं रहेगी और मेरे भाई राज्य के भोगों से वञ्चित नहीं होंगे ॥१४॥

संस्कृत व्याख्या—तावत् प्रथमं तावत् पार्थिवस्य राज्ञः दशरथस्य एव वनगमननिवृत्तिः वने अरण्ये गमनात् प्रस्थानात् निवृत्तिः निरोधः। मम राज्याभिषेके सति राज्ञः दशरथस्य तपोवनगमनं निश्चितमेवासीत्। तदाभावे च सः न गमिष्यति तत्र। मम रामस्य पितृपरवत्ता पितुः अधीनतायां वर्तमानत्वम्। अहं पितुः छत्रच्छायां सुखेन निवत्स्यामि। स एव अद्यतनविद्यमानः बालभावः बाल्यावस्थानन्दः। नवनृपतिविमर्शे नवस्य नूतनस्य नृपतेः राज्ञः शासकस्य विमर्शे राजाय प्रजाहितकारी भविष्यति न वेति चिन्तने प्रजानां लोकानां शङ्का विचिकित्सा न अस्ति वर्तते। अथ च मे भ्रातरः भरतादयः परिभोगैः राज्यभोगसुखैः न वञ्चिताः न विरहिताः भविष्यन्ति। पितुः राज्ये ते समानरूपेण राज्यसुखभोगान् भोक्ष्यन्ते ॥१४॥

व्याकरण—वने गमनाद् निवृत्तिः=वनगमननिवृत्तिः। नि+वृत्+क्तिन्=निवृत्ति। पृथिव्याः स्वामी अर्थ में—पृथिवी+अण्=पार्थिव। पितुः परवत्ता=पितृपरवत्ता। पर+मतुप्+तल्+टाप्=परवत्ता। नवस्य नृपतेः विमर्शे=नवनृपत्तिविमर्शे। वि+मृश्+अच्=विमर्श। भ्राज्+तृन्=भ्रातृ।

छन्दः—मालिनी।

अलङ्कार—समुच्चय। कार्य की सिद्धि के लिए एक कारण पर्याप्त होने पर भी अनेक कारणों का उल्लेख करने पर समुच्चय अलंकार होता है। यहाँ राज्याभिषेक का रुक जाना रूप कार्य के गुणशाली होने के अनेक कारणों का वर्णन किया गया है—(१) राजा दशरथ का वन न जाना, (२) स्वयं राम का पिता के

अधीन रहकर निश्चिन्त रहना, (३) बचपन के सुख का बना रहना, (४) नया राजा प्रजा को सुख देने वाला होगा या नहीं, प्रजा का इसके लिए चिन्तित होना, (५) भाइयों का राजभोगों से वञ्चित न होना।

हन्त नास्ति प्रतिकारः—शत्रु तो शत्रु ही है, वह प्रहार करेगा ही; अतः मनुष्य उसके प्रतिकार का उपाय किये रहता है, परन्तु आत्मीयजन के विश्वस्त होने से उसके प्रति सावधान न रहने के कारण उसके प्रहार का उपाय करना कठिन होता है।

उत्कर्षेण गुणेनात्र भवितव्यम्—कैकेयी को कौन-सी वस्तु प्राप्त नहीं है। उसके पति दशरथ इन्द्र के समान पराक्रमी तथा ऐश्वर्यशाली हैं। मैं उनका पुत्र हूँ हम दोनों से उसको सभी सांसारिक पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं; अतः मेरे राज्याभिषेक को रोक देने में उसको इससे भी महान् कोई अन्य फल मिलने वाला होगा।

उपहतासु स्त्रीबुद्धिषु—भास का मत है कि स्त्रियों की बुद्धि कुटिल और उल्टी होती है, अतः उनके प्रति सरलता का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

गुणाः खल्वत्र—राम को राज्य का तनिक भी लोभ नहीं है। राज्य न मिलने में भी वे अनेक लाभ देखते हैं।

कञ्चुकीय—अथ च तथाऽनाहूतयोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम्। आत्राऽप्यलोभः?

रामः—आर्य! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते। कुतः—

शुल्के विपणितं राज्यंपुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्य लोभोऽत्रनाऽस्माकं भ्रातृराज्यापहारिणम् ॥१५॥

[अन्वयः—शुल्के विपणितं राज्यं यदि पुत्रार्थे याच्यते, अत्र तस्य लोभः न, भ्रातृराज्यापहारिणाम् अस्माकम् (लोभः) ॥१५)]

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकीय—और इसके बाद बिना बुलाये हुए उसने आकर यह कहा कि भरत का राज्याभिषेक कर दो। क्या यह लोभ नहीं है?

राम—आर्य! निश्चय से आप हमारे प्रति पक्षपात के कारण ही वास्तविक बात को नहीं देख रहे हैं। क्योंकि—

अर्थ श्लोक १५—विवाह के शुल्क रूप में शर्त रूप में स्वीकृत राज्य को यदि पुत्र के लिए माँगा गया है, तो इसमें उसका लोभ नहीं है, परन्तु भाई के राज्य का अपहरण करने वाले हमारा ही लोभ है ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या शुल्के विवाहसमये कन्यादेयशुल्करूपे विपणितं पणरूपेण स्वीकृतं राज्यमिदं कोसलदेशराज्यं यदि पुत्रार्थे भरताय सुताय तथा कैकेय्या याच्यते

प्रार्थ्यंते, तदा अत्र अस्मिन् विषये तस्य कैकेयीकृतपक्षस्य लोभः परद्रव्याभिलाषा न वर्तते, अपि भ्रातृराज्यापहारिणां भ्रातुः भरतस्य राज्यस्य अपहारमपहरणं कुर्वन्ति इति तथाभूतानामस्माकमेवलोभः । कैकेय्याः विवाहसमये राज्ञा पणोऽयं स्वीकृतः -- "योऽस्याः पुत्रो भवेत स एव राज्यमधिकुर्यात्" । अतः कैकेय्या पुत्राय भरताय राजस्य याचना समुचितैव ॥१५॥

व्याकरण—वि + पण् + णिच् + क्त = विपणित । भ्रातुः राज्यम् अपहर्तुं शीलं येषां तेषाम् = भ्रातृराज्यापहारिणाम् ।

छन्द—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—काव्यलिंग । हमको राज्य का लोभ नहीं है, इस कथन का समर्थन पहले वाक्य मे किया जाने मे काव्यलिंग अलङ्कार है ।

कञ्चुकीयः—अथ ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि । महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम् ।

कञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्—

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः ।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥१६॥

[अन्वयः—शोकात् अवचनात् राज्ञा हस्तेन एव विसर्जितः । मन्ये किमपि अभिहितम् । नृपतिः च मोहं गतः ॥१६॥

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकीय—और क्या ?

राम—इससे अधिक मैं माता की निन्दा नहीं सुनना चाहता । तो महाराज के वृतान्त को कहो ।

कञ्चुकीय—उसके बाद तब—

[अर्थ श्लोक १६]- शोक के कारण बिना कुछ बोले ही राजा ने हाथ के इशारे से मुझको भेज दिया । मैं समझता हूँ कि उनको कुछ कहना इष्ट था और राजा मूर्छित हो गये ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—शोकात् कैकेयीयाचनाजनितदुःखाद् अवचनात् किमपि अनुक्त्वैव राज्ञा नृपतिना दशरथेन हस्तेन करांकेतेन एव विसर्जितः अहमत्र प्रेषितः । मन्ये अहमेतत् सम्भावयामि, राज्ञः किमपि अभिमतं कथयितुमिष्टमासीत् । परं सः नृपतिः राजा मोहं गतः मूर्छितो बभूव । सः किमपि कथयितुमिच्छुक आसीत । पर मूर्छितत्वात् किमपि कथयितुं न शशाक ॥१६॥

व्याकरण—वि + सृज् + णिच् + क्त = विसर्जित । अभि + मन् + क्त = अभिमत । नृणां पतिः = नृपतिः ।

छन्द—अनुष्टुप् ।

अस्मत्पक्षपातादेव न्यायमवेक्षते—राम को राज्य का कुछ भी लोभ नहीं है। कैकेयी को राज्य का लोभी कहने पर वे अपना ही दोष देखते हैं ।

शुल्के विपणितं राज्यम्—कथा प्रसिद्ध है कि जब दशरथ ने कैकेयी से विवाह किया था तो यह शर्त स्वीकार की थी कि कैकेयी से जो पुत्र होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा । राम उस शर्त का स्मरण कराते हैं ।

न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि—कैकेयी के प्रति राम का अत्यधिक आदर था । राज्य से वञ्चित होने पर भी वे उसकी निन्दा नहीं सुन सकते ।

रामः—कथं मोहमुपगतः ?

(नेपथ्ये)

कथं कथं मोहमुपगत इति ?

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया

रामः—(आकर्ण्य पुरतो विलोक्य)

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥१७॥

[**अन्वय**—अक्षोभ्यः धैर्यसागरः लक्ष्मणः केन क्षोभितः । येन रुष्टेन अग्रतः शताकीर्णम् इव पश्यामि ॥१७॥]

राम—क्यों मूर्छित हो गये हैं ?

(नेपथ्य में)

क्यों, क्यों मूर्छित हो गये हैं ?

यदि राजा की मूर्छा को सहन नहीं कर सकते, तो धनुष को उठाइये, दया मत कीजिये ।

राम—(सुनकर और सामने देखकर)—

अर्थ [श्लोक १७]—क्षुब्ध न होने अर्थात् सदा शान्त रहने वाले धैर्य के सागररूप लक्ष्मण को किसने क्षुब्ध कर दिया है । जिस लक्ष्मण के कुपित होने से मैं अपने सामने के प्रदेश को सैंकड़ों लोगों से भरा हुआ-सा देख रहा हूँ ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—अक्षोभ्यः क्षोभयितुं कोपयितुमशक्यः धैर्यसागरः धैर्यस्य गाम्भीर्यस्य सागरः जलनिधिरूपः लक्ष्मणः सौमित्रिः मे भ्राता केन जनेन कारणेन वा क्षोभितः कोपावस्थां प्रापितः । येन लक्ष्मणेन रुष्टेन कुपितेन सता अहम् अग्रतः

सम्मुखीनां भूमि शताकीर्णं शतेन जनशतेन आकीर्णं सम्बाधम् इव पश्यामि अवलोकयामि । केनापि कारणेन कुपितोऽयं लक्ष्मण सम्मुखं प्रदेशं प्रविशन् जनशतसम्बाधमिव प्रतिभाति ॥१७॥

व्याकरण—न + क्षुभ् + णिच् + यत् = अक्षोभ्य । रुष् + क्त = रुष्ट । आ + कृ + क्त = आकीर्णं ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—रूपक और विरोधाभास । लक्ष्मण इस उपमेय पर सागर रूप उपमान का आरोप होने से यहाँ रूपक अलङ्कार है । क्षुब्ध न होने का सामर्थ्य होने पर भी क्षुब्ध कर दिया, इसमें विरोधाभास अलङ्कार है ।

(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—(सक्रोधम्) कथं कथं मोहमुपगत इति—

(18) यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥१८॥

[अन्वयः—यदि राज्ञः मोहं न सहसे, धनुः स्पृश । दया मा । स्वजननिभृतः सर्वः अपि मृदुः एवं परिभूयते । अथ रुचितं न, त्वं मां मुञ्च । अहं लोकं युवतिरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः । यतः वयं छलिताः ॥१८॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर धनुष और बाण को हाथ में लिये लक्ष्मण प्रवेश करता है)

लक्ष्मण—(क्रोध से) क्यों, क्यों मूर्च्छित हो गये हैं ?

अर्थ [श्लोक १८]—यदि राजा की मूर्छा सहन नहीं कर सकते, तो धनुष को उठाइये । दया मत कीजिये । आत्मीय जन के प्रति अपराध के होने पर चुप रह जाने वाले सभी कोमल स्वभाव के व्यक्ति तिरस्कृत (अपमानित) किये जाते हैं । यदि यह बात आपको रुचिकर नहीं है, तो आप मुझको छोड़ दीजिये । मैंने इस लोक को युवतियों से रहित करने का निश्चय कर लिया है; क्योंकि हम ठगे गये हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—यदि राज्ञः नृपतेः तातस्य दशरथस्य मोहं मूर्छां न सहसे मर्षयसि, धनुः कोदण्डं स्पृश ग्रहाण । धनुः सचापं कृत्वा युद्धाय सज्जो भव । दया करुणा सहनशीलता वा न कर्त्तव्या । स्वजननिभृतः स्वजने पापकारिणि आत्मीये जने निभृतः किमपि प्रतिकारमकुर्वाणः क्षमाशीलः सर्वः सकलोऽपि मृदुः कोमलस्वभावः जनः परिभूयते तिरस्क्रियते अथ यदि रुचितं न स्वजनं प्रति चापस्फालनं भवते न रोचते, ततः त्वं मां लक्ष्मणं मुञ्च त्यज युद्धकरणायानुमतिं देहि । अहं लक्ष्मणः लोकं संसारं युवतिरहितं युवतिभ्यः रमणीभ्यः रहितं हीनं कर्तुं विधातुं कृतनिश्चयः कृतः

राम भरत का → Character

विहित: निश्चय: येन तथाभूतोऽस्मि । एकस्या: एव युवत्या: कैकेय्या अपराधेन सकलमपि जगद् युवतिविरहितं करिष्यामि। यत: यस्माद्धेतो: वयं तव पक्षपातिन: लक्ष्मणादय: छलितां वञ्चनां कृत्वा राज्याद् भ्रंशिता: ॥१८॥

व्याकरण—स्वे जने निभृत: = स्वजननिभृत: । नि + भृ + क्त = निभृत । कृत: निश्चय: येन स: = कृतनिश्चय: । निस् + चि + अच् = निश्चय । कृ + तुमुन् = कर्तुम् ।

छन्द:—हरिणी ।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा । कोमल स्वभाव के आप स्वजनों से छले जाकर कुछ भी उपाय न करने पर तिरस्कृत हो रहे हैं, इस विशेष को अभिव्यक्त करने के लिए इस सामान्य का कथन किया गया है कि इस स्वजन के अपराध के प्रति क्षमाशील सभी व्यक्ति तिरस्कृत होते हैं; अत: यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है ।

सीता—अय्यउत्त रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं । अपुव्वो: क्खु से आआसो । [आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्व: खल्वस्यायास: ।

राम:—सुमित्रामात: । किमिदम् ?

लक्ष्मण:—कथं कथं किमिदम् ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।
इदानीमपि सन्देह: किं क्षमा निर्मनस्विता ॥१९॥

[**अन्वय:**—क्रमप्राप्ते राज्ये हृते, नृपे भुविशोच्यासने, इदानीम् अपि सन्देह: ? किं क्षमा निर्मनस्विता ॥१९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! रोने के समय लक्ष्मण ने धनुष पकड़ लिया है । इसका परिश्रम तो निश्चय से अपूर्व है ।

राम—सुमित्रापुत्र हे लक्ष्मण ! यह क्या है ?

लक्ष्मण—क्यों, क्यों, यह क्या है ?

[**अर्थ श्लोक १९**]—परम्परा से प्राप्त होने वाले राज्य का अपहरण हो गया। राजा भूमि पर शोचनीय मूर्च्छित अवस्था में पड़े हैं। अब भी आपको क्या कोई संदेह रह गया है ? क्या क्षमा करना आत्मगौरव से रहित हो जाना ही है ? ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या—क्रमप्राप्ते क्रमेण वंशपरम्परया प्राप्ते न्यायत: भवतां समक्षमुपस्थिते राज्ये राज्याधिपत्ये हृते बलादाछिन्ने सति, नृपे राजनि पितरि दशरथे भुवि पृथिव्यां शोच्यासने शोच्ये शोचनीये आसने स्थित्यां संजाते, राजा भूमौ मूर्छितावस्थायां शेते इति स्थितौ, इदानीमपि अस्यां स्थितौ संजातायामपि सन्देह: प्रतिकारकरणाय धनुर्ग्रहणमुचितमनुचितं वेति भवतां संशय: ? किमिति प्रश्ने क्षमा सहनशीलता

15-05-84

निर्मनस्विता मनस्वितायाः आत्मगौरवस्य राहित्यमेव वर्तते ? अस्यामप्यवस्थायां भवान् क्षमाशील एव, अत्र आत्मगौरवहीन एव प्रतिभाति इत्यर्थः ॥१९॥

व्याकरण—शोच्ये आसने = शोच्यासने । शुच् + यत् = शोच्य । आस् + ल्युट् (अन) = आसन । नृन् पाति अर्थ में, नृ + पा + क = नृप । सम् + दिह् + घञ् = सन्देह । मनस्वितायाः अभावः = निर्मनस्विता । मनस् + विनि = मनस्विन् । मनस्विनो भावः अर्थ में, मनस्विन् + तल् + टाप् = मनस्विता ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—समुच्चय । दो गुणों या क्रियाओं के एक साथ होने पर समुच्चय अलङ्कार होता है । "भरतो वा भवेद् राजा वयं वा" इसमें समुच्चय अलङ्कार है ।

रामः—सुमित्रामातः । अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योग जनयति । आः । अपण्डितः खलु भवान्—

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुः श्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥२० ॥

[अन्वयः—भरतः वा राजा भवेत्, वयं वा, ननु तत् समम् । यदि ते धनुः-श्लाघा अस्ति, सः राजा परिपाल्यताम् ॥२०॥]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—सुमित्रापुत्र हे लक्ष्मण ! हमारा राज्य से भ्रष्ट होना आपको उत्तेजित कर रहा है ? आः ! आप निश्चय से तथ्य को न जानने वाले हैं ।

अर्थ [श्लोक २०]—भरत चाहे राजा होवें, हम चाहे राजा होवें, निश्चय से ये दोनों बातें समान हैं । यदि तुमको धनुष धारण करने का गर्व है, तो उस राजा की रक्षा करो ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—भरतः कैकेयीसुनः मे भ्राता वा राजा नरपातः भवेद्, वयं वा राजानो भवेम, ननु निश्चयेन तत् द्वयमपि समं तुल्यमेव वर्तते । राजविषयेऽस्माक-मौदासीन्यमेव वर्तते । यदि ते तव धनुःश्लाघा धनुषि धनुर्धारणविषये श्लाघा गर्वः वर्तते, तदा त्वया सः नवाभिषिक्तो राजा भरतः परिपाल्यतां रक्षणीयः । विपत्तिभ्यः सदा परिपालनीयः ॥२०॥

व्याकरण—बिभर्ति लोकान् अर्थ में भृ + अतच् = भरत । धनुषि श्लाघा = धनुःश्लाघा । श्लाघ् + अ + टाप् = श्लाघा । परि + पाल् आत्मनेपदी धातु से लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन = परिपाल्यताम् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अपण्डित खलु भवान्—राज्य का राम को लोभ नहीं है । वे इस विषय में उदासीन हैं; भरत के प्रति उनका स्वाभाविक स्नेह है । अतः लक्ष्मण को इस प्रकार

उत्तेजित देखकर वे उसे विवेचना बुद्धि से रहित समझते हैं। पण्डा सदसद्विवेचनी बुद्धिः अस्ति यस्य सः पण्डितः। पण्डा + इतच् = पण्डित। न पण्डितः = अपण्डितः।

लक्ष्मणः—न शक्नोमि रोषं धारयितुम्। भवतु भवतु। गच्छामस्तावत्। (प्रस्थितः)

रामः— त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥२१॥

[**अन्वयः**—त्रैलोक्यं दग्धुकामा इव ललाटपुटसंस्थिता लक्ष्मणस्य एषा भ्रुकुटिः बियतिं संस्थिता इव ॥२१॥]

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—मैं अपने क्रोध को रोक नहीं सक रहा हूँ। अच्छा, अच्छा। तो हम जाते हैं। (चला जाता है)।

अर्थ [श्लोक २१]—तीनों लोकों को मानो जलाना चाहती हुई, माथे पर स्थित हुई, लक्ष्मण की यह भ्रुकुटि मानो विधाता के समान हो गयी है, अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—त्रैलोक्यं त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रैलोक्यम्। त्रयानेव लोकानिति भावः। दग्धुकामा दग्धुं प्रज्वालयितुं कामः अभिलाषा यस्याः सा भुवनत्रयं दिधक्षन्ती, ललाटपुटसंस्थिता ललाटपुटे मस्तकप्रदेशे संस्थिता व्यवस्थापिता लक्ष्मणस्य सौमित्रेः एषा इयं भ्रुकुटिः कोपमभिव्यञ्जयन्ती वक्रीभूता भ्रूलता नियतिः विधाता सः इव व्यवस्थिता विद्यमाना वर्तते। आकाशो यथा सर्वं लोकत्रयं व्याप्नोति एवमेवेयं भ्रुकुटिः लोकत्रयमभिव्याप्य तद् प्रज्वालयितुं समर्थेति भावः ॥२१॥

व्याकरण—त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रैलोक्यम्। समाहार द्विगु तत्पुरुष समास। त्रिलोक + ष्यञ् = त्रैलोक्य। दग्धुं कामः यस्याः सा = दग्धुकामा। दह् + तुमुन् = दग्धुम्। भ्रुवः कुटिः कौटिल्यमिति भ्रुकुटिः। लक्ष् + मनिन् लक्ष्मन्। लक्ष्मण + अच् = लक्ष्मण। वियच्छति न विरमति अर्थ में वि + यम् + क्विप् = वियत्। सप्तमी का एकवचन = वियति।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और उपमा। दग्धुकामेव में क्रिया की सम्भावना करने से क्रियोत्प्रेक्षा है।

सुमित्रामातः! इतस्तावत्।

लक्ष्मणः—आर्य! अयमस्मि।

रामः—भवतः स्थैर्यमुत्पादयताभयैवमभिहितम्—

ताते धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥२२॥

[अन्वयः—मयि सत्यम् अवेक्षमाणे ताते धनुः न । स्वधनं हरन्त्यां मातरि शरं न मुञ्चानि । दोषेषु बाह्यम् अनुजं भरतं (न) हनानि । त्रिषु पातकेषु रोषणाय किं रुचिरम् ॥२२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सुमित्रापुत्र हे लक्ष्मण ! इधर तो आओ । (नियतिः इव में उपमा अलङ्कार है ।)

लक्ष्मण—आर्य ! यह मैं आ गया हूँ ।

राम—आप में धैर्य को उत्पन्न करने के लिए मैंने इस प्रकार कहा है—

अर्थ [श्लोक २२]—मेरे प्रति सत्य-पालन की अपेक्षा करने वाले पिता के प्रति मैं धनुष नहीं उठा सकता । पिता मुझ से सत्य-पालन में सहायता की अपेक्षा करते हैं । अपने ही धन को ले लेने वाली माता के प्रति मैं बाण नहीं छोड़ सकता । विवाह के समय कैकेयी से राज्य की प्रतिज्ञा राजा ने की थी; अतः वह अपने ही धन को ले रही है; अतः उसका कोई अपराध नहीं है । दोषों से रहित छोटे भाई भरत को मैं नहीं मार सकता । राज्य को प्राप्त करने के लिए भरत का कोई प्रयत्न नहीं है; अतः वह निर्दोष है । तो इस स्थिति में बताओ कि इन तीनों पापों में से, क्रोध से भरे हुए तुमको कौन-सा पाप अच्छा लग रहा है ? ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या—मयि रामे अहमेव तस्य प्रतिज्ञापालने सहायको भविष्यामि इति सत्यं भरताय प्रतिश्रुतराज्यप्रदानम् अवेक्षमाणे प्रतीक्षमाणे ताते पितरि धनुः चापः न प्रयोजयितुमशक्यमेव । स्वधनं विवाहे पणरूपेण प्रतिज्ञातं स्वकीयमेव धनरूपं राज्यं हरन्त्यां गृह्णन्त्यां मातरि अम्बायां कैकेय्यां शरं बाणं न मुञ्चानि चालयानि । एतदप्युपयुज्यते न । दोषेषु बाह्य राज्याधिगमनप्रयत्नरूपापराधेभ्यः विरहितम् अनुजं लघु भ्रातरं भरतमपि न हनानि । तस्यापि वधकरणेऽसमर्थोऽस्मि । तस्मादुच्यताम्—त्रिषु पातकेषु पापेषु पितृवध-मातृवध-भ्रातृवध रूपेषु महापापेषु रोषणाय कोपसम्भृताय तुभ्यं किं कतमः पापः रुचिरं रुचिप्रद वर्तते । कः पापः मया करणीयः पितृवधरूपः मातृवधरूपः, भ्रातृवधरूपो वा । इति त्वमेव कथय ॥२२॥

व्याकरण—अव + ईक्ष + शानच् = अवेक्षमाण । मुञ्चानि—मुच्, लोट् लकार उत्तम पुरुष, एक वचन । अनु पश्चात् जातः अर्थ में अनु + जन् + ड = अनुज । रुच् + किरच् = रुचिर । पातयति अधः गमयति अर्थ पत् + णिच् + ण्वुल (अक) = पातक ।

छन्दः---वसन्ततिलका।

अलङ्कार—परिकर। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करने से यहाँ परिकर अलङ्कार है।

लक्ष्मणः—(सबाष्पम्) हा धिक्! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे—

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथा।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥२३॥

[अन्वयः—महति क्लेशे राज्ये मे मनोरथः न। यत्कृते, त्वया किल चतुर्दश वर्षाणि वने वस्तव्यम् ॥२३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—(आँसू भर कर) हाय धिक्कार है। हमको न पहचान कर उलाहना दे रहे हैं।

अर्थ [श्लोक २३]—महान् क्लेश देने वाले राज्य के प्रति मेरा मनोरथ नहीं है। जिस बात के लिए क्लेश है, वह यह है कि तुमको निश्चय से चौदह वर्षों तक वन में रहना होगा ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—महति अत्यधिके दुरन्ते क्लेशे दुःखदायिनि राज्ये राजपदे मे मम लक्ष्मणस्य मनोरथः मनसोऽभिलाषा न वर्तते। यत्कृते यस्मात् कारणात् मया खिद्यते तदिदं वर्तते यत् त्वया किल निश्चयेन चतुर्दश वर्षाणि वत्सराणि वनेऽरण्ये वस्तव्यं निवासो विधेयः। चतुर्दशवर्षावधिः वनवासोऽपि तव विहितः ॥२३॥

व्याकरण—राज्ञो भावः कर्म वा अर्थ में, राजन् + यक् = राज्य। वस् + तव्यत् = वस्तव्य। वन् + अच् = वन्।

छन्दः—अनुष्टुप्।

हा धिक्—लक्ष्मण को खेद है कि राम उसकी भावना को और मूल बात को नहीं समझ रहे हैं तथा राज्य का लोभी मान रहे हैं। उनको यह विदित नही है कि राज्य के अपहरण के साथ ही राम को चौदह वर्ष का वनवास मिला है।

रामः—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान्? हन्त! निवेदितमप्रभुत्वम्। मैथिलि!

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥२४॥

[अन्वयः—अनया मङ्गलार्थे दत्तान् वल्कलान् तावत् आनय। धर्मं करोमि, अन्यैः नृपैः न एव आप्तं न उपपादितम् ॥२४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—इस विषय में, अर्थात् मेरे वनवास के कारण आदरणीय पिताजी मूर्छित हो गये हैं। खेद है, उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी है। सीते !

अर्थ ; श्लोक २४ — इस अवदातिका के द्वारा मङ्गल-कार्य के लिए दिये गये वल्कल वस्त्रों को ले आओ। मैं धर्म का पालन कर रहा हूँ, जो अन्य राजाओं ने न तो पाया है और न सम्पादित किया है। अन्य राजा तो वृद्धावस्था में पुत्रों को राज्य देकर वल्कल धारण कर वन में जाकर धर्म का पालन करते हैं। मैं तो युवावस्था में ही यह कार्य कर रहा हूँ ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या—अनया अवदातिकया मङ्गलार्थे मङ्गलकार्याणि सम्पादयितुं दत्तान् तुभ्यमर्पितान् वल्कलान् तापसवस्त्राणि तावत् आनय मह्यं देहि। धर्मं धर्माचरणं तावदहं तथा करोमि यथा अन्यैश्परैः पूर्वजैः नृपैः राजभिः नैव आप्तम् अधिगतं न च उपपादितम् अनुष्ठितम् अन्ये राजानस्तु वृद्धावस्थायां पुत्रान् राजपदेऽभिषिच्य वल्कलवस्त्राणि धारयित्वा तपोवनानि गत्वा धर्माचरणं कुर्वन्ति। परं लब्धावसरोऽहं युवावस्थायामेव तद्धर्माचरणं करोमि; अतः मङ्गलमयसमयोऽयम्। मह्यं वल्कलवस्त्राणि तावदानय ॥२४॥

व्याकरण—मङ्गति हितार्थं सर्पति अथवा मङ्गति दुरदृष्टमनेन अस्माद् वा अर्थ में मङ्ग् + अलच् = मङ्गल। उप + पद् + णिच् = उपपादित।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—व्यतिरेक। अन्य उपमानभूत नृपों की अपेक्षा उपमेय स्वयं का उत्कर्ष दिखाने से व्यतिरेक अलङ्कार है।

सीता—गह्णादु अय्यउत्तो। [गृह्णातु आर्यपुत्रः।]

रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?

सीता—ण सहधम्मआरिणी क्खु अहं। [ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम् !]

रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम्।

सीता—अदो णु क्खु अनुगच्छामि। [अतो नु खल्वनुगच्छामि।]

रामः—वने खलु वस्तव्यम्।

सीता—तं क्खु मे पासादो। [तत् खलु मे प्रासादः।]

रामः—श्वश्रू श्वसुरसुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या।

सीता—णं उद्दिसअ देवदानं पणामो करीअदि। [एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते।]

रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम्।

लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम्।

अनुसरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपितारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥२५॥

[अन्वयः—राहुदोषे अपि शशाङ्कम् तारा अनुसरति। वनवृक्षे च पतति लता भूमिं याति। करेणुः च पङ्कलग्नं गजेन्द्र न त्यजति। व्रजतु धर्मं चरतु। हि नार्यः भर्तृनाथाः ॥२५॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ग्रहण करें।

राम—सीते! तुमने क्या निश्चय किया है?

सीता—निश्चय से मैं तो आपकी सहधर्मचारिणी हूँ।

राम—मुझे तो निश्चय से अकेले जाना है।

सीता—इसीलिए तो निश्चय से आपका अनुसरण करना है।

राम—निश्चय से वन में निवास करना है।

सीता—निश्चय ही वह मेरे लिए प्रासाद होगा।

राम—तुमको सास-ससुर की सेवा का निर्वाह भी करना होगा।

सीता—इसको लक्ष्य करके मैं देवताओ को प्रणाम करती हूँ।

राम—लक्ष्मण! इसको रोको।

लक्ष्मण—आर्य! प्रशंसनीय समय में आदरणीय आपको रोकने का मुझको उत्साह नहीं है; क्योंकि—

अर्थ [श्लोक २५]—राहु के दोष से ग्रस्त होने पर चन्द्रमा का तारा, चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी अनुसरण करती है और वन के वृक्ष के गिर जाने पर लता भूमि पर गिर जाती है। और हथिनी कीचड़ में फँसे हुए गजराज को नहीं छोड़ती। ये सीता चलें। धर्म का पालन करें। स्त्रियों के तो पति ही नाथ, सहारा होते हैं। जब कि तारा, लता और हथिनी भी अपने जीवन के अवलम्ब को नहीं छोड़तीं तो ये सीता आपको कैसे छोड़ सकती हैं; अतः इनको भी आपके साथ वन में चलना चाहिये ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या—राहुदोषे राहुणा कृते चन्द्रग्रसन रूपापराधेऽपि शशाङ्कं चन्द्रमसं तारा चन्द्रमसः पत्नी रोहिणी अनुसरति अनुगच्छति। न तु विपदि पतितं स्वामिनं त्यजति। वनवृक्षे अरण्यपादपे च पतति भूमौ पतित्वा शयिते लता वल्लरी तरुस्कन्धालिङ्गिता भूमिं धरणीतलं याति गच्छति। करेणुः हस्तिनी च पङ्कलग्नं पंङ्के कदमे लग्नं संश्लिष्टं गजेन्द्रं करिराजं न त्यजति जहाति। तत्रैव स्थित्वा सहायार्थं प्रयतते। व्रजतु इयं तत्रभवती सीता भवता सह वनं यातु। धर्मं चरतु भवता पत्या सह निवसन्ती धर्माचरणं विदधातु। हि यतः नार्यः स्त्रियः भर्तृनाथाः भर्ता पतिः एव नाथः

स्वामी अवलम्बन वा येषां तथाभूताः भवन्ति । स्वामिना सह निवास एव पत्न्यै सुखप्रदः इत्यर्थः ॥२५॥

व्याकरण—शशस्य अङ्कः यस्मिन् अथवा शशः अङ्के यस्य सः शशाङ्कः । कृ + एणु = करेणु । पङ्के लग्नम् = पङ्कलग्नम् । लग् + क्त = लग्न ।

छन्दः—मालिनी ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास । पहले तीनों पदों के विशेष से चतुर्थ पद के सामान्य का समर्थन करने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

मैथिलि ! किं व्यवसितम्—राम क्योंकि वन जा रहे हैं; अतः सीता से स्वाभाविक रूप से पूछ रहे हैं कि वह क्या करना चाहती है ।

सहधर्मचारिणी खल्वहम्—सीता क्योंकि राम के साथ ही जाना चाहती हैं; अतः वह कहती हैं कि मैं तो सहधर्मचारिणी हूँ । आपके साथ ही रहकर धर्म का पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है ।

(प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—ओदादिआए सङ्गीयसालादो आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा । इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला । णिवत्तीअदु दाव किल पओअणं त्ति । [जयतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—अवदातिकया सङ्गीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीता । इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः । निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति ।]

रामः—भद्रे ! आनय । सन्तुष्टैषा । वयमर्थिनः ।

चेटी—गह्णादु भट्टा । (गृह्णातु भर्ता ।) (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

(रामो गृहीत्वा परिधत्ते)

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः—

(26)

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे ।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥२६॥

[अन्वयः—निर्योगात् भूषणात् माल्यात् सर्वेभ्यः चिरं मे अर्धं प्रदाय, एकाकिना बद्धम् । खलु चीरे मत्सरी असि ॥२६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

चेटी—स्वामिनी की जय हो । नेपथ्यरक्षिका आर्या रेवा प्रणाम करके निवेदन करती हैं—अवदातिका रंगशाला से छीनकर वल्कलों को ले आयी है । ये दूसरे नये (किसी से पहले न पहने गये) वल्कल हैं । इनसे अपना प्रयोजन पूरा कर लीजिये ।

राम—भद्रे ! ले आओ। ये सीता को सन्तुष्ट हैं। हम इन वल्कलों को चाहते हैं।

चेटी—स्वामी ले लें। (वैसा करके चली जाती है)।

(राम वल्कलों को लेकर पहनते हैं)

लक्ष्मण—आर्य ! प्रसन्न हो—

अर्थ [श्लोक २६]—वस्त्र आदि उपयोगी वस्तुओं, आभूषणों, मालाओं आदि सभी वस्तुओं में से चिरकाल से आप मुझको आधा देते रहे हैं। अब आपने यह चीरवस्त्र अकेले ही बाँध लिया है। निश्चय से इस चीरवस्त्र के लिए आपको लोभ हुआ है ॥२६॥

संस्कृत व्याख्या—निर्योगात् वस्त्रकञ्चुकाद्युपभोगवस्तुनः, भूषणात् कंटक हारकुण्डलाद्यलङ्कारात्, माल्यात् पुष्पादिमाल्याभरणाद् इति सर्वेभ्य एव लौकिकोप-भोगेभ्यः मे मह्यम् अर्द्धं समभागं प्रदाय दत्त्वैव भवान् तस्य वस्तुन उपभोगं करोति स्म। परमधुना चीरवस्त्रसिद्धम् एकाकिना बद्ध मह्यमदत्त्वैव परिधापितम्। खलु निश्चयेन चीरेऽस्मिन् वल्कलवस्त्रे भवान् मत्सरी असि लोभितो भवसि ? पूर्वं तावत् बहुमूल्यवस्तून्यपि भवान् मया सह समांशेनविभज्य उपभोगं करोति स्म। परमधुना वल्कलवस्त्रमिदं स्वल्पमूल्यमेकाक्येव परिधत्ते, इति चीरेऽस्मिन् विलक्षणलोभस्तेऽव-लोक्यते ॥२६॥

व्याकरण—निर् + युज् + घञ् = निर्योग। भूष् + ल्युट् (अन) = भूषण। एक + आकिनच् = एकाकिन्। मद् + सरन् = मत्सर। मत्सरः अस्य अस्ति अर्थ मत्सर + इनि = मत्सरिन्।

छन्दः—अनुष्टुप्।

रामः—मैथिलि ! वार्यतामयम्।

सीता—सौमित्रे ! णिवत्तीअदु किल। सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल।

लक्ष्मणः—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥२७॥

[**अन्वय**—मे गुरोः पादशुश्रूषां त्वम् एका कर्तुम् इच्छसि ? दक्षिणः पादः तव एव। सव्यः मम भविष्यति ॥२७॥]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—सीते ! इसे रोको।

सीता—लक्ष्मण ! तुम इसको रहने दो।

लक्ष्मण—आर्ये !

अर्थ [श्लोक २७]—मेरे बड़े भाई के चरणों की सेवा तुम अकेले ही करना चाहती हो ? दायाँ पैर तुम्हारा ही होगा। बायाँ पैर मेरा होगा। तुम दायें पैर की सेवा करना। मैं बायें पैर की सेवा कर लूंगा ।।२७।।

संस्कृत व्याख्या—मे मम गुरोः आदरणीयस्याग्रजस्य भ्रातुः पादशुश्रूषां पादयोः चरणयोः शुश्रूषा सेवितुमिच्छा तां त्वं एका एकाकिन्येव कर्तुं विदधातुम् इच्छसि अभिलषसि ? दक्षिणः पादः चरणः तव एव भविष्यति सव्यः वामः मम भविष्यति। परमादरणीयोमेऽग्रजः। मा त्वमेकिकी-येव तस्य चरणसेवापुण्यमर्जस्व। मह्यमप्यवसरं सेवायाः देहि। त्वं वने रामस्य दक्षिणं पादं परिचर। अहं सव्यस्य पादस्य सेवां करिष्यामि। अहमपि निश्चयेन भ्रात्रा सह वनं गमिष्यामीति भावः ।।२७।।

व्याकरण—पादयोः शुश्रूषां पादशुश्रूषाम्। पद्+घञ्=पाद। श्रू+सन्+अ+टाप्=शुश्रूषा। दक्ष्+इनन्=दक्षिण। सू+यत्=सव्य।

छन्दः—अनुष्टुप्।

सीता—दीअदुक्खु अय्यउत्तो। सन्तप्पदि सोमित्ती। [दयतां खल्वार्यपुत्रः। सन्तप्यते सौमित्रिः।]

रामः—सौमित्रे ! श्रूयताम्। वल्कलानि नाम—

तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ।।२८।।

[अन्वयः—तपःसङ्ग्रामकवच, नियमद्विरदाङ्कुशः, इन्द्रियाश्वानां खलीनम्, धर्मसारथिः। गृह्यताम् ।।२८।।]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र दया करें। लक्ष्मण दुःखी हो रहे हैं।

राम—लक्ष्मण ! सुनो। ये वल्कल—

अर्थ [श्लोक २८]—ये वल्कल तपस्या रूपी युद्ध में कवच हैं। नियमपालन रूपी हाथी को वश में करने के लिए अङ्कुश हैं। इन्द्रियरूपी घोड़ों को नियन्त्रित करने के लिए लगाम हैं। धर्मरूपी रथ के सारथि हैं। तुम इनको ग्रहण करो ।।२८।।

संस्कृत व्याख्या—इमानि वल्कलानि तपःसङ्ग्रामकवचं तपः तपस्या एव संग्रामः युद्धं तत्र कवचं वर्मरूपं सन्ति। यथा संग्रामे योद्धारं कवचं रक्षति तथैव तपस्विनामिमानि वल्कलानि रक्षन्ति। नियमद्विरदाङ्कुशः नियमः यमनियमादि-पालनमेव द्विरदः हस्ती तस्य नियमनाय अङ्कुशः सृणिः। यथा सृणिः हस्तिनं वशीभूतं करोति सम्यग्रूपेण संचालयति, तथैव वल्कलानि नियमपालनसाधनानि भवन्ति। इन्द्रियाश्वानाम् इन्द्रियाणि एव अश्वाः घोटकाः तेषां खलीनं प्रग्रहः। यथा खलीन-मश्वानां वारकस्तथैव वल्कलानीन्द्रियाणां वारकाणि सन्ति। धर्मसारथिः धर्मस्य धर्मरूपस्य रथस्य सारथिः रथसञ्चालकः। यथा सारथि रथं संचालयति तथैव

वल्कलानि धर्मं सञ्चालयन्ति । गृह्यतामिमानि वल्कलानि गृहीत्वा धार्यताम् । वने वसता त्वया वल्कलानि धारयित्वा तपसि, नियमपालने, इन्द्रियजये, धर्मपालने च वल्कलवस्त्रसाहाय्येन सततं वर्तितव्यमिति भावः ॥२८॥

व्याकरण—कं वातं वञ्चयति अर्थ में क+वञ्च्+अच्=कवच । दौ रदौ यस्य सः द्विरदः । अङ्क्+उशच्=अङ्कुश । खे अश्व मुखछिद्रे लीनं खलीनम् । इन्द्र+घ (इय्)=इन्द्रिय । अश्+क्वन्=अश्व । सृ+अथिण्=सारथि ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलंकार—माला रूपक । वल्कल रूप उपमेय पर कवच, अङ्कुश, खलीन और सारथि रूप उपमानों का आरोप किया गया है ।

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि । (गृहीत्वा परिधत्ते)

रामः—श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः । उत्सार्यतामुत्सार्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! अहमग्रतो यास्यामि । उत्सार्यतामुत्सार्यताम् ।

रामः—मैथिलि ! अपनीयतामवगुण्ठनम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि [यदार्यपुत्र आज्ञापयति] (अपनयति) ।

रामः—भो भोः पौराः श्रृण्वन्तु श्रृण्वन्तु भवन्तः—

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् वाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥२९॥

[**अन्वयः**—भवन्तः वाष्पाकुलाक्षैः वदनैः एतत् कलत्रं हि स्वैरं पश्यन्तु । यज्ञे, विवाहे, व्यसने, वने च नार्यः हि निर्दोषदृश्याः भवन्ति ॥२९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—अनुगृहीत हो गया हूँ । (लेकर धारण करता है ।)

राम—नगरनिवासियों ने इस वृत्तान्त को सुन लिया है और राजमार्ग को रोक दिया है । इनको हटा दो, हटा दो ।

लक्ष्मण—आर्य ! मैं आगे जाऊँगा । हट जाओ, हट जाओ ।

राम—सीते ! घूँघट हटा दो ।

सीता—जैसा आर्यपुत्र आदेश देते हैं । (हटा देती है)

राम—हे हे नगरवासियों ! आप सुनें, सुनें—

अर्थ [श्लोक २९]—आप लोग आँसुओं से भरी हुई आँखों वाले मुखों से इस मेरी पत्नी को निश्चय से स्वतन्त्रता से देख लें । यज्ञ और विवाह में, आपत्ति के अवसर पर और वन में रहती हुई स्त्रियों को देखने में निश्चय से दोष नहीं होता ॥२९॥

संस्कृत व्याख्या—भवन्तः सर्वे पौराः वाष्पाकुलाक्षैः वाष्पैरश्रुभिः आकुलानि

परिप्लुतानि अक्षीणि नयनानि येषां तथाभूतैः वदनैः मुखैः एतत् इदं मे कलत्रं, भार्यां हि निश्चयेन स्वैरं स्वतन्त्रतया इच्छानुसारं पश्यन्तु अवलोकयन्तु। यज्ञे अध्वरावसरे विवाहे पाणिग्रहणसंस्कारे, व्यसने विपदि, वने अरण्ये च नार्यः स्त्रियः हि निश्चयेन निर्दोषदृश्याः निर्दोषं दोषरहितं दृश्यं दर्शनं यासां तथाभूताः भवन्ति। सामान्यतः कुलवधूनां दर्शनं सामान्यजनैः न लभ्यते सापराधं हि तत्, परन्तु यज्ञाद्यवसरेषु तेषां दर्शने न दोषः। सर्वजनदृश्याः हिताः भवन्ति ॥२९॥

व्याकरण अलङ्कार—स्वस्य ईरम् = स्व + ईर् + अच् = स्वैरं। बाष्पैः आकुलानि अक्षीणि येषां ते बाष्पाकुलाक्षैः। निर्दोषं दृश्यं यासां ताः निर्दोषदृश्याः। दृश् + यत् = दृश्य।

छन्दः—इन्द्रवज्रा।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग। स्त्री का स्वतन्त्रतापूर्वक देखने का हेतु दिया गया है कि इन अवसरों पर उनको देखने में दोष नहीं है; अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार।

अपनीयतामवगुण्ठनम्—इससे प्रतीत होता है कि भास के युग में कुलीन स्त्रियाँ पर्दा करती थीं तथा सामान्य जन उनके मुखों को नहीं देख सकते थे, परन्तु यज्ञ, विवाह, विपत्ति का समय तथा वन में निवास, इन अवसरों पर स्त्रियों का मुख देखने में कोई दोष नहीं समझा जाता था।

इस श्लोक मे बताया गया है कि राजा दशरथ राम को रोकने की चेष्ठा कर रहे है।

(30)

(प्रविश्य)

कञ्चुकीयः—कुमार! न खलु गन्तव्यम्। एष हि महाराजः—

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं,
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम्।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः,
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥३०॥

अन्वयः—वधूसहायं सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रं ते वनगमनं श्रुत्वा उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः जीर्णः कान्तारद्विरदः इव उपयाति ॥३०॥

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

कञ्चुकीय—कुमार! आप निश्चय ही मत जाइये। यह महाराज की अवस्था है—

अर्थ [श्लोक ३०]—पत्नी को साथ लेकर, उत्तम भ्रातृस्नेह के वशीभूत होकर वन में अनुसरण करने का निश्चय करने वाले लक्ष्मण को साथ लेकर आपके वन जाने की बात सुन कर, उठकर, पृथिवीतल की धूलि से सने अङ्गों वाले, वृद्ध राजा जंगली हाथी के सदृश इधर ही आ रहे हैं ॥३०॥

संस्कृत-व्याख्या—-वधूसहायं वधूः पुत्रवधु सीता सहाया सङ्गिनी यस्मिन् तथा भूतम्, सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रं सौभ्रात्रेण उत्तमभ्रातृस्नेहवशेन व्यवसिता संकल्पिता लक्ष्मणेन सौमित्रिणा अनुयात्रा अनुसरणं यस्मिन् तथाभूतं ते तव वनगमनम् अरण्यप्रव्रजनं श्रुत्वा आकर्ण्य, उत्थाय भूमिशयनं परित्यज्य उत्थितो भूत्वा, क्षिति-तलरेणुरूषिताङ्गः क्षितितलस्य धरातलस्य रेणुभिः धूलिभिः रूषितानि धूसरितानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तथाभूतः जीर्णः वृद्धः कान्तारद्विरदः वन्यगज इव सः राजा उपयाति इत एवागच्छति। तव वनगमनं निशम्य राज्ञः अवस्था अतिदैन्येन मानसिक-सन्तापेन च सम्भृता वर्तते। सुतं द्रष्टुं सः आयाति ।।३०।।

व्याकरण—वधूः सहायायस्मिन् तत्=वनगमनम्। गम्+ल्युट् (अन)= गमन। सौभ्रात्रेण व्यवसिता लक्ष्मणेन अनुयात्रा यस्मिन् तत्=सौभ्रात्रव्यवसित-लक्ष्मणानुयात्रम्। शोभनः भ्रातुः भाव अर्थ में सु+भ्रातृ+अण्=सौभ्रात्र। वि+ अव+सि+क्त=व्यवसित। अनु+या+त्रन्+टाप्=अनुयात्रा। क्षितितलस्य रेणुभिः रूषितानि अङ्गानि यस्य सः=क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः। क्षि+क्तिन्=क्षिति। रूष्+क्त (इट् का आगम) रूषित। जु+क्त=जीर्ण।

छन्दः—प्रहर्षिणी।

अलङ्कार—परिकर। अभिप्राय गर्भित विशेषणों का कथन करने पर परिकर अलङ्कार होता है। यहाँ वनगमन तथा राजा के विशेषण अभिप्रायगर्भित है; क्योंकि उनका प्रयोग करके कञ्चुकीय राम को वन जाने मे रोकना चाहता है।

लक्ष्मणः—आर्य !

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्।

रामः— **गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ।।३१।।**

[अन्वयः—चीरमात्रोत्तरीयाणां वनवासिनां किं दृश्यम्।
अस्मासु गतेषु राजा नः शिरः स्थानानि पश्यतु ।।३१।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—आर्य ?

अर्थ [श्लोक ३१ पूर्वार्द्ध]—वल्कल वस्त्र मात्र का उत्तरीय वस्त्र धारण करने वाले हम वनवासियों का राजा को देखना ही क्या है? अर्थात् राजा द्वारा हमें देखना निष्प्रयोजन है।

संस्कृत-व्याख्या—चीरमात्रं केवलं वल्कलवस्त्रमेव उत्तरीयं परिधानं येषां तथाभूतानामस्माकं किं दृश्यमवलोकनीयं वर्तते । राज्ञोऽस्माकमवलोकनं निष्प्रयोजनमेव । अतोऽस्माकमत्रावस्थानं तत्प्रतीक्षणं निरर्थकमिति भावः ।

व्याकरण—चीरमात्रत् उत्तरीयं येषां तेषाम् = चीरमात्रोत्तरीयाणम् । चि + क्रन् (दीर्घ करके) = चीर । उत्तर + छ (ईय) उत्तरीय ।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—

अर्थ [श्लोक ३१ उत्तरार्द्ध]—हमारे चले जाने पर राजा हमारे मुख्य रहने के स्थानों को देख लें । हम राजा की प्रतीक्षा नहीं करेंगे । जहाँ हम चिरकाल से रहते रहे हैं, उन स्थानों को देखकर ही राजा अपने को सान्त्वना दे लें ॥३१॥

इसके बाद सब रंगमंच से निकल जाते हैं ।

प्रथम अङ्क पूरा हुआ

संस्कृत-व्याख्या—अस्मासु त्रयेष्वपि गतेषु अस्माद् राजभवनाद् राजानमप्रतीक्ष्यैव प्रस्थितेषु सत्सु राजा दशरथः नः अस्माकं शिरः स्थानानि प्रधान निवास स्थानानि पश्यतु अवलोकयतु । अस्मिन्निवसितस्थानान्यवलोक्यात्मानं सान्त्वयतु । रामस्य कथनमिदं तस्य हृदयस्यानिर्वचनीयवस्थां सूचयति । सः पितुः दर्शनमपि परिहरति प्रस्थानसमये ॥३१॥

व्याकरण—शिरोभूतानि स्थानानि शिरःस्थानानि । स्था + ल्युट् (अन) = स्थान ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

इति भासविरचित प्रतिमानाटके डॉ० कृष्णकुमारकृत व्याख्यायाः

प्रथमोऽङ्कः समाप्तः

(31) इस श्लोक में लक्ष्मण कहते हैं कि राजा के आने से पहले हम चले जायेंगे।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकीयः)

कञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहारव्यापृता ! स्वेषुस्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ताः भवन्तु भवन्तः ।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! किं एदं ? [आर्य ! किमेतत् ?]

कञ्चुकीय—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं यच्छन्तमुपावर्तयितुमशक्त पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगहके शयानः

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे,
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः,
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ।।१।।

[अन्वयः—युगक्षय सन्निकर्षे चलन् मेरुः इव अप्रमयः शोषं व्रजन् महोदधिः इव. मण्डलमात्रलक्ष्यः पतन् सूर्य इव नरेन्द्रः शोकात् भृशं शिथिलदेहमतिः ।।१।।]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर कञ्चुकीय प्रवेश करता है)

कञ्चुकीय—हे हे ! द्वार पर कार्य करने वाले द्वारपालों ! आप लोग अपने-अपने स्थानों पर सावधान हो जावें ।

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—आर्य ! यह बात है ?

कञ्चुकीय—सत्य वचनों की रक्षा करने में तत्पर ये महाराज वन में जाते हुए राम को लौटा लाने पर निश्चय से असमर्थ रहे हैं। पुत्र के विरह की शोकरूपी अग्नि से जलते हुए हृदय वाले वे उन्मत्त के समान बहुत अधिक प्रलाप करते हुए समुद्रगृह में लौटे हुए हैं—

अर्थ [श्लोक १]—प्रलयकाल के समीप आने पर कांपते हुए मेरु पर्वत के समान, मापे न जाने सकने के योग्य तथा सूखते हुए समुद्र के समान और मण्डलमात्र दिखायी देते हुए एवं गिरते हुए सूर्य के समान इन राजा की शरीर और बुद्धि शोक से बहुत अधिक शिथिल हो गयी है ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या—युगक्षयसन्निकर्षे युगस्य क्षयः विनाशः प्रलयकालस्तस्मिन् चलन् कम्पायमानः मेरुः सुमेरुपर्वतः स इव, अप्रमेयः प्रमातुं परिच्छेत्तु अशक्यः अप्रमेयः

परं शोषं व्रजन् शुष्यमाण महोदधिः महासमुद्र इव, मण्डलमात्रलक्ष्यः मण्डलमात्रं प्रभाजालस्य उपसंहृततया वलयमात्रं लक्ष्यं दृश्यं यस्य तथाभूतः पतन् स्रंसन् सूर्यः भास्करः इव नरेन्द्रः अयं राजा दशरथः शोकात् पुत्रविरहजनितदुःखात् भृशमत्यधिकं शिथिलदेहमतिः शिथिलः अवसन्नः देहः शरीरं मतिः बुद्धिश्च यस्य तथाभूतः संजातः। पुत्रविरहशोकात् तस्य शरीर शिथिलीभूतं बुद्धिश्चापि शिथिलीभूता ॥१॥

व्याकरण—चल् + शतृ = चलत्। प्रथमा का एकवचन = चलन्। युगस्य क्षयस्य सन्निकर्षे = युगक्षयसन्निकर्षे। √क्षि + अच् = क्षय। सम् + नि + √कृष् + अच् = सन्निकर्ष। महांश्चासौ उदधिः = महोदधिः। उदकानि धीयन्ते अस्मिन् अर्थ में उदक + √धा + कि = उदधि। न + प्र + √मा + यत् = अप्रमेय। शिथिलः देहः मतिश्च यस्य सः शिथिलदेहमतिः। √मन् + क्तिन् = मति।

छन्दः—वसन्ततिलका।

अलंकार—मालोपमा। एक उपमेय नरेन्द्र के अनेक उपमान मेरु, महोदधि और सूर्य होने से मालोपमा अलंकार है।

प्रतिहारी—हा हा एव्वंगओ महाराओ ? [हा हा एवंगतो महाराजः ?]

कञ्चुकीयः—भवति ! गच्छ।

प्रतिहारी—अय्य ! तहा। [आर्य ! तथा।] (निष्क्रान्ता)

कञ्चुकीयः—(सर्वतो विलोक्य) अहो नु खलु रामनिर्गमनदिनादारभ्य शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते। कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो,
ह्रेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा,
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥२॥

[अन्वयः—नागेन्द्राः यवसाभिलाषविमुखाः, सास्रेक्षणाः वाजिनः ह्रेषाशून्यमुखाः, सवृद्धवनिताबालाः च पौराः जनाः त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदना उच्चैः क्रन्दन्तः, अमी यया दिशा सदारसहचः रामः याति ताम् एव पश्यन्ति ॥२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

प्रतिहारी—हाय, हाय ! महाराज की क्या ऐसी अवस्था हो गयी है ?

कञ्चुकीय—श्रीमती जी ! आप जायें।

प्रतिहारी—आर्य ! बहुत अच्छा। (निकल जाती है)

कञ्चुकीय—(सब ओर देख कर) अहो ! निश्चय से राम के निकलने के दिन से आरम्भ करके यह अयोध्या सूनी—सी दिखायी देती है। क्योंकि—

अर्थ [श्लोक २]—गजराजों ने चारे को खाने की अभिलाषा छोड़ दी है। आँसुओं से भरे हुये घोड़ों ने हिनहिनाना छोड़ दिया है और उनके मुख मूक हो गये

हैं। वृद्धों, स्त्रियों और बालकों सहित नगरनिवासियों ने भोजन की वार्ता ही छोड़ दी है और अत्यधिक दीन मुखों से वे उच्च स्वर से क्रन्दन कर रहे हैं। ये सब हाथी, घोड़े और नगरनिवासी, जिस दिशा से पत्नी और भाई सहित राम गये हैं। उसी दिशा को देख रहे हैं ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या— नागेन्द्राः गजराजाः यवसाभिलाषविमुखाः यवसस्य ग्रासस्य अभिलाषायाः इच्छायाः विमुखाः पराङ्मुखाः सन्तः, सास्रेक्षणाः अश्रुपूरितनयनाः वाजिनः अश्वा। ह्रेषाशून्यमुखाः हेषाभिः अश्वशब्दैः शून्यानि विरहितानि मूकानीति भावः मुखानि येषां तथाभूताः सन्तः, सवृद्धवनितावालाः वृद्धैः स्थविरैः वनिताभिः स्त्रीभिः बालैः बालकैश्च सहिताः पौराः नगरनिवासिनः जनाः त्यक्ताहारकथा त्यक्ता विसृष्टा आहारस्य भोजनस्य वार्ता अपि यैः तादृशाः। सुदीनवदनाः सुदीनानि अतिकरुणापूर्णानि वदनानि मुखानि येषां तथाभूताः उच्चैः उच्चस्वरेण क्रन्दन्तः रुदन्तः सन्तः, अमी सर्वे गजराजाः अश्वाः नगरनिवासिनश्च यया दिशा आशया सदारसहजः दाराभिः पत्न्या सीतया सहजेन भ्रात्रालक्ष्मणेन च सह याति गच्छति, तामेव दिशं पश्यन्ति अवलोकयन्ति ॥२॥

व्याकरण—यवसस्य अभिलाषायाः विमुखाः=यवसाभिलाषविमुखाः, सास्राणि अश्रुभिः सहितानि ईक्षणानि नयनानि येषां ते सास्रेक्षणाः। ईक्ष्+ल्युट् (अन)= ईक्षण। वृद्धैः वनिताभिः बालैश्च सहिताः सवृद्धवनितावालाः। पुरि वसति अर्थ में, पुर्+अण्=पौर। सह जातः=सह+√जन्+ड=सहज।

छन्दः—शार्दूलविक्रीडित।

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अये! अयं महाराजो महादेव्यां सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरहसमुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति। कष्टा खल्ववस्था वर्तते। एष एष महाराजः—

(3) (1) इस श्लोक में राजा दशरथ विलाप करते हैं

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥३॥

(निष्क्रान्तः)

॥ मिश्रविष्कम्भकः ॥

[**अन्वयः**—उत्थाय पतति, उत्थाय च हा हा इति मुहुः उच्चैः लपन् ताम् एव दिशं पश्यति यया रघूद्वहः यातः ॥३॥]

तो अब मैं भी महाराज के समीप जाऊँगा। (घूमकर और देखकर) अरे! महाराज हैं। अत्यधिक दुःसह भी पुत्रों के विरह से उत्पन्न शोक को रोककर किसी प्रकार अपने को सँभालती हुई महादेवी कौशल्या और सुमित्रा के द्वारा सेवा किये जाते हुए बैठे हैं। निश्चय ही इनकी अवस्था कष्टदायक है। ये महाराज—

अर्थ [श्लोक ३]—उठकर ये गिर जाते हैं, और पुनः उठकर, हा-हा इस प्रकार

बार-बार उच्च स्वर से रुदन करते हुए उसी दिशा को देखते हैं, जिससे रघुवंशश्रेष्ठ राम वन को गये हैं ।।३।।

(निकल जाता है)

इस प्रकार मिश्रविष्कम्भक पूरा हुआ ।

संस्कृत-व्याख्या—उत्थाय उत्थितो भूत्वा पतति, पुनः च उत्थाय हा-हा इति मुहुः बारम्बारं उच्चैः उच्चस्वरेण लपन् क्रन्दन् ताम् एव दिशम् आशां पश्यति अवलोकयति यया दिशा रघूद्वहः रघुकुलश्रेष्ठः रामः यातः गतः ।।३।।

व्याकरण—उत् + स्था + क्त्वा (ल्यप्) = उत्थाय । रघुं रघुकुलं उद्वहति उच्चैः धारयति अर्थ में रघु + उत् + √वह् + अच् = रघूद्वह ।

छन्दः— अनुष्टुप् ।

अलंकार—स्वभावोक्ति । राजा की दुःखद अवस्था का स्वाभाविक वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलङ्कार हैं ।

निगृह्यात्मानम्—यद्यपि कौशल्या और सुमित्रा को भी अपने पुत्रों के जाने से दुःसह मानसिक वेदना हो रही थी, तथापि राजा दशरथ की अवस्था बहुत खराब थी । दोनों रानियाँ अपने शोक को रोक कर पति की सेवा में तत्पर थीं ।

मिश्रविष्कम्भक दो अङ्कों के मध्यवर्ती कथा के भाग को संक्षेप से निर्दशित करने वाला नाटकीय अंश विष्कम्भक कहलाता है । इसका प्रयोग मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा किया जाता है । यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध और मिश्र । यदि इसका प्रयोग एक या अनेक मध्यम कोटि के पात्र करें तो यह शुद्ध विष्कम्भक कहलाता है । यदि इसका प्रयोग मध्यम और नीच पात्र मिलकर करें, तो यह मिश्र-विष्कम्भक होता है । प्रस्तुत विष्कम्भक में कञ्चुकीय मध्यम कोटि का और प्रतिहारी नीच कोटि का पात्र है; अतः यह मिश्रविष्कम्भक है ।

इस श्लोक में राम, ~~लक्ष्मण~~, सीता के गुणों का वर्णन है।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च)

(4) **राजा**— **हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम**
हा वत्स ! लक्ष्मणस लक्षणसर्वगात्र ।
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते
हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः ।।४।।

[**अन्वयः**—हा वत्स ! जगतां नयनाभिराम राम ! हा वत्स ! सलक्षण-सर्वगात्र लक्ष्मण ! हा साध्वि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते मैथिलि ! हा हा वत किल मे तनूजाः वनं गताः ।।४।।]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर जैसा कहा गया था, उस रूप में राजा और दोनों देवियाँ प्रवेश करते हैं)

राजा—

अर्थ [श्लोक ४]—हा पुत्र ! लोकों की आँखों को आनन्दित करने वाले राम ! हा पुत्र ! उत्तम लक्षणों से युक्त सब अङ्गों वाले लक्ष्मण ! हा पतिव्रते ! पति में चित्त की वृत्तियों को लगाने वाली सीते ! हा हा, खेद है कि निश्चय से मेरे पुत्र वन में चले गये हैं ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—हा वत्स पुत्र ! जगतां लोकानां नयनाभिराम नयनानि चक्षूंषि अभिरमयति सर्वत आनन्दयति इति तथाभूत राम ! हा वत्स पुत्र ! सलक्षण-सर्वगात्र सलक्षणानि शुभलक्षणशालीनि सर्वाणि सकलानि गात्राणि अङ्गानि यस्य तथाभूत लक्ष्मण सौमित्रे ! हा साध्वि पतिव्रते ! पतिस्थितचित्तवृत्ते पत्यौ भर्तरि स्थिताः सन्निहिताः चित्तस्य मनसः वृत्तयः यस्याः तथाभूते मैथिलि सीते ! हा हा, बत इति खेदे किल निश्चयेन मे मम तनूजाः पुत्राः एते रामश्च लक्ष्मणश्च सीता च वनमरण्यं गताः सम्प्राप्ताः ।।४।।

व्याकरण—नयनानि अभिरमयति इति नयनाभिराम । √रम् + घञ् = राम । पत्यौ स्थिताः चित्तस्य वृत्तयः या सा पतिस्थितचित्तवृत्ति । √वृत् + क्तिन् = वृत्ति । तनु + √जन् + ड = तनूज ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—परिकर । नयनाभिराम आदि विशेषण पुत्रों के गुणों को व्यक्त करके दशरथ के शोक को बढ़ाते हैं; अतः इनके सभिप्राय होने से परिकर अलंकार है ।

चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि तावल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि । वधु ! वैदेहि !

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः ।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ।।५।।

अन्वयः—रामेण अपि परित्यक्तः लक्ष्मणेन च गर्हितः । लोके अयशोभाजनम् अहं त्वया अपि परित्यक्तः ।।५।।

हिन्दी रूपान्तर—

अरे, यह आश्चर्य की बात है कि भाई के प्रति स्नेह के कारण पिता के प्रति स्नेह को छोड़ देने वाले भी लक्ष्मण को देखना चाहता हूँ । हे वधू सीते !

अर्थ [श्लोक ५]—राम ने भी मुझ को छोड़ दिया है और लक्ष्मण ने मेरी निन्दा की है । लोक में अपयश के पात्र मुझ को तुमने भी छोड़ दिया है ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या—रामेण कौसल्यापुत्रेण अपि परित्यक्तः, लक्ष्मणेन सौमित्रिणा च अहं गर्हितः निन्दितः । लोके जगति अयशोभाजनम् अपकीर्तिपात्रम् अहं त्वया वध्वा सीतया अपि परित्यक्तः ।।५।।

व्याकरण—परि + √त्यज् + क्त = परित्यक्त ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

पुत्र राम ! वत्स लक्ष्मण ! वधु वैदेहि ! प्रयच्छत मे प्रतिवचनं पुत्र काः । शून्यमिदं भोः ! न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति । कौशल्यामातः ! क्वासि ?

सत्यसन्ध जितक्रोध विमत्सर जगत्प्रिय ।
गुरुशुश्रूषणे युक्त प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥६॥

[अन्वयः—सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय ! गुरुशुश्रूषणे युक्त ! मे प्रतिवचनं प्रयच्छ ॥६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

पुत्र राम ! पुत्र लक्ष्मण ! हे वधू सीते ! हे पुत्रों मुझको ! प्रत्युत्तर दो । अरे, यह सूना-सा हो रहा है । कोई भी मुझको प्रत्युत्तर नहीं दे रहा है । कौशल्या के पुत्र राम ! तुम कहाँ हो ?

अर्थ [श्लोक ६]—सत्यप्रतिज्ञ, क्रोध को जीतने वाले, ईर्ष्या से रहित, लोकों के प्रिय, गुरुओं की सेवा में लगे रहने वाले ! तुम मुझको प्रत्युत्तर दो ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—सत्यसन्ध सत्यप्रतिज्ञ ! जितक्रोध वशीकृतरोष ! विमत्सर ईर्ष्याशून्य ! गुरुशुश्रूषणे गुरूणां पूजनीयजनानां शुश्रूषणे सेवायां युक्त तत्पर ! हे राम ! मे प्रतिवाक्यं प्रत्युत्तरं प्रयच्छ देहि ॥६॥

व्याकरण—सत्या सन्धा यस्य स सत्यसन्ध । सम् + √धा + क = सन्ध ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—परिकर । सत्यसन्ध आदि अभिप्राय गर्भित विशेषणों के कारण यहाँ परिकर अलङ्कार है ।

पितरिविमुक्तस्नेहमपि—पुत्र द्वारा पिता के प्रति प्रेम न रहने और तिरस्कृत करने पर भी पिता अपने पुत्र को बहुत अधिक स्नेह करता है और अपने समक्ष रखना चाहता है ।

हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः ? क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः ? क्वासौ शोकार्त्तेष्वनुकम्पा ? क्वासौ तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः ? पुत्र राम ! वृद्धं पितरं मां परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम् ? हा धिक् । कष्टं भोः !

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥७॥

[अन्वयः—सूर्यः इव रामः गतः । दिवसः सूर्यम् इव लक्ष्मणः अनुगतः । सूर्यदिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते ॥७॥]

हिन्दी रूपान्तर—

हाय, सब लोगों के हृदयों और नयनों को आनन्दित करने वाला वह राम कहाँ है ? मेरे प्रति बहुत अधिक भक्ति रखने वाला वह राम कहाँ है ? शोक से पीड़ित व्यक्तियों के प्रति अनुकम्पा रखने वाला वह राम कहाँ है ? राज्य के ऐश्वर्य को तिनके के समान समझने वाला वह राम कहाँ है ? हे पुत्र राम ! मुझ वृद्ध पिता को छोड़कर इस असम्बद्ध धर्म से तुमको क्या करना है ? हाय, धिक्कार है । अरे, बड़ा कष्ट है ?

अर्थ [श्लोक-७] — सूर्य के समान राम चला गया है । जिस प्रकार दिन सूर्य का अनुसरण करता है, उसी प्रकार लक्ष्मण राम के पीछे चला गया है । सूर्य और दिन के अस्त हो जाने पर जिस प्रकार छाया दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार सीता दिखायी नहीं दे रही है ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या—सूर्यः भास्कर इव रामः गतः यातः, दृष्टिबहिर्भूतः । दिवसः दिनं सूर्यमिव भास्करमिव लक्ष्मणः सौमित्रिः अनुगतः अनुयातः । सूर्यदिवसावसाने सूर्यस्य भानोः दिवस्य दिनस्य च अवसाने अन्तर्धाने छाया अनातप इव सीता जानकी न दृश्यते अवलोक्यते । यथा सूर्ये अस्तमिते दिवसोऽपि अस्तंगच्छति, दिवसे चास्तगते छायाऽपि तदनु विनश्यति, तथैव रामे वन गते लक्ष्मणोऽपि तदनु वनं गतः । रामलक्ष्मणस्योश्च वनंगते तदनु सीताऽपि वनं गता, न च सा दृश्यते । अत्र रामस्य सूर्योपमत्वात् प्रभाप्रतापातिशयत्वं व्यज्यते, अस्तंगमावाच्च पुनरभ्युदयसम्भावना । लक्ष्मणस्य दिवसोपमत्वात् राममनुगमनं स्वभावसिद्धम् । सीतायाश्च छायोपमत्वाद् राम प्रति अतिशयितानुवृत्तिः सिद्धा ।।७।।

व्याकरण—√सू + क्यप्, निपातनात् = सूर्य । दीव्यति अत्र अर्थ में √दिव् + असच् = दिवस । सूर्यस्य दिवसस्य च अवसाने = सूर्यदिवसावसाने । अव + √सो + ल्युट् (अन) = अवसाना √छो + य + टाप् = छायां । √सि + क्त + टाप् (पृषोतरत्वाद्दीर्घ) = सीता ।

छन्दः—आर्या ।

अलंकार—यहाँ तीन उपमाएँ हैं—सूर्य इव रामः, दिवस इव लक्ष्मणः और छाया इव सीता ।

हिन्दी रूपान्तर—

(उर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक !

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतंत्रयम् ।।८।।

अवन्यः—वयम् अनपत्याः, रामः अन्यस्य महीमतेः, पुत्रः वने च कैकेयी व्याघ्री त्वया त्रयं किं न कृतम् ? ।।८।।]

हिन्दी रूपान्तर—

(ऊपर देखकर) अरे दुष्ट विधाता !

[अर्थ श्लोक ८]—हम सन्तानरहित होते, राम अन्य किसी राजा का पुत्र होता और वन में कैकेयी बाघिन होती। तुमने ये तीनों बातें क्यों नहीं कीं ? ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—वयम् अनपत्याः सन्तानरहिताः स्याम, रामः स कौशल्यासुतः अन्यस्य कस्यचिदपरस्य महीपतेः पार्थिवस्य पुत्रः सुतः स्यात्, वनेऽरण्ये च कैकेयी सा मे मध्यमभार्या व्याघ्री मृगान्तकिनी स्यात्। त्वया कृतान्तेन त्रयमिदमवश्यं करणीयं किन्न कृतं कस्मात्कारणान्न विहितम् ! अस्मासु सन्ततिरहितेषु सत्सु पुत्रपरित्याग-दुःखस्यावसर एव न सम्भवति, रामेऽन्यस्य महीपतेः पुत्रे सति वनबासकष्टं नापतति क्रूरस्वभावायाः कैकेय्याश्च वने व्याघ्रीरूपभावे सति राज्यलोभावसर एव न सम्भवति। परं क्रूरेण कृतान्तेनैकमपिकृत्यं न विधायेदं दुःखं मरणान्तकं मह्यं सम्पातितम् ॥८॥

व्याकरण—न पतन्ति पितरोऽनेन अर्थ में, न + √पत् + यत् = अपत्यय। न + अपत्य = अनपत्य। पुन्नाम्नः नरकात् त्रायते अर्थ में पुत् + √त्रै + क = पुत्र। अथवा, पुनाति पित्रादीन् अर्थ में √पु + त्र = पुत्र (निपातनात् ह्रस्व)। व्याजिघ्रति अर्थ में, वि + आ + √घ्रा + क + ङीप् = व्याघ्री।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलंकार—पर्यायोक्त—कहने योग्य बात को किसी अन्य प्रकार से कहना पर्यायोक्त अलंकार है। राम का वियोग दशरथ के लिए असह्य है। इस बात को अन्य प्रकार से कहने से पर्यायोक्त अलङ्कार है।

सर्वजनहृदयनयनाभिरामः—राम के अनेक गुणों का स्मरण करके दशरथ को गहन सन्ताप कवि ने प्रदर्शित किया है।

कृतान्तहतक—हतक पद का प्रयोग करके दशरथ ने विधाता की निन्दा की है कि उसी के कारण यह पीड़ा उनको भुगतनी पड़ रही है।

कौशल्या—(सरुदितम्) अलं दाणिं महाराओ अतिमत्तं सन्तप्पिअ परवसं अत्ताणं कादुं। णं सा तं अ कुमारा महाराअस्स समआवसाणे पेक्खितव्वा भविस्सन्ति। [अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम्। ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति।]

राजा—का त्वं भो ?

कौशल्या—असिणिद्धपुत्तप्पसविणी खु अहं। [अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम्।

राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौशल्या ?

कौशल्या—महाराअ ! सा एव मन्दभाइणी खु अहं। महाराजा सैव मन्दभागिनी खल्वहम् ।]

राजा—कौशल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वयातु खलु रामो गर्भे धृतः ।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहतुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥९॥

[**अन्वयः**—मुषितेन्द्रियः अहम् अत्यन्तम् असह्यं ज्वलनोपमं दुःखं हि न सोढुं न एव संहतुं समर्थः ॥९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

कौशल्या—(रोती हुई) महाराज ! अब बहुत अधिक दुःखी होकर अपने को परवश न करें। चौदह वर्ष का समय व्यतीत हो जाने पर उस सीता को और उन दोनों कुमारों को आप निश्चय से देखेंगे ।

राजा—हे ! तुम कौन हो ?

कौशल्या—निश्चय से मैं स्नेह से रहित पुत्र को उत्पन्न करने वाली हूँ ।

राजा—क्या, क्या ? सब लोगों के हृदयों और नयनों को आनन्दित करने वाले राम की माता तुम कौशल्या हो ?

कौशल्या—महाराज ! मैं वही मन्दभागिनी हूँ ।

राजा—कौशल्ये ! तुम निश्चय से गुणवती हो । तुमने ही राम को गर्भ में धारण किया था ।

अर्थ [श्लोक ९]—मेरी इन्द्रियाँ ठगी गयी हैं । मैं अत्यधिक असह्य अग्नि के समान इस दुःख को निश्चय से न हो तो सहने में समर्थ हूँ और न रोकने में समर्थ हूँ ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—मुषितेन्द्रियः मुषितानि वञ्चितानि इन्द्रियाणि करणानि यस्य तादृशोऽहं अत्यन्तमत्यधिकमसह्यं सोढुमशक्यं ज्वलनोपम वह्निसदृशं दुःखं मानासिकपीडां हि निश्चयेन न सोढुं मर्षयितुं, न एव च संहतुं निवारयितुं समर्थः शक्नोमीत्यर्थः । ममेन्द्रियाणां ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च सामर्थ्यं मुषितम् । दुःखमिदं चासह्यं वह्निरिव मां सन्तापयति । दुःखमिदं न मया सोढुं शक्यते नापि च निवारयितुं शक्यते । मे मृत्युरवश्यं भावीति भावः ॥९॥

व्याकरण—अतिक्रान्तः अन्तम् अथ में, अति + अन्त = अत्यन्त । न + √सह + यत् = असह्या ज्वलनेन उपमा यस्य तत् ज्वलनोपमम् । √सह + तुमुन् = सोढुम् । सम + √हृ + तुमुन् = संहतुंम् । मुषितानि इन्द्रियाणि यस्य स = मुषितेन्द्रियः ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

....

(सुमित्रां विलोक्य) इयमपरा का ?

कौशल्या—महाराअ ! वच्छलक्खण [महाराज ! वत्सलक्ष्मण] (इत्यर्धोक्ते) ।

राजा—(सहसोत्थाय) क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः ! न दृश्यते। भोः कष्टम् ।

(देव्यौससम्भ्रममुत्थाय राजानमवलम्बेते)

कौसल्या—महाराअ ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तत्ति वत्तुं मए उवक्कन्दं [महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तु मयोपक्रान्तम्,]

राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने ।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥१०॥

[अन्वयः—तव एव पुत्रः सत्पुत्रः, येन वने नक्तन्दिवं रघुकुलश्रेष्ठः रामः छायया इव अनुगम्यते ॥१०॥

हिन्दी रूपान्तर—

(सुमित्रा की ओर देखकर) यह दूसरी कौन है ?

कौसल्या—महाराज ! पुत्र लक्ष्मण की······(इस प्रकार आधा कहने पर)

राजा—(सहसा उठकर) लक्ष्मण कहाँ है ? कहाँ है ? नहीं दिखायी दे रहा है ? अरे बड़ा कष्ट है ।

(दोनों रानियाँ घबरा कर उठ कर राजा को सहारा देती हैं)

कौसल्या—महाराज ! वत्स लक्ष्मण की माता सुमित्रा हैं, मैं यह कह रही थी ।

राजा—सुमित्रे !

अर्थ [श्लोक १०]—तुम्हारा ही पुत्र उत्तम, उत्तम पुत्र है, जो वन में दिन-रात रघुकुलश्रेष्ठ राम का छाया के समान अनुसरण कर रहा है ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—तव सुमित्रायाः एव पुत्रः सुतः सत्पुत्रः प्रशंसाभाजनं सुत, येन वने अरण्ये रघुकुलश्रेष्ठः रघुवंशावतंसः रामः छायया अनातपेन इव अनुगम्यते अनुस्रियते ॥१०॥

व्याकरण—नक्तं च दिवा च नक्तंन्दिम् । √नज् + क्त = नक्त । √दिव् + का = दिवा ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उपमा । यहाँ लक्ष्मण उपमेय, छाया उपमान, इव उपमावाचक और अनुगम्यते साधारण धर्म हैं ।

का त्वं भोः—इन पदों से राजा के हृदय की असीम पीड़ा व्यञ्जित है । वह उन्मत्त होकर प्रलाप कर रहा है तथा अति परिचितों को भी नहीं पहचान रहा है ।

अस्निग्धपुत्रप्रसविनी—कौसल्या को अत्यधिक पीड़ा है कि राम को कर्त्तव्य अधिक प्रिय है और उसके लिए वह मातृस्नेह की भी अपेक्षा नहीं करता । अस्निग्धं स्नेहशून्यं पुत्र सुतं प्रसूते इति सा अस्निग्धपुत्रप्रसविनी ।

मन्दभागिनी—राम के स्नेह तथा दर्शनों से वञ्चित होकर कौसल्या अपने को अभागिनी ही समझती है।

(प्रविश्य)

कञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः।

राजा—(सहसोत्थाय) अपि रामेण ?

कञ्चुकीयः—न खलु, रथेन।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन ? (इति मूर्छितः पतति)

देव्यौ—महाराअ ! समास्ससिहि समास्ससिहि। [महाराज ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि]।

कञ्चुकीयः—भोः कष्टम्। ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमपदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः। महाराज ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

कञ्चुकीः—महाराज ! अथ किम्।

राजा—कष्टं भो !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः॥११॥

[अन्वयः—यदि शून्यः रथः प्राप्तः, मम मनोरथः भग्नः। दशरथं नेतुं कालेन रथः प्रेषितः॥११॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

कञ्चुकीय—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो। ये आदरणीय सुमन्त्र आ पहुँचे हैं।

राजा—(सहसा उठकर प्रसन्नता से) क्या राम के साथ ?

कञ्चुकीय—नहीं, नहीं, केवल रथ के साथ।

राजा—क्या, क्या केवल रथ के साथ ? (यह कहकर मूर्छित होकर गिर जाता है)

रानियां—महाराज ! आश्वासन रखिये, आश्वासन रखिये।

कञ्चुकीय—हा, कितना कष्ट है। इस प्रकार के विशेष पुरुषों पर भी इस प्रकार की आपत्ति आ पड़ती है, इस प्रकार विधि के विधान का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। महाराज आश्वासन रखिये, आश्वासन रखिये।

राजा—(कुछ आश्वास्ति होकर) बालाके ! क्या सुमन्त्र अकेले ही आये हैं।

कञ्चुकीय—महाराज ! और क्या ?

राजा—अरे, बड़े कष्ट की बात है—

अर्थ [श्लोक ११]—यदि सूना ही रथ आ पहुँचा है, तो मेरा मनोरथ टूट गया है। निश्चय से दशरथ को ले जाने के लिए काल ने रथ को भेजा है।

संस्कृत-व्याख्या—यदि शून्यः रामेण अनधिष्ठितः रथः स्यन्दनः प्राप्तः अत्रायातः, तदा मे मनोरथः रामदर्शनरूपाभिलाषा भग्नः त्रुटितः। अहं पुनः रामं स्वजीवितसर्वस्वरूपं सुतं प्रेक्षितुमसमर्थ एव। इति मृत्युकारणं मे समुपस्थितमितिभावः। नूनं सम्भावयामि दशरथं मां नेतुं मृत्युलोकं प्रापयितुं रथः स्यन्दनः प्रेषितः। कालोऽवश्यमेव नेष्यति माम्। अनेन दशरथस्य मृत्युः निश्चितेति सम्भाव्यते ॥११॥

व्याकरण—प्र + √आप् + क्त = प्राप्त। मनसः रथः मनोरथः। प्र + √ईष् + क्त = प्रेषित। √भञ्ज् + क्त = भग्न।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—भाविक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार। जहाँ भूत अथवा भविष्यत् की घटना की सम्भावना की जाये, वहाँ भाविक अलङ्कार होता है। यहाँ दशरथ ने अपनी मृत्यु की सम्भावना की है; अतः भाविक अलङ्कार है। नूनं पद से सम्भावना का कथन करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। तो शीघ्र ही प्रवेश कराओ।

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

कञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

राजा— धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥१२॥

[अन्वयः—खलु वने तटाकपरिवर्तिनः वाताः धन्याः, ये वने विचरन्तं रामं यथासुख स्पृशन्ति ॥१२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकीय—महाराज जैसा आदेश देते हैं। (निकल जाता है)

राजा—

अर्थ [श्लोक १२]—निश्चय ही वन में तालाबों पर बहने वाले वायु धन्य हैं, जो वन में विचरण करने वाले राम का सुखपूर्वक स्पर्श करते हैं ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—खलु निश्चयेन वने अरण्ये तटाकपरिवर्तिनः तटाकेषु जलाशयेषु परिवर्तिनः परिप्रवहणशीलाः वाताः पवनाः धन्याः सौभाग्यशालिनः, ये वाताः वने विचरन्तं विहरन्तं रामं मे सुतं यथासुखं सुखपूर्वकं स्पृशन्ति परामृशन्ति। रामगात्रमेव सौभाग्यशालित्वमितिभावः। अनेन दशरथस्य आत्मजशरीरालिङ्गनाभिलाषा व्यज्यते ॥१२॥

व्याकरण—धनमर्हति, धन + यत् = धन्य । तटाकेषु परिवर्तनस्य शीलं येषां ते = तटाकपरिवर्तिनः । तट + आकन् = तटाक । परि + √वृत + इनि = परिवर्तिन् । सुखमनतिक्रम्य = यथासुखम् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा । जहाँ अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की प्रतीति हो, वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार होता है । यहाँ अप्रस्तुत बात द्वारा राम के स्पर्श का धन्यत्व बताकर प्रस्तुत दशरथ द्वारा रामस्पर्श की अभिलाषा कही गयी; अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है ।

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)

सुमन्त्र—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा,
स्नेहाद् रामे जातवाष्पाकुलाक्षाः ।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा
विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥१३॥

[**अन्वयः**—स्वानि कर्माणि हित्वा, रामे स्नेहात् जातवाष्पाकुलाक्षाः चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहाः एते भृत्याः विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥१३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर सुमन्त्र प्रवेश करता है)

सुमन्त्रः—(सब ओर देखकर दुःख के साथ)

अर्थ श्लोक १३]—अपने कार्यों को छोड़कर, राम के प्रति स्नेह के कारण आँखों में आँसुओं को भरकर, चिन्ता से दीन होकर शोक से जलते हुए शरीर वाले ये सेवक, रुदन करते हुए राजा की निन्दा कर रहे हैं ॥

संस्कृत-व्याख्या—स्वानि कर्मामि निजनियोगोपयुक्तानि कार्याणि हित्वा परित्यज्य, रामे रामं प्रति स्नेहात् प्रेमवशात् तस्य वियोगाद् हृदयेषु क्लिश्यमानाः जातवाष्पाकुलाक्षाः जातैः समुत्पन्नैः प्रवहमानैः वाष्पैः अश्रुभिः आकुलानि परिप्लुतानि अक्षीणि नयनानि येषां तथाभूताः सन्तः, चिन्तादीना चिन्तया रामस्य ध्यानेन दीनाः विषण्णाः शोकसन्दग्धदेहाः शोकेन पीडया सन्दग्धाः ज्वलन्तः देहाः शरीराणि येषां तथाभूताः सन्तः एते इमे भृत्या सेवकाः विक्रोशन्तं उच्चस्वरेण रुदन्तं पार्थिवं राजानं दशरथं गर्हयन्ति निन्दन्ति । रामवनवासदुःखजर्जरा एते सेवकाः स्वस्वामिनमपि राजानमेव दोषास्पदे कुर्वन्ति ॥१३॥

व्याकरण—भृतिं अर्हति, भृति + यत् = भृत्य । अथवा √भृ + क्यप् = भृत्य । जातैः वाष्पैः आकुलानि अक्षीणि येषां ते जातवाष्पा कुलाक्षाः । जन् + क्त = जात ।

√चिन्त् + णिच् + अङ् + टाप् = चिन्ता। शोकेन सन्दग्धाः देहाः येषां ते = शोकसन्दग्धदेहाः। सम् + √दह् + क्त = सन्दग्ध।

छन्द—इन्द्रवज्रा।

अलङ्कार—परिकर। भृत्यों के लिए साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करने से यहाँ परिकर अलङ्कार है।

(उपेत्य) जयतु महाराजः।

राजा—भ्रात ! सुमन्त्र ! क्व मे ज्येष्ठो रामः ? न हि न हि युक्तमभिहितं मया—

इस श्लोक में दशरथ सुमन्त्र से पूछते हैं क्या मेरे बेटों ने मेरे लिए कोई सन्देश भेजा है

(१५)

क्व मे ज्येष्ठो रामः प्रियसुत सुतः सा क्व दुहिता,
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने।
क्व वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥१४॥

[अन्वयः—प्रियसुत ! मे ज्येष्ठः सुतः रामः क्व ? गुरुजने निरतिशयभक्तिः विदेहानां भर्तुः सा दुहिता क्व ? सौमित्रिः वा क्व ? सकलजनशोकार्णवकरम् आसन्नमरणं हतपितृकं मां ते किम् अपि आहुः ? ॥१४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(समीप आकर) महाराज की जय हो।

राजा—भाई सुमन्त्र ! मेरा बड़ा पुत्र राम कहाँ है ? नहीं-नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा—

अर्थ [श्लोक १४]—मेरे पुत्र से स्नेह करने वाले हे सुमन्त्र ! मेरा वह ज्येष्ठ पुत्र राम कहाँ है ? गुरुजनों के प्रति असीम भक्ति रखने वाली, विदेहों के राजा जनक की वह पुत्री सीता कहाँ है, अथवा लक्ष्मण कहाँ है ? सब व्यक्तियों को शोक के समुद्र में डुबो देने वाले तथा शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होने वाले, दुर्भाग्यशाली पिता मुझ दशरथ के लिए उन्होंने क्या कोई सन्देश दिया है ॥१४॥

संस्कृत व्याख्या—प्रियसुतः प्रियः प्रीतिकरः सुतः मे पुत्रः रामः यस्य तथाभूत हे सुमन्त्र ! मे मम ज्येष्ठः सुतः पुत्र क्व कुत्र वर्तते ? गुरुजने श्वसुरादौ निरतिशयभक्तिः निरतिशया सर्वातिशायिनी भक्तिः श्रद्धा यस्याः सा विदेहानां जनकानां भर्तुः स्वामिनः जनकस्य सा दुहिता पुत्री सीता क्व वर्तते ? वा अथवा सौमित्रिः लक्ष्मणः क्व वर्तते। सकलजनशोकार्णवकरं सकलानेव सर्वानेव जनान् लोकान् अयोध्यानिवासिन इति भावः शोकस्य दुःखस्य अर्णवे समुद्रे करोति निमज्जयति इति तादृशम् आसन्नमरणम् आसन्नं निकटवर्तिमरणं मृत्युः यस्य तं मुमूर्षुमिति भावः, हतपितृकं दुर्भाग्यशालिनं जनकं मां दशरथं ते रामसीतालक्ष्मणाः त्रयोऽपि किन्तु आहुः कथयन्ति स्म ? किमपि तैः ममार्थे सन्दिष्टं न वा ? ॥१४॥

व्याकरण—अयमेषामतिशयेन वृद्धः प्रशस्यो वा अर्थ में प्रशयस्न् + इष्ठन्

(प्रशस्य को ज्य आदेश)—ज्येष्ठ । √दुह् + तृच् = दुहितृ । सकलान् जनान् शोकस्य अर्णवे करोति इति सकलजनशोकार्णवकरत् । अर्णांसि सन्ति अस्मिन्, अर्णस् + व = अर्णव । √कृ + अप् = कर ।

छन्द:—शिखरिणी ।

सुमन्त्रः—महाराज ! मा मैवमङ्गलवचनानिभाषिष्ठाः । अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः । तम् कथ्यताम् । अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यणि । स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुवक्कलाअङ्किदसरीरा बाला वि अबालचरित्ता भत्तुणो सहधम्मआरिणी अम्हे महाराअं च किञ्चि णालवदि ? [(सुमन्त्र ! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाऽप्यबालचारित्रा भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ?

सुमन्त्रः—सर्व एव महाराजम्—।

राजा—न न । श्रोत्ररसायनर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयरेव श्रावय।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—राम इति । अयं रामः । तन्नामश्रवणात् स्पष्ट इव मे प्रतिभाति ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । ततस्ततः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही । रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्ययमक्रमः ।

सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः ?

राजा—रमो, वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम् ।

(15) **रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वात्रापिमैथिली ।**
बहुदोषाण्यरण्या निसनाथैषा भविष्यति ।।१५।।

[अन्वय—अत्र अपि रामलक्ष्मणयोः मध्ये मैथिली तिष्ठतु । अरण्यानि बहुदोषाणि । एषां सनाथा भविष्यति ।।१५।।

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—महाराजा ! इस प्रकार से अमङ्गलसूचक वचन मत कहिये । शीघ्र ही आप उनको देखेगें ।

इस श्लोक में बताया गया है कि वन दोषों से युक्त होते है

राजा—सत्य बात है। मैंने ठीक प्रकार से नहीं कहा है। यह प्रश्न तपस्वियों के लिए उचित नहीं है। तो कहो। क्या तपस्वियों के तप में वृद्धि हो रही है। स्वाधीन वनों में विचरण करती हुई सीता को खेद तो नहीं होता?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुत अधिक वल्कलों से शरीर को सुशोभित करने वाली, बालिका होते हुए भी आदर्श चरित्र वाली, पति के साथ धर्म का पालन करने वाली सीता हमारे लिए और तो कुछ नहीं कह रही है?

सुमन्त्र—सबसे ही महाराज को···।

राजा—नहीं नहीं। मेरे कानों के लिए रसायनरूप तथा आतुर हृदय के लिए ओषधिरूप उन लोगों के नामों को लेकर ही बात सुनाओ।

सुमन्त्र—महाराज जो आदेश देते है। आयुष्मान् राम।

राजा—अच्छा राम। यह राम है। उसका नाम सुनने से ही मुझको वह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। उसके बाद।

सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण।

राजा—यह लक्ष्मण है। उसके बाद।

सुमन्त्र—राजा जनक की पुत्री आयुष्मती सीता।

राजा—यह सीता है, परन्तु राम, लक्ष्मण और सीता, यह क्रम तो ठीक नहीं।

सुमन्त्र—तो कौन सा क्रम ठीक है?

राजा—राम, सीता और लक्ष्मण इस प्रकार से कहो।

अर्थ [श्लोक १५]—यहाँ वन में भी, राम और लक्ष्मण के मध्य में सीता रहे। क्योंकि वन अनेक दोषों, विपत्तियों से भरे होते हैं; अतः इन दोनों के मध्य में रह कर यह सीता रक्षकों से युक्त होकर निर्भय रहेगी ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या—राम-लक्ष्मण-सीताश्चेति क्रमस्यानुचितत्व प्रतिपादनेन सह राजा राम-सीता-लक्ष्मणाश्चेति क्रम एव समुचित इति प्रतिपादयितुमत्रोपपत्तिमाह—अत्र अस्मिन्नरण्येऽपि रामलक्ष्मणयोः रामस्य लक्ष्मणस्य च मध्ये मैथिली सीता तिष्ठतु स्थिता भवतु। एकतो रामः अन्यतश्च लक्ष्मणस्तयोर्मध्ये स्थिता सीता सुरक्षिता भविष्यति; अत एव राम-सीता-लक्ष्मणाश्चेति क्रमः समुचितः। यतः अरण्यानि वनानि बहुदोषाणि बहवः नानाविधाः दोषः भयदायकाः विपत्तयः येषु तादृशानि भवन्ति। यतः तयोर्मध्ये स्थित एषा सनाथा रक्षकपरिपालिता भविष्यति ॥१५॥

व्याकरण—मिथिलायाः अपत्यं स्त्री अर्थ में, मिथिला + अण् + ङीप् = मैथिली। अर्यते शेषे वयसि अर्थ में √ऋ + अन्य (ऋ को अर् गुण) = अरण्य,

छन्दः—अनुष्टुप्।

श्रोत्ररसायनैः······—दशरथ को अपनी सन्तानों का नाम सुन कर ही अत्यधिक सुख और सन्तोष मिल रहा था। इससे उनके कानों तथा हृदय को शान्ति मिलती थी; अतः उसने उसका नामनिर्देशपूर्वक सन्देश सुनाने के लिए कहा।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—अयं रामः ।

सुमन्त्रः—आयुष्मति जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वदेही ।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः ! रामः ! वैदेही ! लक्ष्मण ! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः !

सकृत स्पृशामि वा रामं सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥१६॥

अन्वयः—सकृत् वा रामं स्पृशामि, सकृत वा पुनः दश्यामि । गतायुः अमृतेन इव जीवामि इति मम मतिः ॥१६॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—महाराज जो आदेश दते हैं । आयुष्मान् राम ।

राजा—यह राम है ।

सुमन्त्र—जनकराज की पुत्री आयुष्मती सीता ।

राजा—यह सीता है ।

सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण ।

राजा—यह लक्ष्मण है । हे राम ! हे सीते ! हे लक्ष्मण ! मेरा आलिङ्गन करो ।

अर्थ [श्लोक १६]—एक बार मैं राम का स्पर्श कर लूं अथवा एक बार पुनः उनको देख लूं, तो आसन्नमृत्यु होने पर मैं उसी प्रकार जीवित हो जाऊँ; जैसे कि कोई मरणासन्न व्यक्ति अमृत से जीवित हो जाता है । यह मेरा विचार है ॥१६॥

संस्कृत व्याख्या—राम-सीता-लक्ष्मणानां नामानि श्रुत्वा तेषां स्पर्शदर्शनाभिलाषया पुनरपि राजा निजस्थितमभिप्रायं व्यनक्ति—सकृद् एकवारं यावद् रामं स्वकीयं ज्येष्ठपुत्रं स्पृशामि स्पर्शं करोमि, अथवा सकृद् एकवारं पुनः पश्यामि अवलोकयामि तदा गतायुः आसन्नमृत्युरपि अमृतेन पीयूषेन इव जीवामि जीवितो भवामि । इति मम मतिः व्यवसायात्मिका बुद्धिः वर्तते । रामस्य स्पर्शेन वा दर्शनेन वा मया जीवितव्यमन्यथा मरणमेव मे निश्चितम् ॥१६॥

व्याकरण—गतः तायुः यस्य सः=गतायुः । √इण + उण् + आयु ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उपमा। राम स्पर्श रामदर्शन उपमेयों से अमृत उपमान का सादृश्य दिखाया गया है ।

इस श्लोक में बताया गया है कि राम बिना कुछ बोले ही वन चले गए।

सुमन्त्रः—शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्वं एव महाराज शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः—

(17)

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥१७॥

[अन्वयः—कम् अपि अर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः वाष्पस्तम्भित-कण्ठत्वात् अनुक्त्वा एव वनं गताः ॥१७॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—शृङ्गवेरपुर में रथ से उतर कर अयोध्या की ओर मुख करके खड़े होकर, सभी ने महाराज को सिर से प्रणाम करके निवेदन करना प्रारम्भ किया।

अर्थ [श्लोक १६]—किसी बात को बहुत देर तक सोचकर, कहने के लिये उनके होठ फड़कने लगे, परन्तु आसुँओं से कण्ठ के रुंध जाने के कारण वे बिना कुछ कहे ही वन चले गये ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—कमपि अर्थं पितरि श्रद्धास्नेहवन्तः पितुराश्वासनाय कम्प्यनिर्वचनीय सन्देशनीयं चिरं चिरकालं यावत् ध्यात्वा विचार्य वक्तुं कथयितुं प्रस्फुरिताधराः प्रस्फुरितानि प्रस्यन्दमानानि अधराणि निम्नोष्ठाः येषां तथाभूतो सन्तस्ते जाताः, परन्तु विविभाव वेगैः वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् वाष्पैः प्रहवद्भिर-श्रुभिः स्तम्भिताः जडीभूताः कण्ठाः येषां ते तस्य भावात् अनुक्त्वा तं सन्देशमकथयित्वा एव वनमरण्यं गताः प्रचलिताः। ते चिरं यावत् भवते सन्देशाय विचारितवन्तः। तं संदेशं कथयितुकामा अपि आसन्। परं वाष्पैस्ते अवरुद्धकण्ठत्वाद् वक्तुमसमर्थाः जाताः, अतः अकथयित्वा एव वनं प्रयाताः ॥१७॥

व्याकरण—प्रस्फुरितानि अधराणि येषां ते=प्रस्फुरिताधराः। ध्रियते अनेन अर्थ में न+√धृ+अच्=अधर। न+वच्+क्त्वा=अनुक्त्वा।

छन्दः अनुष्टुप्

अलङ्कार—स्वभावोक्ति। वन जाते समय राम लक्ष्मण-सीता के हृदयावेगों की स्वाभाविक अवस्था का वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः—इससे दशरथ की उन्मत्तता की अवस्था लक्षित होती है। पुत्रों का नाम सुन कर, उनको लगा कि वे सामने ही स्थित हैं। उसने उनको आलिङ्गन में बांधना चाहा।

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः? (इति द्विगुणं मोहमुपगतः)

सुमन्त्र—(ससम्भ्रमम्) बालाके! उच्यताममात्येभ्यः—अप्रतीका-रायामवस्थायां वर्तते महाराज इति।

कञ्चुकीयः—तथा। (निष्क्रान्तः)

देव्यौ—महाराअ ! समस्ससिहि, समस्ससिहि । [महाराज ! समाश्वसि-हि, समाश्वसिहि ।]

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य)

> **अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।**
> **रामं प्रतिगता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥१८॥**

[**अन्वयः**—कौसल्ये ! मे अङ्गं स्पृश । त्वां चक्षुषा न पश्यामि । रामं प्रति-गता बुद्धिः अद्य अपि न निवर्तते ॥१८॥

हिन्दी-रूपान्तर—

राजा—क्या बिना कुछ कहे ही वन चले गये ? (यह कहकर दुगनी मूर्छा) को प्राप्त हो जाता है ।

सुमन्त्र—(घबराकर) बालाके ! मन्त्रियों से कहो—महाराज की अवस्था असाध्य हो गयी है ।

कञ्चुकीय—बहुत अच्छा । (निकल जाता है)

दोनों रानियाँ—महाराज ! आश्वासन रखिये, आश्वासन रखिये ।

राजा—(कुछ आश्वासित होकर)

अर्थ [श्लोक १८]—हे कौसल्ये ! मेरे अङ्ग को स्पर्श करो । तुमको आँख से नहीं देख रहा हूँ । राम के प्रति गयी हुई मेरी बुद्धि अब भी लौट नहीं रही है मेरा विचार राम के प्रति इतना अधिक निमग्न है कि मैं और कुछ देख नहीं सक रहा हूँ ॥१८॥

संस्कृत व्याख्या—हे कौसल्य ! मे अङ्गं गात्रं स्पृश परामृश । येन त्वं मे सन्निहिता इति प्रतीति भवेद् आश्वासितश्चाहं भवेयम् । त्वां चक्षुषा नेत्रेणाहं न पश्यामि अवलोकयामि । रामं स्वकीयं ज्येष्ठं सुतं प्रतिगता स्वयमेव सम्प्राप्ता मे बुद्धिः मतिः अद्य अधुना अपि न निवर्तते प्रत्यागच्छति । यम बुद्धिस्तु रामं गता । अधुनाऽहं बुद्धिरहितो न किमपि कर्तुं विचारयितुं वा समर्थः ॥१८॥

व्याकरण—कौसलस्य अपत्यं स्त्री = कौसल + ष्यञ् + टाप् = कौसल्या ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

\-\-\-\-\-

पुत्र राम ! यत् खलु मया सततं चिन्तितम्—

> **राज्ये त्वामभिषिच सन्नरपतेर्लाभातु कृतार्थाः प्रजाः**
> **कृत्वा त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम्**
> **इत्यादिश्य च ते तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया**
> **कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥१९॥**

[अन्वयः—त्वां राज्ये अभिषिच्य, प्रजाः सन्नरपतेः लाभात् कृतार्थाः कृत्वाः, त्वत्सहजान् आत्मनः समानविभवान् सन्ततं कुरु इति ते आदिश्य, इतः तपोवनं गन्तव्यम् इति । अहो एतया कैकेय्या तत् निःशेषम् एकक्षणे हि अन्यथा-कृतम् ॥१८॥

हिन्दी रूपान्तर—

पुत्र राम ! जिस बात को मैं सदा से सोचता रहा था—

अर्थ [श्लोक १८]—तुमको राजसिंहासन पर अभिषिक्त करके प्रजाओं को उत्तम राजा को प्राप्त करने से सफल मनोरथ करके, अपने सगे भाइयों को अपने समान ऐश्वर्यशाली सदा बनाये रखो, इस प्रकार तुमको आदेश देकर, यहाँ से मुझको तपोवन जाना है, यह सोचता था, परन्तु अहो, इस कैकेयी ने उस सम्पूर्ण मेरे विचार को एक क्षण में ही निश्चय से उलट कर दिया । अर्थात् तुमको राज्य देने प्रजाओं को कृतार्थ करने, भाइयों को समान रूप से ऐश्वर्यशाली बनाने और मेरे तपोवन को इन सारी योजनाओं को इस कैकेयी ने दो वर माँग कर उलटा कर दिया ॥१८॥

संस्कृत व्याख्या—त्वां ज्येष्ठं सुतं रामं राज्यपदे अभिषिच्य अभिषिक्तं कृत्वा राजसिंहासनारूढं विधाय, प्रजाः लोकान् सन्नरपतेः प्रशसनीयस्य पार्थिवस्य लाभात् प्रजाः प्रकृतिजनाः कृतार्थाः सफलाभिलाषिणः कृत्वा विधाय, त्वां प्रजाहिता-भिलाषिणं राजानमवाप्य प्रजाजनाः कृतकृत्या भविष्यन्ति इति मया विचारितम् । त्वत्सहजान् त्वया सह जातान् भरतादीन् त्रीनपि भ्रातॄ आत्मनः स्वस्य समान-विभवान् समैश्वर्यान् सन्ततं निरन्तरं कुरु विधेहीति ते त्वामादिश्य अज्ञाप्य, सर्वेऽपित्रय भ्रातरः भरतलक्ष्मणशत्रुघ्नाः समानरूपेण त्वया सह भोग्यवस्तुसम्पदाद्यधिकारिणो भवेयुरिति मे मनस अभिलाषा त्वयि च आदेशः' इति कार्याणि निष्पाद्य इतः अयोध्यायाः तपोवनं तपोऽनुष्ठानाय किमपि समुचितं काननं गन्तव्यमित्येव मया सततं चिन्तितम् । परमहो इति आश्चर्ये एतया अनया कैकेय्या भरतस्य मात्रा तत् निःशेषं सम्पूर्णरूपेण मे विचारितं एकक्षणे एकस्मिन्नेव क्षणे हि निश्चयेन अन्यथाकृतम् विपरीततां नीतम् । मया विचारितमासीद् यदहं रामं राजसिंहासनारूढं कृत्वा, प्रजानः कामनां पूरयित्वा, चत्वारोऽपि भ्रातरः समानरूपेण भोगैश्वर्यादीनां भोगभोजिनः सन्तां परस्परस्नेहादरवशगताः भवेयुः । तदनन्तरमहं निश्चिन्तमनसा इक्ष्वाकुकुल परम्परा-नुसारं तपोवनं गत्वा तपस आचरणं करिष्यामि । परमनया कैकेय्या द्विवरप्रार्थनया सर्वमपिमेचिन्ततं प्रतिकूलतां गतम् । न रामो राज्येऽभिषिक्तः, न प्रजानां रामराज-पदप्रतिष्ठाकामना कृतकरयतां गत । न च चतुर्णामपि भ्रातॄणां परस्परस्नेहादर-सम्भावनावशिष्टा न चाहं चरमे वयसि इक्ष्वाकुकुलपरम्परापालने क्षमोऽभवम् । कैकेय्या सर्वमेव वैपरीत्यतां नीतम् ॥१८॥]

व्याकरण—अभि + √सिच् + क्त्वा + ल्यप् = अभिषिच्य । त्वया सह जातान् = त्वत्सहजान् । युष्मद् + सह + जन् + ड = त्वत्सहज । सम् + √तन् + क्त = सन्तत ।

छन्द:—शार्दूलविक्रीडित ।

अलङ्कार—विषम । कर्त्ता को क्रिया का फल प्राप्त न होकर अनर्थ प्राप्त हो जावे, तो विषम अलङ्कार होता है । यहाँ राजा ने जिन बातों को सोचा था, वे तो प्राप्त हुई नहीं, अपितु उससे उलटा हो गया; अतः यहाँ विषम अलङ्कार है ।

सुमन्त ! उच्यतां कैकेय्याः—

गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्र् पापं सफलमस्त्विति ॥२०॥

अन्वय:—रामः गतः ते प्रियम् अस्तु । अहम् अपि जीवितैः त्यक्तः क्षिप्रं पुत्रः आनीयताम् । पापं सफलम् अस्तु इति ॥२०॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र ; कैकेयी से कहो—

अर्थ [श्लोक २०]—राम चला गया है । तुम्हारा प्रिय होवे । मुझको भी प्राणों ने छोड़ दिया है । शीघ्र ही अपने पुत्र को ले आओ । तुम्हारा पाप सफल होवे । राम का चला जाना ही कैकेयी को प्रिय था । वह हो गया । अब कैकेयी को चाहिये कि अपने पुत्र भरत को शीघ्र बुलाने और राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दे । इस प्रकार उसका पाप-कपट का आचरण सफल हो गया । क्योंकि अब प्राणों से मैं वियुक्त हो रहा हूँ; अतः रोक-टोक भी नहीं कर सकता ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—रामः कौसल्यासुतः वनमरण्यं गतः प्रयातः । अहं दशरथोऽपि पुत्रदर्शनाभावे जीवितैः प्राणैः त्यक्तः विरहितः कृतः । प्राणाश्च मे सद्य एव निर्गमिष्यन्ति । तदान्तरं हे कैकेयि ! क्षिप्रं शीघ्रमेव पुत्रः सुतो भरतस्त्वया आनीयताम् अत्रायोध्यायामानेतव्यः, स च राजसिंहासनारूढो भविष्यति । इत्थं च तस्याः पापं कपटाचरणषड्यन्त्ररूपकं पातकं सफलं फलेन सहितम् अस्तु । कैकेय्या अभिलाषा पूरिता । राम वनं गतो, भरतेन च सिंहासनमधिरुह्यते ॥२०॥

व्याकरण—√त्यज् + क्त = त्यक्त । फलेन सह = सफलम् ।

छन्द:—अनुष्टुप् ।

अप्रतीकारायां दशाम्—राजा दशरथ को प्रलाप की तथा मूर्छा की अवस्था में देखकर सुमन्त्र को निश्चय हो गया कि ये असाध्य अवस्था में पहुँच गये हैं ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

कञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आपस्तावत् ।

इस श्लोक में बताया गया है कि रोग की अन्तिम सीमा आ गई है।

कञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। इमा आपः।

राजा—(आचम्यावलोक्य)

(२१.) **अयममरपतेः सखा दिलीपो रघुरयमत्रभवानजः पिता मे।**
किमभिगमनकारणं भवद्भिःसह वसने समयो ममापि तत्र ॥२१॥

[अन्वयः—अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः। अयं रघुः अत्रभवान् मे पिता अजः। अभिगमनकारणं किम् ? तत्र भवद्भिः सह वसने मम अपि समयः ॥२१॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—महाराज जो आदेश देते हैं।

राजा--(ऊपर की ओर देखकर) अरे ! राम की कथा को सुनकर जले हुए हृदय वाले मुझको आश्वासित करने के लिए पितर आ गये हैं। यहाँ कौन है ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकीय—महाराज की जय हो।

राजा—जल ले आओ।

कञ्चुकीय—महाराज का जैसा आदेश है (निकल कर और प्रवेश करके) महाराज की जय हो। ये जल है।

राजा—(आचमन करके और देखकर)

अर्थ [श्लोक २१]—ये इन्द्र के मित्र दिलीप हैं। ये रघु हैं ये आदरणीय मेरे पिता अज हैं। इनके आने का कारण क्या है ? वहाँ आपके साथ रहने का मेरा भी समय आ गया है ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं पुरो दृश्यमानः अमरपतेः इन्द्रस्य सखा मित्रं दिलीपः तन्नाम्ना प्रसिद्धो मे प्रपितामहः। अयं च रघुः दिलीपपुत्रो मे पितामहः। अत्रभवान् आदरणीयोऽयं च मे पिता जनकः अजः। एतेषाम् अभिगमनकारणम् अभिगमनस्य अत्रागमनस्य कारणं हेतुः किं सम्भवति ? प्रतीयते, तत्र भवद्भिः आदरणीयैरेभिः पितरैः सह सार्द्धं वसने पितृलोके निवासे मम मे दशरथस्य अपि समयः कालः समुपस्थितः। मम मरणवेला समुपस्थिता। इमे मे पितरः दृश्यन्ते। मयापि तत्रैव पितृलोके गन्तव्यं तैश्च सह निवासो मे भविष्यति ॥२१॥

व्याकरण—अमराणां पतिः=अमरपति। पाति रक्षति=$\sqrt{}$पा+इति=पति। अभि+$\sqrt{}$गम्+ल्युट् (अन्)=अभिगमन।

छन्दः—पुष्पिताग्रा।

....

राम ! वदेहि ! लक्ष्मण ! अहमितः पितृणां सकाशं गच्छामि। हे पितरः ! अयमहमागच्छामि। (मूर्च्छया परामृष्टः)

(कञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति)

सर्वे—हा हा महाराजः । हा हा महाराजः [हा हा महाराओ । हा हा महाराओ]

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयोऽङ्कः

हिन्दी रूपान्तर—

हे राम ! हे सीते ! हे लक्ष्मण ! मैं यहाँ से पितरों के पास जा रहा हूँ। हे पितरो ! यह मैं आता हूँ। (मूर्छित हो जाता है)।

(कञ्चुकी पर्दा डाल देता है)

सब—हाय हाय महाराज। हाय हाय महाराज।

(रङ्गमञ्च से सब निकल जाते हैं)

द्वितीय अङ्क पूरा हुआ

रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयम्—रामस्य कथया श्रवणेन सन्दग्धं हृदयं यस्यतम्। सम्+दह्+क्त=सन्दग्ध। राम की कथा सुनकर दशरथ के हृदय में तीव्र जलन होने लगी। इससे दशरथ की मृत्यु होने वाली है, यह ध्वनित होता है।

आगताः पितरः—हिन्दू परलोकविद्या के विश्वासों के अनुसार एक पितृलोक है, जहाँ मनुष्य के पूर्वज माता-पिता, दादा, परदादा आदि निवास करते हैं। वे अपने वंशजों का ध्यान रखते हैं। पितरों की सन्तृप्ति के लिए श्राद्ध आदि कर्म किये जाते हैं। मृत्यु का समय उपस्थित होने पर वे पितर आकर उपस्थित हो जाते हैं और अपने वंशज को साथ ले जाते हैं। दशरथ की मृत्युवेला उपस्थित हो गई है; अतः उसको अपने पूर्वज दिखायी दे रहे हैं।

आपस्तावत्—भारतीय विश्वासों के अनुसार मरणासन्न व्यक्ति के मुख में जल डालना चाहिये; अतः कवि ने मरणासन्न दशरथ को जल का आचमन कराया है।

यवनिकास्तरणं करोति—नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार मृत्यु का दृश्य रंगमंच पर नहीं दिखाना चाहिये। यहाँ दशरथ की मृत्यु हो रही है। उसके मूर्छित होते ही कञ्चुकी ने पर्दा डाल दिया है, जिससे दशरथ की मृत्यु को सामाजिक देख न सकें।

इति भासविरचितप्रतिमानाटके डा० कृष्णकुमारकृतव्याख्यायाः

द्वितीयोऽङ्कः समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकारः—(सम्मार्जनादीनि कृत्वा) भोदु, दाणिं किदं एत्थ कय्यं अय्यसम्भवअस्स आणत्तं। आव मुहुत्तं सुविस्सं [भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसम्भवकस्याज्ञप्तम्। यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि।] (स्वपिति)

(प्रविश्य)

भटः—(चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अङ्को दासीए पुत्त ! किं दाणिं कम्मं न करोसि ? [अङ्को दास्याः पुत्र ! किमिदानीं कर्म न करोषि ?] (ताडयति)।

सुधाकारः—(बुद्ध्वा) तालेहि मं तालेहि मं। [ताडय मां ताडय माम्।]

भटः—ताडिदे तुव किं करिस्ससि ? [ताडिते त्वं किं करिष्यसि ?]

सुधाकारः—अनण्णस्स मम कत्तवीअरस विअ बाहुसहस्स णत्थि [अधन्यस्य मम कार्त्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति।]

भटः—बाहुसहस्सेण किं कय्यं ? [बाहुसहस्रेण किं कार्यम् ?]

सुधाकारः—तुवं हणिस्सं। [त्वां हनिष्यामि]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर सुधाकार प्रवेश करता है)

सुधाकार—(झाड़ू लगाने आदि सफाई के काम करके) अच्छा, अब मैंने यहाँ वह सब काम कर लिया है, जिसके लिए आर्य सम्भवक ने आदेश दिया था। तो मुहूर्त भर के लिए सोऊँगा (सो जाता है)।

(प्रवेश करके)

भट—(चेट के समीप जाकर और उसको पीट कर) अरे, दासी के पुत्र ! अब काम क्यों नहीं कर रहे हो ? (पीटता है)।

सुधाकार—(जाग कर) मुझको पीटो, मुझको पीट लो।

भट—पीटने पर तुम क्या कर लोगे ?

सुधाकार—मुझ अभागे के पास कार्तवीर्य के समान हजार भुजाएँ नहीं हैं।

भट—हजार भुजाओं से तुमको क्या करना है ?

सुधाकार—तुमको मार डालूँगा।

टिप्पणी—

सुधाकार—सुधां करोति अर्थ में, सुधा + कृ + अण् = सुधाकार। सुधा = चूना। मकानों की दीवारों पर चूने की सफेदी करने वाले को सुधाकार कहा गया है। दशरथ की मृत्यु हो चुकी है। उसकी प्रतिमा को प्रतिमागृह में स्थापित कर दिया गया है। वहाँ की सफाई करने वाला यह सुधाकार है।

अङ्को--किसी को क्रोध से पुकारने में इस निपात का प्रयोग किया जाता है।

दास्याः पुत्रः—यह निन्दार्थक पद है। किसी निम्न कोटि के व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है।

कार्तवीर्यस्य—प्राचीन भारतीय इतिहास में राजा कार्तवीर्यार्जुन की बहुत प्रसिद्धि है। इसकी राजधानी माहिष्मती थी। यह अत्यधिक शक्तिशाली होने से सहस्रबाहु कहलाता था। परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का यह साहू था। जमदग्नि की मृत्यु का यह कारण बना। परशुराम ने इसका वध करके २१ बार क्षत्रियों का विनाश किया। पुराणों में कार्तवीर्यार्जुन का नाम स्मरण शुभ माना गया है तथा उसके वित्त का नाश नहीं होता—

कार्तवीर्यार्जुनोनाम राजा बाहुसहस्रभृत्।
योऽस्य सङ्कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः।
नतस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते ध्रुवम्॥

भटः—एहि दासीए पुत्त ! मुदे मुञ्चिस्सं। [एहि दास्याः पुत्र ! मृते मोक्ष्यामि।] (पुनरपि ताडयति)

सुधाकारः—(सदित्वा) सक्कं दाणिं भट्टा ! मे अवराहं जाणिदुं ! शक्यमिदानीं भर्तः ! मेऽपराधुं ज्ञातुम् ?

भटः—णत्थि किल अवराहो णत्थि ? ण मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जबिब्भट्ठकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिणो दसरहस्स पडिमागेहं दट्ठुं अज्ज कौसल्लापुरोएहि सव्वेहि अन्तेउरेहि इह आअन्तव्वं त्ति। एत्थ दाणिं तुए किं किदं ? [नास्ति किलापराधो नास्ति ? ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्त पुरैरिहागन्तव्यमिति। अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ?]

सुधाकारः—पेक्खदु भट्टा। अवणादकबोदसन्दाअण दाव गब्भगिहं। सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ। औसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि। पइण्णा बालुआ। एत्थ दाणिं मए किं ण किद ? [प्रेक्षतां भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम्। सौधवणकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा बालुकाः। अत्रेदानीं मया किं न कृतम्। ?]

भटः—जइ एव्वं विस्सत्थो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि। [यद्येवं विश्वस्तो गच्छ। यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि।]

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

हिन्दी रूपान्तर—

भट—अरे, दासी के पुत्र ! यहाँ आ। तुझको मारकर ही छोड़ूँगा। (फिर पीटता है)।

सुधाकार—(रोकर) हे स्वामिन् ! तो क्या मैं अपना अपराध जान सकता हूँ।

भट—नहीं है ! निश्चय से तुम्हारा क्या अपराध नहीं है ! क्या मैंने यह सन्देश नहीं दिया था कि स्वामिपुत्र राजकुमार राम के राज्य से भ्रष्ट होने के कारण उत्पन्न हुए दुःख से स्वर्ग चले गये महाराज दशरथ के प्रतिमागृह को देखने के लिए आज, कौशल्या और उनके साथ अन्तःपुर की स्त्रियों ने यहाँ आना है। यहाँ अब तक तुमने क्या किया है ?

सुधाकार—स्वामी देख लें। गर्भगृह में से तो कबूतरों के घोंसले हटा दिये है। दीवारों पर चूने की सफेदी करा कर उस पर चन्दन के थप्पे लगा दिये हैं। दरवाजों को पुष्पों की मालाएँ लटका कर सजा दिया है। चारों ओर रेत बिछा दी है। यहाँ मैंने अब तक क्या नहीं किया है !

भट—यदि ऐसा है, तो निश्चिन्त होकर चले जाओ जब तक मैं भी इस सारी बात को मन्त्री महोदय से निवेदन कर दूँ।

(दोनों निकल जाते हैं)

(प्रवेशक पूरा होता है)

राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन—राज्यात् विभ्रष्टेन कृत यः सन्तापस्तेन। राम के राज्य से भ्रष्ट होकर वन चले जाने पर दशरथ को इतनी पीड़ा हुई कि उनकी मृत्यु हो गयी।

दशरथस्य प्रतिमागृहम्—भास ने संकेत दिया है कि उनके युग में यह रिवाज था कि राजा या अन्य अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की मृत्यु हो जाने पर, नगर के बाहर मन्दिर बना कर उसकी प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया जाता था। विशिष्ट समयों पर उसके सम्बन्धी प्रतिमागृह में आकर उसका पूजन करते थे। दशरथ की मृत्यु होने पर उनकी प्रतिमा नगर के बाहर प्रतिमागृह में प्रतिष्ठित कर दी गयी, जहाँ कि उनके पूर्वजों—दिलीप, रघु, अज आदि की प्रतिमाएँ थीं। इस प्रकार की परम्परा रामायण-युग में नहीं रही होगी। वाल्मीकि ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

अपनीतकपोतसन्दानकम्—अपनीतानि कपोतानां सन्दानकानि यस्मात् तथा-भूतम्। सम् + $\sqrt{}$दो + ल्युट् (अन) + क = सन्दानक = घोंसला। बहुत समय से सफाई न होने के कारण कबूतरों ने प्रतिमागृह में घोंसले बना लिए थे। इससे प्रतीत होता है कि दशरथ का स्वर्गवास हुए काफी समय हो चुका है।

सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाः—सौधे वर्णे के दत्ताः चन्दनस्य पञ्चाङ्गुला यासु ताः। दीवारों को सजाने के लिए उन पर चूने की पुताई करके चन्दन के थप्पे लगाये जाते थे।

अवसक्तमाल्यदामशोभीनि—अवसक्तैः माल्यानां दामभिः शोभन्ते इति. तादृशानि। दरवाजों को पुष्पों की मालाएँ लटका कर सजाया जाता था।

प्रवेशक—रूपक के दो अङ्कों के मध्य की घटना की सूचना देने के लिए इनके मध्य में प्रवेशक की योजना की जाती है। प्रवेशक में केवल निम्न कोटि के पात्रों का ही प्रयोग किया जाता है। इसका लक्षण है—

यन्नीचैः केवलं पात्रैर्भाविभूतार्थसूचनम्।
अङ्कयोरुभयोर्मध्ये स विज्ञेयः प्रवेशकः॥

यहाँ द्वितीय अंक के तथा तृतीय अंक के मध्य हुई घटना की सूचना दी गयी है कि दशरथ की मृत्यु हो चुकी है। उनकी प्रतिमा का प्रतिमागृह में स्थापित कर दिया गया है। तृतीय अंक में ननिहाल से अयोध्या लौट कर भरत पहले प्रतिमागृह में जाते हैं। वहाँ दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनको पिता की मृत्यु, राम वनवास आदि घटनाओं का बोध होता है।

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः—(सावेगम्) सूत! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि। श्रुतं मया दृढमकल्पशरीरो महाराज इति। तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः— हृदयपरितापः खलु महान्।
भरतः— किमाहुस्तं वैद्याः।
सूतः— न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।
भरतः— किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि
सूतः— भूमौ निरशनः
भरतः— किमाशास्याद्
सूतः— दैवं
भरतः— स्फुरति हृदयं वाह्य रथम्॥१॥

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर रथ पर बैठे हुए भरत और सारथि प्रवेश करते हैं)

भरत—(आवेग में भरकर) हे सारथे! चिरकाल तक मामा के घर रहने के कारण मुझको अयोध्या का वृत्तान्त विदित नहीं है। मैंने सुना है कि महाराज का शरीर बहुत अधिक अस्वस्थ है। तो कहो—

मेरे पिता को कौन-सा रोग है !

सूत—निश्चय ही हृदय में बहुत अधिक पीड़ा है।

भरत—वैद्य उसके लिए क्या कहते हैं ?

सूत—निश्चय ही वहाँ अयोध्या में निपुण वैद्य नहीं हैं।

भरत—वे क्या भोजन करते हैं और कहाँ सोते हैं।

सूत—भूमि पर सोते हैं और भोजन नहीं करते।

भरत—उनके अच्छे होने की आशा क्या है ?

सूत—दैव ही जानता है।

भरत—हृदय धड़क रहा है। रथ को हाँको।

संस्कृत व्याख्या—भरतः पृच्छति—मे पितुः जनकस्य दशरथस्य कः व्याधिः रोगः वर्तते ! सूत उत्तरति, खलु निश्चयेन महान् अत्यधिकः हृदयपरितापः हृदये पीडा वर्तते। पुनः भरतः पृच्छति—तं तस्य मे पितुर्विषये वैद्याः चिकित्सकाः किम् आहुः कथयन्ति, स स्वस्थो भविष्यति वा न वा ? सूत उत्तरति—तत्र अयोध्यायां निपुणाः कुशलाः भिषजः चिकित्सकाः खलु निश्चयेन न सन्ति, येन तस्य साध्यासाध्यताया निश्चयं कर्तुं शक्येत। भरतः पुनः पृच्छति—आहार भोजनं किं भुङ्क्ते भोजने तेन कानि भोज्यानि पथ्यवस्तूनि भोज्यन्ते, शयनमपि शय्यायाश्चापि कः प्रबन्धः ? सूत उत्तरति—भूमौ पृथिव्यामेव शेते, निरशनः अशनेन भोजनेन च रहितः स वर्तते। भूमौ स्वपिती, भोजनं च न भुङ्क्ते इत्यर्थः। भरतः पुनरपि पृच्छति—किम् आशा स्याद् तस्य मे पितुः जीविताशा सम्भवति न वा ? सूत उत्तरति—दैवम्। विधिरेव जानाति तस्य जीविताशाविषये। नाहं किमपि कथयितुं पारयामि। सूतस्योत्तरैरतिसमाकुलहृदयो भरतस्त्वरयितुं निर्दिशति—हृदयं स्फुरति त्वरया कम्पते पितुर्दर्शनलालसया; अतः रथं स्यन्दनं तीव्रगत्या वाहय संचालय। सूतः जानाति दशरथस्यः स्वर्गवासविषयो परं स भरतं सूचयतुं न समर्थः; अतः भरतस्य प्रश्नान् व्यंग्यार्थविशेषैरेवोत्तरयति ॥१॥

व्याकरण—विविधा आधयो यस्सात् = वि + आ + $\sqrt{}$धा + कि = व्याधि। निरशनः--निर्गतम् अशनं यस्य स = निरशनः। $\sqrt{}$अश् + ल्युट् (अन) = अशन।

छन्दः——शिखरिणी।

अलङ्कार—मीलित। तुल्य लक्षण वस्तु से अन्य वस्तु के छिप जाने पर मीलित अलंकार होता है। यहाँ भूमौ, निरशनः' दैवम् आदि पदों से दशरथ का मरण व्यञ्जित होने पर यह रोग की अनिर्वचनीयता के कथन में छिप जाता है; अतः यहाँ मीलित अलंकार है।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं वाहयति)

भरतः—(रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः। ते ते—

इस श्लोक में भरत के रथ का वर्णन किया गया है!

(7)

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धतं पतति पुरतो नानुपतति ॥२॥

[अन्वयः—द्रुतरथगतिक्षीणविषया द्रुमाः धावन्ति इव। उद्वृत्ताम्बु नदी इव मही नेमिविवरे निपतति। अरुणां व्यक्तिः नष्टा। जवात् चक्रवलयं नष्टम् इव। अश्वोद्धूतं रजः पुरतः पतति, न अनुपतति ॥२॥

हिन्दी रूपान्तर—

सूत—आयुष्मान् जैसा आदेश देते हैं। (रथ को तेजी से हाँकता है)

भरत—(रथ के वेग को देखकर) निश्चय ही रथ का वेग आश्चर्यजनक है। ये तो—

अर्थ [श्लोक २]—रथ की तीव्र गति होने के कारण शीघ्र ही आँखों से ओझल होने वाले वृक्ष मानों दौड़ से रहे हैं। भंवरों से भरे जल से युक्त नदी के समान पृथिवी रथ की धुरी के छिद्र में मानों घुसी जा रही है। पहियों के अरे अलग-अलग नहीं दिखायी दे रहें हैं। वेग के कारण रथ के पहिये का घेरा रुका हुआ-सा लगता है। घोड़ों के खुरों द्वारा उड़ाई जाती हुई धूल सामने तो गिर रही है, परन्तु पीछे नहीं आती। रथ के अत्यधिक वेग के कारण इस प्रकार का अनुभव हो रहा है ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—रथस्य वेगः आश्चर्यकरः, यतः—द्रुतरथगतिक्षीणविषया द्रुतया अति शीघ्रया रथस्य स्यन्दनस्य गत्या संचलनेन क्षीणः अल्पीभूतः विषयः नयन-गोचरत्वं येषां ते वृक्षाः द्रुमाः धावन्ति सवेगं गच्छन्ति इव। रथवेगमहिम्ना दूरमपस-र्पन्तो द्रुमाः नयनागोचरतां सम्प्राप्ताः धावन्त इव प्रतीयन्ते। उद्वृत्ताम्बुः उद्धृतानि समुद्भ्रान्तानि अम्बूनि जलानि यस्यां तादृशी जलावर्तसम्भृता नदी सरिता सेव मही पृथिवी नेमिविवरे रथप्रधिच्छिद्रे निपतति प्रविशति। प्रविशन्तीव प्रतिभाति। अरव्यक्तिः अराणां नेमिनाभिमध्यगतानां दण्डाकाराणां रथावयवानां व्यक्तिः पृथगवभासमानता नष्टा तिरोधानं प्राप्ता। रथवेगेन अराः न पृथग्रूपेणावभासन्ते। जवाद् रथस्य वेगात् चक्रवलयं चक्रस्य रथपरिधेः वलय मण्डलं गतिरहितमिव प्रतीयते। अस्य भ्रमणं नोपलक्ष्यते। अश्वोद्धूतम् अश्वैः घोटकैस्तेषां खुरैरित्यर्थः उद्धूतम् उत्क्षिप्तं रजः धूलिः पुरतः सम्मुखमग्रे पतति न अनुपतति अनुगच्छति। निमेषमात्रेणैव रथद्धूता धूलिः रथवेगहेतोः अनुपतनं समुत्सृज्य रथसमक्षमेवागच्छति ॥२॥

व्याकरण—द्रुतया रथस्य गत्या क्षीणः विषयः येषां ते + द्रुतरथगतिक्षीणविष-या। विषिण्वन्ति स्वात्मकतया विषयिणं संबध्नन्ति अर्थ मे, वि + √सि + अच् = विषय। द्रुःशाखा अस्ति अस्य = द्रु + म = द्रुम। √मह् + अच् + ङीप् = मही। अराणां व्यक्तिः—अरव्यक्ति। वि + √अञ्ज् + क्तिन् = व्यक्ति। अश्वोद्धूतम्। उत् + धू + क्त = उद्धूत। पूर्व + अतम् (पुर् आदेश) = पुरतः। अश्वैः उद्धूतम् =

छन्दः—शिखरिणी।

अलंकार—स्वभावोक्ति तथा उसके अङ्गभूत उपमा और उत्प्रेक्षा। धावन्ति इव, स्थितम् इव, में उत्प्रेक्षा अलंकार है। नदी इव मही में उपमा अलंकार है। अति

तीव्र गति वाले रथ पर बैठे व्यक्ति को दृश्य दिखायी देता है; अतः स्वाभाविक अवस्था का वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

अकल्पशरीर—अकल्पं अस्वस्थं शरीरं यस्य स अकल्पशरीरः। कला + यत् = कल्प। न + कल्प = अकल्प।

सूतः—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम्।

भरतः—अहो नु खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः। सम्प्रति हि— इस श्लोक में भरत अपने आपको अयोध्या में गया हुआ देख रहे हैं।

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥३॥

[अन्वयः—तत्र पश्यामि। पितुः पादयोः शिरः पतितम् इव, स्निह्यता राज्ञा समुत्थापित इवं अस्मि। भ्रातरः त्वरितम् उपगताः इव, मातरः माम् अश्रुभिः क्लेदयन्ति इव। सदृश इति, महान इति, व्यायतः च इति भृत्यैः सेवया अहं स्तुतः इव। आत्मनः वेषं भाषां च सौमित्रिणा परिहसितम् इव ॥३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सूत—आयुष्मन् ! वृक्षों के घना तथा हरा-भरा होने से प्रतीत होता है कि अयोध्या समीप होगी।

भरत—अहो, आत्मीयजनों के दर्शनों के लिए मेरे मन को निश्चय ही उतावला हो रहा है। क्योंकि अब—

अर्थ श्लोक ३]—वहाँ अयोध्या में जाकर अपने आपको मानों इस प्रकार का देख रहा हूँ—पिता के चरणों में मैंने मानों सिर रख दिया है। स्नेह करते हुए ने मुझको मानों ऊपर उठा लिया है। भाई लोग मानों शीघ्रता से मेरे पास आ गये हैं। माताएँ मुझको मानों आँसुओं से भिगो रही हैं। ये पहले के ही समान हैं, ये पहले की अपेक्षा बड़े हो गये हैं और ये पहले की अपेक्षा अधिक विशाल शरीर वाले हो गये हैं, इस प्रकार कहकर सेवक लोग मानों सेवा करके मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। मेरी ननिहाल केकय देश के भिन्न वेष को और भाषा को देखकर लक्ष्मण मानों मेरा परिहास कर रहा है। अयोध्या में पहुँचने पर किस प्रकार का व्यवहार और स्वागत होगा, इस प्रकार कल्पनाएँ रथ पर स्थित भरत कर रहे हैं ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—तत्र गत्वा अयोध्यायामहमिदं पश्यामि। अयोध्यायां राजभवने पितरं गत्वा सर्वे बान्धवजनाः कम चिरादागतस्ययं सेविष्यन्ते—पितुः जनकस्य

पादयो: चरणयो: शिर: मम मस्तिष्कं पतितम् इव । प्रथमं तावदहं पितुश्चरणयो: शिर: पातयिष्यामि । स्निग्धता वात्सल्यभावसम्भृतेन स्नेहपूर्णेन राज्ञा नरपतिना दशरथेन समुत्थापित: इव अस्मि पादाभ्यामाकृष्य उत्थाप्य अङ्कमरोपितोऽस्मि । राजा पादपतितं मां स्नेहादाकृष्य स्वाङ्कमारोपयिष्यति । भ्रातर: सहजा: त्वरितं शीघ्रमेव तत्क्षणमित्यर्थ: उपगता समीपमायाता इव । ममागमनस्य समाचारं श्रुत्वा त्रयोऽपि भ्रातर: स्नेहादरभावसम्भृता: तत्क्षणमेव मां सभाजयितुं समीपमागमिष्यन्ति मातर: तिस्रोऽपि जनन्य: मां भरतम् अश्रुभि: नयनजलैः क्लेदयन्ति आर्द्रयन्ति इव । समानरूपेण तिस्रोऽपि जनन्य: मयि स्नेहशीला: । चिरादागतं दृष्टं च मामलिङ्गय स्नेहाश्रूणि प्रवाहयन्त्य: माम् आर्द्रयिष्यन्ति । सदृश: पूर्वसमान एव अहमिति, महान् पूर्वतोऽस्याकार: महान् संजात: इति, व्यायत: पूर्वतोऽयं विशालाकार: संजाता इति कथयद्भि: भृत्यै: सेवकै: सेवया परिचर्यया अहं स्तुत: प्रशंसित: इव । भृत्या: मामवलोक्य सेविष्यन्ते । केचित् कथयिष्यन्ति, अय भर्तृदारक: यथापूर्वमेव वर्तते, न किमप्यत्र शरीरे परिवर्तनं जातम् । अन्ये कथयिष्यन्ति यदयं मतुलकुले वसन् पूर्वतोमहान् संलक्ष्यते । अपरे च कथयिष्यन्ति यदस्य वपु: व्यायत: विशालाकार: संजात: । इत्थं च मामुपलक्ष्य सेवां कुर्वन्तस्ते मम प्रशंसां करिष्यन्ति । आत्मन: स्वस्य मम वेषं कैकयदेशोचितवस्त्रादिकं भाषां तद्देशीयां भाषां चावलोक्य सौमित्रिणा लक्ष्मणेन परिहसितमिव लक्ष्मण: मां परिहसिष्यति एव । चिरकालं यावत् कैकयदेशवासान्मे वेश: भाषा च तदनुकूला वर्तते । तदुपलक्ष्य लक्ष्मण: मां परिहसिष्यति ॥३॥

व्याकरण—सम + उत + √स्था + णिच् (पुक् का आगम) + क्त = समुत्थापित । वि + आङ् + √यन् + क्त = व्यायत ।

छन्द:—संकृति ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति और भाविक । उन-उन अवस्थाओं की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । भरत के स्वाभाविक अवस्था का वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है । भावी घटनाओं को मानो प्रत्यक्ष रूप में देखने से भाविक अलङ्कार है ।

सूत:—(आत्मगतम्) भो: कष्टम् । यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमार: । जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते । कुत:—

पितु: प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातु: प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ॥४॥

[**अन्वय:**—पितु: प्राणपरित्यागं, मातु: ऐश्वर्यलुब्धतां, ज्येष्ठभ्रातु: प्रवासं च, त्रीन् दोषान् क: अभिधास्यति ? ॥४॥]

इस श्लोक में सूत कहता है कि मैं भरत को यह समाचार कैसे दूं।

हिन्दी रूपान्तर—

सूत—(मन में) अरे, कष्ट की बात है। महाराज की मृत्यु को न जानते हुए तथा परिणाम में निरर्थक आशा को मन में लिए हुए कुमार भरत अयोध्या में प्रवेश करेंगे। जानते हुए भी मैं इनको यह बात बता नहीं सकता। क्योंकि—

अर्थ [श्लोक ४]—पिता के प्राणों के परित्याग की बात को माता के ऐश्वर्य के प्रति लोभ को और बड़े भाई के वन में प्रवास को, इन तीन दोषों को कौन कह सकेगा? कोई भी अपने मुख से इन विपत्ति की बातों को कहने में समर्थ नहीं है ॥४॥

संस्कृत व्याख्या—पितुः जनकस्य राज्ञः दशरथस्य प्राणपरित्यागं प्राणानाम् असूनां परित्यागं मरणस्य वार्ता, मातुः जनन्याः कैकेय्याः ऐश्वर्यलुब्धताम् ऐश्वर्यं धनं राज्यं प्रतिलुब्धतां लोलुपतां, ज्येष्ठभ्रातुः अग्रजस्य रामस्य प्रवासं वनगमनम् इति त्रीन् दोषान् आपद कः जनः अभिधास्यति कथयिष्यसि? राज्यलोभितया कैकय्या रामः वने प्रवासितः तस्य च विरहदुःखेन राजा स्वर्गं गतः इति वार्ता न केनापि कथयितुं शक्यते। सकलवृत्तान्तज्ञोऽप्यहं न स्वमुखात् किञ्चिन्निवेदयितुं समर्थः ॥४॥

व्याकरण—प्राणानां परित्यागम् = प्राणपरित्यागम्। परि + √त्यज् + घञ् = परित्याग। लुब्धस्य भावः लुब्धताम्। लुब्ध + तल् + टाप् = लुब्धता।

छन्द—अनुष्टुप्।

सोपस्नेहतया—प्राचीन समय में नगरों के चारों ओर घने बगीचे लगाये जाते थे। दूर से जब सूत ने देखा कि घने हरे-भरे वृक्ष दिखायी दे रहे हैं तो उसने समझ लिया कि हम अयोध्या के समीप आ गये हैं।

जानद्भिरपि—सारथि को पता था कि राजा दशरथ की मृत्यु हो चुकी है राम वन में चले गये हैं, परन्तु वह अपने मुख से इस बात को कहने का साहस नहीं कर रहा था।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु कुमारः।

भरतः—भद्र! किं शत्रुघ्नो मामभिगतः?

भटः—अभिगतः खलु वर्तते कुमारः। उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः।

भरतः—किमिति किमिति?

भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव-रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः।

भरतः—बाढमेवम्। न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। गच्छत्वम्।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः)।

भरतः--अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये । तदुभयं भविष्यति--दैवतपूजा विश्रमश्च । अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टयानि नगराणीति सत्समुदाचारः । तस्मात् स्थाप्यतां रथः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं स्थापयति)

भरतः--(रथादवतीर्य) सूतः ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः--यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

भरतः—(किञ्चिद् गत्वावलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कता वलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः । किन्नु खलु पर्वणोऽयं विशेषः ? अथवा आह्निकमास्तिक्यम् ? कस्य नु खलु देवतस्य स्थानं भविष्यति ? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं दृश्यते । भवतु । प्रविश्य ज्ञास्ये । (प्रविश्यावलोक्य) अहो, क्रिया-माधुर्यं पाषाणानाम् । अहो, भावगतिराकृतीनाम् दैवतोद्दिष्टानामपि मानुष-विश्वासतासां प्रतिमानाम् किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः ? अथवा यानि तानि भवन्तु । अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः :

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

भट--कुमार की जय हो ।

भरत--भद्र ! क्या शत्रुघ्न मेरे पास आये हैं ?

भट—कुमार तो निश्चय से आ रहे हैं । उपाध्यायों ने आपसे कहा है :

भरत--कहा कहा है, क्या कहा है ?

भट—कृत्तिका नक्षत्र का समय एक नाड़ी ही रह गया है । इसलिए रोहिणी नक्षत्र का समय प्रारम्भ होने पर ही कुमार अयोध्या में प्रवेश करेंगे ।

भरत--अच्छा, ऐसा ही होगा मैंने कभी गुरुओं के वचनों का उल्लंघन नहीं किया है । तुम जाओ ।

भट--कुमार जैसा आदेश देते हैं । (निकल जाता है)

भरत--अब किस स्थान पर विश्राम करूँगा ? अच्छा देख लिया है । वृक्षों के मध्य से दिखायी देने वाले इस देवमन्दिर में मुहूर्तभर विश्राम करूँगा । तो दोनों ही बातें हो जायेंगी--देवताओं की पूजा भी हो जायेगी और विश्राम भी हो जायेगा और यह भी बात है कि नगरों में कुछ रुककर प्रवेश करना चाहिये । इसलिए रथ को खड़ा कर दो ।

सूत—आयुष्मान् जैसा आदेश देते हैं। (रथ खड़ा करता है)

भरत—(रथ से उतरकर) सूत ! एकान्त में ले जाकर घोड़ों को विश्राम कराओ।

सूत—आयुष्मान् जैसा आदेश देते हैं। (निकल जाता है)

भरत—(कुछ चलकर और देखकर) सज्जन पुरुषों द्वारा पूजाओं में फूल और खीलें चढ़ायी गयी हैं, दीवारों पर चन्दन के थप्पे लगाये गये हैं, दरवाजों को पुष्पों की मालाएँ लटका कर सुशोभित किया गया है और रेती बिछायी गयी है। क्या यह किसी पर्व विशेष की पूजा का प्रभाव है ? अथवा प्रतिदिन की पूजा की गयी है ? यह किस देवता का स्थान होगा ? यहाँ न तो कोई आयुध ही है और न कोई ध्वजा ही। बाहर का चिह्न दिखायी नहीं दे रहा है। अच्छा, प्रवेश करके पता लगाऊँगा। (प्रवेश करके और देखकर) अहो, पत्थरों की कारीगरी में भी कितना माधुर्य है। मूर्तियों की आकृतियों के भावों की गति आश्चर्यजनक है। देवताओं को उद्देश्य करके बनायी गयी भी इन प्रतिमाओं में मनुष्य होने का-सा विश्वास होता है। क्या यहाँ चार देवताओं की मूर्ति का समूह है ? अथवा ये जो होंगी। मेरे मन में तो प्रसन्नता हो रही है।

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः
वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ॥५॥

[अन्वयः—कामं दैवतम् इति एव, शिरः नमयितुं युक्तम्। तु अमन्त्रार्चितदैवतः प्रणामः वार्षलः स्यात् ॥५॥]

अर्थ [श्लोक ५]—ठीक है, ये देवताओं की ही मूर्तियाँ हैं। इनके प्रति सिर से प्रणाम करना ही उचित है, परन्तु बिना मन्त्रों के देवताओं को प्रणाम करना, शूद्रों के जैसी ही पूजा होगी ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—कामं सत्यमेव दैवतम् इमाः प्रतिमाः देवतानामेव सन्ति इति, शिरः मस्तिष्कं नमयितुम् अर्चयितुं युक्तम् उचितं वर्तते। तु परन्तु अमन्त्रार्चितदैवतः न मन्त्रैः वेदमन्त्रैः अर्चितं पूजितं यत्र तथाभूतः प्रणामः देवपूजनं वार्षल शूद्रकृतपूजनसदृशः भवति। इमाः देवतानां प्रतिमाः सन्ति, अतः अत्र शिरोऽवनमय्य अर्चना विधेया। परन्तु देवपूजनं मन्त्रोच्चारणपूर्वकं विधेयम्। यदि मन्त्ररहिता पूजा विधीयते, सा तु शूद्रैः कृता पूजा इव भविष्यति। अनेन शूद्राणां मन्त्रोच्चारणनिषेधः व्यज्यते ॥५॥

व्याकरण—देवतायाः इदम् = देवता + अण् = दैवत। न मन्त्रैः अर्चितं दैवतं यत्र = अमन्त्रार्चितदैवतम्। वृषलस्य अयम् = वृषल + अणं = वार्षल।

छन्दः—अनुष्टुप्।

शत्रुघ्नो मामभिगतः –भरत का शत्रुघ्न के प्रति विशेष स्नेह था; अतः उसको आशा रही होगी कि उसका स्वागत करने तथा नगर में ले जाने के लिये शत्रुघ्न अवश्य आयेगा।

कृत्तिकाविषय—कृत्तिका नक्षत्र से युक्त समय। कार्तिक मास का समय कृत्तिका नक्षत्र से युक्त होता है। उसके पश्चात् पौष मास में रोहिणी नक्षत्र उदय होता है।

पार्वण:–पर्वण: अयम् = पर्वन + अण् पार्वण। पूजा दो प्रकार की होती है—विशेष पर्वों पर की जाने वाली और प्रतिदिन की। प्रतिदिन की पूजा को आह्निक कहते हैं। अह्नः इदम् = अहन् + ठक् (इक) = आह्निक।

बहिश्चिह्नम्—विभिन्न देवताओं के विभिन्न चिह्न होते थे; जैसे कि शंकर का त्रिशूल, देवी का खड्ग, विष्णु का चक्र आदि। इन चिह्नों को मन्दिर के बाहर स्थापित किया जाता था अथवा इस चिह्न से युक्त ध्वजा फहरायी जाती थी। इससे प्रतीत होता है कि भास के समय में मूर्ति पूजा प्रचलित हो चुकी थी।

क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्—भास के युग में मूर्तिकला का बहुत अधिक विकास हो चुका था और उनकी मुखाकृतियों पर सुन्दर कलापूर्ण भावनाएँ अभिव्यक्त की जाती थीं।

अमन्त्रार्चितदैवतः—भास के समय में शूद्रों को मन्त्र पढ़ने तथा मन्त्रपाठ करके देवपूजन करने का अधिकार नहीं रहा था। वे बिना मन्त्र का पाठ किये देवपूजन कर सकते थे और मन्दिरों में जा सकते थे।

(प्रविश्य)

देवकुलिक—भोः ! नैत्यिकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः ? भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये। (प्रविशति)

भरतः—नमोऽस्तु।

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः।

भरतः—मा तावद् भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते।
किं कृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥६॥

[**अन्वयः**—वक्तव्यम्, अस्मासु विशिष्टः किञ्चित् प्रतिपाल्यते ? अयं प्रतिषेध किं कृतः ? नियमप्रभविष्णुता ? ॥६॥

हिन्दी रूपान्तर—

देवकुलिक- प्रतिदिन के देव-पूजा आदि अनुष्ठानों के समाप्त करने पर मैं

इस श्लोक में भरत देवकुलीक को कहते हैं कि आप हमें क्यु रोक रहे हैं!

जब कि प्राणियों के धर्म का पालन, अर्थात् भोजन आदि कर रहा था, तो यह कौन व्यक्ति प्रतिमागृह में प्रविष्ट हो गया है, जिसकी आकृति में इन प्रतिमाओं से बहुत ही कम अन्तर है। अच्छा, अन्दर प्रवेश करके पता लगाऊँगा। (प्रवेश करता है)

भरत—नमस्कार हो।

देवकुलिक—नहीं, नहीं, प्रणाम मत करो।

भरत—अरे! आप ऐसा मत कहिये—

अर्थ [श्लोक ६]—आप हमको कहिये, हमारी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण किसी व्यक्ति की आप प्रतीक्षा कर रहे हैं? यह पूजन से रोकना किसलिए है? क्या आप नियम के अधिकार के सामर्थ्य से हमको रोक रहे हैं? ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—वक्तव्यम् अस्मद्विधसामान्यजनेषु कथनीयमेव भवता यद् अस्मासु विशिष्टः अस्मदपक्षेया कश्चिद् विशिष्टः उत्कृष्टजनः प्रतिपाल्यते, प्रतिक्ष्यते, यः पूजामत्र सम्पादयिष्यति, यद् भवानस्मान् न खलु प्रणामः कार्यः इति प्रतिषेधयति अयमसौ प्रतिषेधः पूजनान्निवारणं किं कृतः कस्मात् कारणाद वर्तते। अथवा नियमप्रभविष्णुता नियमेषु तपोव्रताद्यनुष्ठाने राजकीयनियमाधिकारेषु वा प्रभविष्णुता अधिकारपदसामर्थ्यशालिता वर्तते यो भवान् मां निवारयति ॥६॥

व्याकरण—वच् + तव्यत् = वक्तव्य। वि + √शास् + क्त = विशिष्ट। नियमेषु प्रभविष्णुता = नियमप्रभविष्णुता। प्र + √भू + इष्णुच् = प्रभविष्णु। प्रभविष्णु + तल् + टाप् = प्रभविष्णुता।

छन्दः—अनुष्टुप्।

देवकुलिकः—न खल्वतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम्। किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः।

भरतः—एवम्। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः? अथ के नामात्रभवन्तः?

देवकुलिकः—इक्ष्वाकव।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति। एते तेऽयोध्याभर्तारः

(6)

> एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी
> स्तेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतै।
> एते ते प्राप्नुवन्त स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
> स्तेते ते मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥७॥

[अन्वयः—एते ते, असुरपुरवधे देवतानाम् अभिसरीं गच्छन्ति। एते ते, स्वसुकृतैः सपुरजनपदा शक्रलोके यान्ति एते ते, स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमतीं प्राप्नुवन्तः, एते ते, ये छन्दं मृगयता मृत्युना चिरम् अनवसिता ॥७॥

भो! यदृच्छयाखलु मया महत् फलमासादितम्। अभिधीयतां कस्तावदत्र भवान

दूसरी मे श्लोक आयु का

→ इस श्लोक में देवकुलीक मन्दीर में रखी गयी मुरतीयों का वर्णन कर रहे है।

हिन्दी रूपान्तर—

देवकुलिक—इन कारणों से आपको रोक नहीं रहा हूँ। किन्तु कहीं इनको देवता समझ कर कोई ब्राह्मण प्रणाम न कर ले, इसलिए रोक रहा हूँ। ये आदरणीय प्रतिमाएँ क्षत्रियों की हैं।

भरत—ऐसा है। ये आदरणीय प्रतिमाएँ क्षत्रियों की हैं। तो इन आदरणीयों के क्या नाम हैं ?

देवकुलिक—ये इक्ष्वाकुवंशी हैं।

भरत—(प्रसन्न होकर) ये इक्ष्वाकुवंशी हैं। ये तो अयोध्या के वे ही स्वामी हैं—

अर्थ [श्लोक ७]—ये वे इक्ष्वाकुवंशी जो कि असुरों के नगरों का विनाश करने के लिये देवताओं की सहायता के लिए जाते हैं। ये वे हैं, जो कि अपने पुण्यों के प्रभाव से नगर निवासियों और जनपद निवासियों को साथ लेकर इन्द्रलोक में जाते हैं। ये वे हैं, जिन्होंने कि अपनी भुजाओं के बल से जीतकर सारी पृथिवी को प्राप्त कर लिया था। ये वे हैं; जिनको कि इच्छानुसार प्राणियों का शिकार करने वाली मृत्यु भी चिरकाल तक मार नहीं सकी थी॥७॥

अरे, अकस्मात् ही मैंने निश्चय से महान् फल प्राप्त कर लिया है। कहो कि आदरणीय ये कौन हैं ?

संस्कृत-व्याख्या—इक्ष्वाकुवंशीयानां पराक्रमवैशिष्ट्यं वर्णयति—एते इमे ते इक्ष्वाकुवंशीयाः ये असुरपुरवधे असुराणां राक्षसानां पुराणां नगराणां वधे विनाशे देवतानां सुराणाम् अभिसरीं सहायतायै अभिगमनं गच्छन्ति यान्ति युद्धाय अभिसरन्ति, देवता अपि ऐक्ष्वाकूणां सहायताभिलाषिण आसन् तथा ते पराक्रमशालिन आसन्। एते इमे ते ऐक्ष्वाकवः सन्ति, ये स्वसुकृतैः स्वीयैः पुण्यकर्मभिः सपुरजनपदाः पुरैः नगरनिवासिभिः जनपदैः जनपदनिवासिभिश्च सहिताः शक्रलोके इन्द्रलोके स्वर्गे यान्ति गच्छन्ति। इक्ष्वाकूणां पुण्यकर्माणि तथा प्रभावशालीनि सन्ति, यत्ते स्वयं तु स्वर्गाधिकारिणी सन्त्येव, प्रजाजना अपि तेषां पुण्यप्रभावेण स्वर्गगमनाधिकारिणो भवन्ति। एते इमे ते ऐक्ष्वाकव सन्ति, ये स्वभुजबलजितां स्वस्य आत्मनः भुजानां बहूनां बलेन सामर्थ्येन जितां विजितां कृत्स्नां सकलां वसुमतीं धरित्रीं प्राप्नुवन्तः स्वाधिकारवर्तिनीं चक्रुः। इक्ष्वाकुभिः सकला धरित्री स्वभुजसामर्थ्येन विजिता। एते इमे ते ऐक्ष्वाकवः सन्ति, ये छन्द स्वच्छन्दरूपेण मृगयता प्राणिनामाखेटं कुर्वता मृत्युना यमेन चिरं चिरकालं यावत् अनवसिताः न विनाशिता। स्वच्छन्दं विचरन् मृत्युरपि येषां विनाशाय समर्थः न बभूव। स्वेच्छामरणा एव ते सन्ति ॥७॥

व्याकरण—असुराणां पुराणां वधे = असुरपुरवधे। न + सुर = असुर। अथवा √अस् + उर = असुर। अभि + √सृ + अच् + ङीप् = अभिसरी। शक्नोति दैत्यान् नाशयितुम् = √शक् + रक् = शक्र। वसु + मतुप् + ङीप् = वसुमती।

छन्दः—सुवदना ।

अलंकार—उदात्त । महान् पुरुषों की कीर्ति (महान् कार्यों) का कथन करने से यहाँ उदात्त अलङ्कार है ।

टिप्पणी—

नैत्यिकावसाने—नैत्यिकानाम् अवसाने । नित्यं क्रियन्ते = नित्य + ठक् = नैत्यिक । प्रतिदिन किये जाने वाले पूजा आदि कार्य । उनको पूरा करने पर ।

प्राणिधर्मम्—प्राणिनः धर्मम् = प्राणिधर्मम् । भोजन आदि कार्य प्राणिधर्म कहलाते हैं ।

प्रतिमानामल्पान्तराकृतिः—भरत इक्ष्वाकुवंशी था; अतः इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की प्रतिमाओं के साथ उसकी आकृति का सादृश्य स्वाभाविक था ।

ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि—वर्णों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना गया था । अन्य तीनों वर्ण उनको प्रणाम करते थे, परन्तु ब्राह्मण अन्य वर्णों को प्रणाम नहीं करते थे । धोखे से भी वे अन्य वर्णों को प्रणाम न कर लें, इसका ध्यान रखा जाता था ।

देवकुलिक—देव कुले पूजां करोति इति = देवकुल + ठ = देवकुलिक ।

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्ज्वलित धर्मप्रदीपो दिलीपः ।

भरतः—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयतां कस्तावदत्र भवान् ?

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्र-प्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः ।

भरतः—अहो, बलवान् मृत्युरतामाप रक्षामतिक्रान्तः । नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् !

देवकुलिकः—अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः ।

भरतः—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय । (दशरथस्य प्रतिमामवलोकयन् पर्याकुली भूत्वा) भोः ! बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिकः—अयं दिलीपः ।

भरतः—पितृपितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

देवकुलिकः—अत्र भवान् रघुः ।

भरतः—पितामहो महाराजस्य । ततस्ततः ।

इस श्लोक में बतलाया गया है कि राजा दशरथ ने अपने प्राण और राज्य छोड़ दिये।

देवकुलिकः—तत्रभवानजः ।

भरतः—पिता तातस्या किमिति किमिति ?

देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः अयमजः ।

भरतः—भवन्तं किञ्चित्पृच्छामि धरमाणानामपि प्रतिमा स्थाप्यन्ते ?

देवकुलिकः—न खलु, अतिक्रान्तानामेव ।

भरतः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

देवकुलिकः—तिष्ठ—

(7) येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः ।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे ॥८॥

[अन्वयः—स्त्रीशुल्कार्थे येन प्राणाः राज्यं च विसर्जिताः, किं नु त्वम् इमां दशरथस्य प्रतिमां पृच्छसे ? ॥८॥]

हिन्दी रूपान्तर—

देवकुलिक—ये तो सभी रत्नों को एकत्रित करके विश्वजित् नाम के यज्ञ को करने वाले तथा धर्म के दीपक को प्रज्वलित करने वाले दिलीप हैं ।

भरत—धर्म परायण महाराज दिलीप को नमस्कार है । कहिये, आदरणीय ये कौन हैं ?

देवकुलिक—ये सोते और जागते समय कानों से अनेक हजार ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारित पुण्याहवाचक मन्त्रों की ध्वनि को सुनने वाले रघु हैं ।

भरत—अहो, मृत्यु बलवान् है, जो इनकी रक्षा के निमित्त बनी व्यवस्था को भी पार कर गयी । ब्राह्मणों की सेवा में राज्य की सम्पत्ति को अर्पित करने वाले इन रघु को नमस्कार है । कहिये, ये आदरणीय कौन हैं ?

देवकुलिक—ये प्रिया के वियोग के कारण उत्पन्न वैराग्यवश राज्य के भार को छोड़ने वाले तथा नित्य के यज्ञीय स्नानों से धूलिरूप रजोगुण को शान्त करने वाले अज हैं ।

भरत—प्रशंसनीय रूप से पश्चात्ताप करने वाले आपको नमस्कार है । (दशरथ की प्रतिमा को देखते हुए व्याकुल होकर) महोदय ! इन महापुरुषों के प्रति बहुत अधिक आदर के वश मन के विह्वल होने से मैंने स्पष्ट रूप से ही नहीं समझा । बताइये, ये आदरणीय कौन हैं ?

देवकुलिक—ये दिलीप हैं ।

भरत—महाराज के पिता के दादा हैं । उसके बाद ।

देवकुलिक—ये आदरणीय रघु हैं ।

भरत—महाराज के दादा हैं । उसके बाद ।

देवकुलिक—ये आदरणीय अज हैं ।

भरत—पिता के पिता हैं। ये कौन हैं, ये कौन हैं ?

देवकुलिक—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं, ये अज हैं।

भरत—आपसे कुछ पूछता हूँ। जीवित व्यक्तियों की भी क्या प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं।

देवकुलिक—निश्चय से नहीं। मृत व्यक्तियों की ही प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं।

भरत—इसीलिये आपसे पूछ रहा हूँ।

देवकुलिक—ठहरो—

अर्थ [श्लोक ८]—विवाह के समय प्रतिज्ञात स्त्री-शुल्क को पूरा करने के लिए जिसने प्राणों को और राज्य को छोड़ दिया था, क्या तुम इस दशरथ की प्रतिमा के विषय में पूछ रहे हो ? इस प्रकार देवकुलिक ने स्पष्ट कर दिया कि कैकेयी के लोभ के कारण दशरथ की मृत्यु हो गयी है ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—स्त्रीशुल्कार्थे—विवाहावसरे स्त्रियै यः देयः शुल्कः तत्प्रदातुम्, कैकेय्याः विवाहावसरे दशरथेन प्रतिज्ञातं यदस्याः पुत्र एव राज्याधिकारं प्राप्स्यतीति, येन राज्ञा दशरथेन प्राणाः असवः राज्यं राज्याधिपत्यं च विसर्जिताः परित्यक्ताः, किं नुत्वम् इमाम् एतां दशरथस्य प्रतिमां पाषाणमूर्तिं पृच्छसि जिज्ञाससे ? अयं राज्ञः दशरथस्य प्रतिमा वर्तते, तेन च कैकेय्याः स्त्रीशुल्कप्रदानार्थं राज्यमपि त्यक्तं प्राणाश्च परित्यक्ताः ॥८॥

व्याकरण—राज्ञः भावः कर्म वा = राजन् + यक् = राज्य । प्रति + $\sqrt{}$मा + अङ् + टाप् = प्रतिमा ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलंकार—दीपक । अनेक कारकों में एक क्रिया अथवा अनेक क्रियाओं में एक कारक होने पर दीपक अलङ्कार होता है । यहाँ प्राणाः तथा राज्यम् इन दो कर्म कारकों में एक क्रिया विसर्जिताः होने से दीपक अलङ्कार है ।

दिलीप, रघु, अज—भास ने राम के पूर्व पुरुषों की कल्पना की है—राम के पिता दशरथ, दशरथ के पिता अज, अज के पिता रघु और रघु के पिता दिलीप । कालिदास ने भी 'रघुवंश' में इसी प्रकार वर्णन किया है । कालिदास ने सम्भवतः यह कल्पना भास से ली होगी; क्योंकि रामायण में दिलीप और रघु के मध्य अनेक राजाओं का वर्णन हुआ है ।

सन्निहितसर्वरत्नस्य—सन्निहितानि संचितानि सर्वाणि रत्नानि येन तस्य । सम् + नि + $\sqrt{}$धा + क्त = सन्निहित ।

विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता—रघुवंश के अनुसार विश्वजित् यज्ञ दिलीप के पुत्र रघु ने किया था, जबकि भास ने इसका कर्त्ता दिलीप को कहा है ।

संवेशनोत्थापनयोः—संवेशनं च उत्थापनं च तयोः । सोना-जागना ।

बहुमानव्याक्षिप्तेन—बहु अत्यधिकं मानमादरः तेन हेतुना व्याक्षिप्तेन अन्यमनस्केन ।

ध्रियमाणानाम्—जीवित व्यक्तियों का । जो प्राण धारण करते हैं, वे जीवित हैं । दशरथ की प्रतिमा को देखकर भरत को आश्चर्य हुआ कि वह यहाँ क्यों स्थापित है, जबकि वह पिता को जीवित समझ रहा था ।

अतिक्रान्तानाम्—भुवः गतानाम् मृतानाम् । अति + √क्रम् + क्त = अतिक्रान्त । इस श्लोक में भरत कहते हैं कि मुझे अपने शरीर की शुद्धी करनी होगी ।

भरतः—हा तात ! (मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य)

8

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।
स्पृशति यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥९॥

[अन्वयः—हृदय ! सकामं भव, यत्कृते त्वं शङ्कसे । तत पितृनिधनं शृणु, धैर्यं च तावद् गच्छ । यदि तु अयं नीचः शुल्कशब्दः तु मां स्पृशति, अथ च सत्यं भवति, तत्र देहः विशोध्यः ॥९॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—हा पिता ! (मूर्च्छित होकर गिर जाता है । पुनः होश में आकर)

अर्थ [श्लोक ९]—हे हृदय ! तुम्हारी वह कामना पूरी हो गयी, जिसके लिए तुम शङ्का कर रहे थे । पिता के उस निधन का वृत्तान्त सुनो और धैर्य को धारण करो । यदि तो यह नीच शुल्क शब्द मुझको स्पर्श कर रहा है, अर्थात् मुझको राजा बनाने के लिए माता ने स्त्रीशुल्क के रूप में राज्य की याचना की है और यह बात यदि सत्य सिद्ध होती है, तो मुझको अपने शरीर की शुद्धि करनी पड़ेगी । मैं प्राणों के मूल्य पर भी अपने को निर्दोष सिद्ध करूँगा । ९॥

संस्कृत-व्याख्या—हे हृदय ! सकामं साभिलाषं भव तव सा कामना पूरिता, यस्मै त्वं स्पृहयति स्म । यत्कृते यस्य घटनायाः विषये त्वं शङ्कसे सम्भावयसि । पितृमरणाशङ्का ते आसीत् सा च सम्पन्नतां गता । तत् स्वाशङ्कित पितृनिधन पितेः तातस्य निधनं मरणं शृणु आकर्णय, धैर्यं धीरतां च तावत् गच्छ प्राप्नुहि । पितुः निधनवृत्तान्तं निशम्य धैर्यधारणमेव ते कर्तव्यं भविष्यति । यदि तु अयं नीचः अतिनिन्दितः शुल्कशब्दः कैकेय्या ममैव राज्याधिरोहणाय स्त्रीशुल्कः याचितः, मां स्पृशति मया सम्बध्यते, अथ च तत् सत्यं भवति, तत्र तस्मिन् विषये मया देहः स्वशरीरं विशोध्यः प्राणदानेनापि विशोधनीयः ॥९॥

व्याकरण—कामेन सहितम् = सकामम् । पितुः निधनम् = पितृनिधनम्

नि + $\sqrt{}$धा + क्यु (अन) = निधन । निकृष्टाम् ईशामां चिनोति – नि + ई + $\sqrt{}$चि + ड (अ) = नीच ।

छन्द:—मालिनी ।

आर्य !

देवकुलिक:—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालाप: खल्वयम्। कच्चित् कैकेयी-पुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरत: —अथ किम्, अथ किम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्या:।

देवकुलिक: —तेन आपृच्छे भवन्तम् ।

भरत:—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिक:—का गति. ? श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथ: । सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

भरत:— कथं कथमार्योऽपि वनं गत: ? (द्विगुणं मोहमुपगत:) ।

देवकुलिक:—कुमार ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

हिन्दी रूपान्तर—

आर्य !

देवकुलिक— आर्य, इस शब्द का सम्बोधन तो निश्चय से इक्ष्वाकुकुल के लोग बातचीत में करते हैं । क्या आप कैकेयी के पुत्र भरत हैं ?

भरत—और क्या और क्या मैं दशरथ का पुत्र भरत हूँ, कैकेयी का नहीं ।

देवकुलिक—इसलिए मैं आपसे पूछ रहा हूँ ।

भरत—ठहरिये । शेष बात भी कह दीजिये ।

देवकुलिक—क्या हो सकता है ? सुनिये । आदरणीय दशरथ मर गये हैं । सीता और लक्ष्मण के साथ राम के साथ बन जाने के प्रयोजन को मैं नहीं जानता ।

भरत—कैसे, कैसे, क्या आर्य भी वन को गये ? (दुगना मूर्च्छित हो जाता है)

देवकुलिक— कुमार ! आश्वासन रखिये, आश्वासन रखिये ।

टिप्पणी—

आर्येति इक्ष्वाकुकुलालाप:—इक्ष्वाकु वंश के लोग अति शिष्ट होने से अन्य सामान्यजनों को भी आर्य कहकर सम्बोधित करते थे । अत: आर्य सम्बोधन से देवकुलिक पहचान लेता है कि यह इक्ष्वाकुवंशी होगा और कैकेयी का पुत्र भरत होगा ।

दशरथपुत्रोऽस्मि, न कैकेय्या:—कैकेयी के प्रति क्रोध और मन की लज्जा के कारण भरत अपने को कैकेयी का पुत्र मानना नहीं चाहता । वह स्वयं को केवल दशरथ का पुत्र कहता है ।

भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्राता च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥१०॥

[अन्वयः—पित्रा भ्राता च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्यां पिपासार्तः क्षीणतोयां नदीम् इव अनुधावामि ॥१०॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—आश्वस्त होकर—

अर्थ [श्लोक १०]—परलोक में गये हुए पिता द्वारा तथा वन में गये हुए भाई राम द्वारा छोड़ दी गयी; अतः जंगल-सी बनी हुई अयोध्या की ओर भागा जा रहा हूँ, जैसे कि प्यास से पीड़ित व्यक्ति जल से रहित नदी की ओर दौड़ता है ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—पित्रा परलोकं गतेन जनकेन दशरथेन, भ्राता वनं प्रव्रसितेन अग्रजेन रामेण विसर्जितां परित्यक्ताम् अतः अटवीभूताम् वनरूपं संप्राप्तम् अयोध्यां नाम इक्ष्वाकुकुलराजधानीमहम् अनुधावामि, इव यथा कश्चित् पिपासार्तः पिपासया जलं पातुमिच्छया क्षीणतोयां विनष्टजलां नदीं सरितम् अनुधावति तीव्रगत्या प्रयाति। यथा कश्चित् पिपासार्तः जनः जलं पातुम् इच्छया शुष्कजलां नदीं प्रति तीव्रोत्कण्ठया प्रयाति, परन्तु तत्र जलमप्राप्य विफलाभिलाषो भवति, तथैव मे अवस्था। पित्रा रामेण च रहिता अयोध्या मे वनतुल्या एव। तत्र गत्वा न मे मिलनाभिलाषा सफला भविष्यति, न चापि कमपि हर्षमह प्राप्स्यामि ॥१०॥

व्याकरण—अनटवी अटवी भूता = अटवीभूता। अटन्ति अस्यां प्राणिनः = √अट् + अवि + ङीष् = अटवी। पिपासया आर्तः = पिपासार्तः। पातुमिच्छा पिपासा। √पा + सन् + अ + टाप् = पिपासा। आ + ऋ + क्त = आर्त। क्षीणं तोयं यस्याः सा = क्षीणतोया।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उपमा। नदी उपमान, अयोध्या उपमेय, इव उपमावाचक पद, उसकी ओर दौड़ना साधारण धर्म हैं।

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति। तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम्।

देवकुलिकः—श्रूयतां तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल।

भरतः—तिष्ठ—

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्याभिहितं
तद्वैयेणाश्वसन्त्या व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभितः।

10 इस श्लोक में भरत कहता है कि अयोध्या नगरी मुझे धिक्कार रही है।

तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापाः ननु मयिसदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥११॥ 10

(मोहमुपगतः)

[अन्वयः--तं शुल्कदोषं स्मृत्वा, मम सुतः राजा भवतु, इति अभिहितम्। तद्धैर्येण आश्वसन्त्या आर्यः अपि इति अभिहितः "सुत ! वनं व्रज"। तं बद्धचीरं दृष्ट्वा राजा ननु असदृशं निधनं गतः। शेषाः सदृशाः धिक्प्रलापाः प्रकृतिभिः ननु मयि पात्यन्ते ॥११॥

हिन्दी रूपान्तर--

हे आर्य ! विस्तार से सारी बात को सुनने से मेरा मन स्थिर हो जायेगा। तो सारी बात को सम्पूर्ण रूप से कह दो।

देवकुलिक--सुनिये। आदरणीय महाराज के द्वारा आदरणीय राम के राज्याभिषेक किये जाने पर आपकी माता ने यह कहा।

भरत--ठहरो--

अर्थ [श्लोक ११]--उस दूषित विवाह शुल्क की बात का स्मरण करके, मेरा पुत्र राजा होवे, इस प्रकार कैकयी ने कहा था। इस बात को सुनकर भी धीरता धारण करने वाले राजा को देखकर आश्वस्त होती हुई कैकयी ने आर्य राम से यह कहा--"हे पुत्र ! तुम भवन को जाओ। उस राम को वल्कलवस्त्र पहने देखकर राजा की भी निश्चय से असमय में ही मृत्यु हो गयी। बचे हुए तथा मेरे आचरण के ही योग्य धिक्कार से भरे प्रलाप प्रजाएँ मुझ पर गिरा रही हैं। प्रजाएँ मुझको ठीक ही धिक्कार रही हैं ॥११॥

(मूर्च्छित हो जाता है)

संस्कृत-व्याख्या--तं पूर्वोक्तं शुल्कदोषं पुत्रो मे राजा भवतु इति अनर्थकरं विवाहशुल्कं स्मृत्वा मनसि कृत्वा कैकेय्या, मम सुतः मे पुत्रः भरतः राजा अस्याः अयोध्यायाः नरपतिः भवतु, इति अभिहितं कथितम्। तद्धैर्येण तस्य राज्ञः धैर्येण अविचलभावं परिलक्ष्य आश्वसन्त्या सफलताजन्यसन्तोषं धारयन्त्या तथा राज्यं निष्कण्टकं कर्तुम् आर्यः रामः अपि इति एवं प्रकारेण अभिहितः कथितः--सुत ! हे पुत्र ! वनम् अरण्यं व्रज गच्छ। वनगमनाय समुद्यतं तं रामं बद्धचीरं बद्धानि परिहितानि चीराणि वनवासयोग्यवल्कलवस्त्राणि येन तथाभूतं दृष्ट्वा अवलोक्य राजा दशरथः ननु निश्चयेन असदृशम् अयोग्यम् अकालीनं निधनं मृत्युं गतः प्राप्तः। शोकेन मृतः। तथा कैकेय्या अनुष्ठिते येषाः अवशिष्टाः कैकेयीकृत्यापफलभूताः सदृशाः यथायोग्याः धिक्प्रलापाः धिक्कारसहिताः निन्दावादाः प्रकृतिभिः प्रजाभिः ननु निश्चयेन मयि पात्यन्ते निधीयन्ते। प्रजाजनाः निश्चयेन मां धिक्कृत्य प्रलपन्ति ॥११॥

व्याकरण--अभि + √धा + क्त = अभिहित। प्र + √लप् + घञ् = प्रलाप।

छन्दः--सुवदना।

(11) इस श्लोक में बताया है कि भरत मूर्च्छित हो गए हैं।

अलङ्कार—भाविक। भूत अथवा भविष्यत् काल की अद्भुत घटना को प्रत्यक्ष के समान वर्णन करना भाविक अलङ्कार होता है। यहाँ राम-वनवास आदि भूतकाल की घटनाओं का प्रत्यक्ष के समान वर्णन करने से भाविक अलङ्कार है।

(नेपथ्ये)

उस्सरह अय्या ? उस्सरह। [उत्सरतार्याः। उत्सरत।]

देवकुलिकः—(विलोक्य) अये !

काले खल्वागताः देव्यः पुत्रे मोहमुपागते।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥१२॥ (11)

[अन्वयः—पुत्रे मोहम् उपागते देव्यः खलु काले आगताः। हि मातॄणां हस्तस्पर्शः अजलस्य जलाञ्जलिः ॥१२॥

हिन्दी रूपान्तर—

(नेपथ्य में)

हट जाओ, हे आर्यो ! हट जाओ।

देवकुलिक—(देखकर) अये !

अर्थ [श्लोक १२]—पुत्र के मूर्च्छित हो जाने पर रानियाँ निश्चय से समय पर आ गयी हैं ; क्योंकि माताओं के हाथ का स्पर्श जलहीन जलार्थी के लिए जल की अञ्जलि है ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—पुत्रे सुते भरते मोहमुपागते मूर्च्छिते सति, देव्यः इमाः महिष्यः भरतमातरः खलु निश्चयेन काले समुचितसमये तमाश्वासयितुम् आगताः अत्र सम्प्राप्ताः। हि यतः मातॄणां जननीनां हस्तस्पर्शः हस्तेन करेण स्पर्शः परामर्शनं अजलस्य जलहीनस्य परं जलं कामयमानस्य जलाञ्जलिः जलस्य सलिलस्य अञ्जलिः प्रसृतिः। यथा जलार्थी जलमलभमानः जलस्य अञ्जलिं प्राप्य प्रसन्नचित्तः समाश्वस्तश्च भवति, तथैवायं भरतः मूर्च्छितः, काले समागतानां जननीनां हस्तस्पर्शेन समाश्वासितो भविष्यति ॥१२॥

व्याकरण—आ + √गम् + क्त + टाप् = आगता। मुह् + घञ् = मोह। जलस्य अञ्जलिः = जलाञ्जलिः। √अञ्ज् + अलि = अञ्जलि।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास और रूपक। सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन करने पर अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है। प्रथम वाक्य के विशेष का दूसरे वाक्य के सामान्य से समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। उपमेय पर उपमान का आरोप करने से रूपक अलङ्कार होता है। यहाँ 'माताओं

(11) इस श्लोक में प्रतिमा और राजमहल की ऊंचाई का वर्णन किया गया है।

का हस्तस्पर्श' उपमेय पर 'जलाञ्जलि' उपमान का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है।

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः—इत इतो भवन्त्यः।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१३॥ (12) २२

[अन्वयः—यस्य समुच्छ्रयः हर्म्यदुर्लभः नः प्रतिमानृपस्य इदं तत् गृहम्। अयन्त्रितैः अप्रतिहारिकागतैः पथिकैः सः प्रणामं विना उपास्यते ॥१३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर रानियाँ और सुमन्त्र प्रवेश करते हैं)

सुमन्त्र—आप इधर आवें।

अर्थ [श्लोक १३—जिस प्रतिमागृह की ऊँचाई महलों में दुर्लभ है, अर्थात् जिसकी ऊँचाई राजमहलों मे भी अधिक है, प्रतिमा रूप से स्थित राजा दशरथ का यह वह घर है। यहाँ बिना रोक-टोक आने वाले तथा प्रतिहारियों द्वारा न रोके जाने वाले पथिकजन उस राजा की प्रणाम किये बिना ही उपासना करते हैं। पथिकजन इन प्रतिमागृहों में आकर विश्राम करते हैं और इन प्रतिमाओं को प्रणाम भी नहीं करते ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्य प्रतिमागृहस्य समुच्छ्रयः उत्तुङ्गता हर्म्यदुर्लभः हर्म्येषु राजप्रासादेष्वपि दुर्लभः दुष्प्राप्यः, राजप्रासादेभ्योऽपि यत् प्रतिमागृहम् उत्तुङ्गतरं, प्रतिमानृपस्य प्रतिमारूपेण मूर्तिरूपेण स्थितस्य नृपस्य राज्ञः दशरथस्य इदम् एतत् तद् गृहं देवगृहं वर्तते। यत्र अयन्त्रितैः प्रत्याख्यानाद्यवरोधरहितैः, अप्रतिहारिकैः प्रतिहारादिभिः न निरुध्यमानैः पथिकैः पान्थैः सः राजा प्रणामं प्रतिमासु प्रणतिं बिना एव उपास्यते सेव्यते। पान्थाः अत्रागत्य विश्रमन्ति, न च राजप्रतिमाभ्यः प्रणाममपि कुर्वन्ति ॥१३॥

व्याकरण—प्रतिमारूपस्य नृपस्य प्रतिमानृपस्य। न + नि + यम् + त्रल् + इतच् = अनियन्त्रित। पन्थानं गच्छति = पथिन् + ष्कन् = पथिक।

छन्दः—वंशस्थ।

अलङ्कार—विषम-जहाँ दो विरूप, विरुद्ध पदार्थों का मिलन हो। वहाँ विषम अलङ्कार होता है। उन्नत तथा गौरवशाली राजा के गृह में पथिकजन बे-रोक-टोक प्रवेश करें तथा उनको बिना प्रणाम किये विश्राम करें, यह विरुद्ध पदार्थों का मिलन है; अतः यहाँ विषम अलङ्कार है।

प्रसंग—इस श्लोक में बताया गया है कि भरत मूर्छित अवस्था में पड़े हुये हैं।

(प्रविश्यावलोक्य) भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् ।

अयं हि पतितः कोऽपि वयस्थ इव पार्थिवः ।

देवकुलिकः—

परशङ्कामलङ्कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥१४॥

(निष्क्रान्तः)

[अन्वयः—हि अयं वयस्थः पार्थिवः इव कः अपि पतितः । परशङ्कांकर्तुम् अलंगृह्यताम्, हि अयं भरतः ॥१४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके और देखकर) आप लोग अन्दर प्रवेश न करें, प्रवेश न करें।

अर्थ [श्लोक १४]—क्योंकि यह, युवावस्था वाले राजा दशरथ के समान कोई पड़ा हुआ है।

देवकुलिक—अन्य किसी पुरुष की आशंका मत कीजिये। इसको सँभाल लीजिये; क्योंकि यह भरत है ॥१४॥

(निकल जाता है)

संस्कृत-व्याख्या—हि यतः अयम् एषः वयस्थः यौवनावस्थायां स्थितः पार्थिवः राजा दशरथः इव कः अपि अपरिचीयमानः जनः अत्र पतितः वर्तते ।

देवकुलिक—परशङ्कां परस्य अन्यस्य कस्यचिदपरिचितस्य जनस्य शङ्कां तर्क-वितर्कं कर्तुम् अलं व्यर्थमेव । गृह्यताम् एष स्वीकृत्य उत्थाऽप्याङ्के निधाय सेवनीयः । हि यतः अयं जनः भरतः भवतीनां पुत्रः भरत एव वर्तते । नान्यस्य शङ्का कर्तव्या । अयं भवतीनां सुतः भरत एव वर्तते । अङ्के निधाय जलसेचनादिभिरयं चेतयितव्यः ॥१४॥

व्याकरण—वयसि तारुण्ये स्थितः = वयःस्थः । वयस् + स्था + क = वयःस्थ । पृथिवी + अञ् = पार्थिव । बिभर्ति लोकान् = √भृ + अतच् = भरत ।

छन्द—अनुष्टुप् ।

देव्यः—(सहसोपगम्य) हा जाद ! भरद ! [हा जात ! भरत !]

भरतः—(किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा(इत्यर्धोक्ते सविषादम्) अहो स्वरसादृश्यम् । मन्ये प्रतिमास्थो महाराजो व्यवहरतीति ।

भरतः—अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था !

देव्यः—जाद ! एसा णो अवत्था । [जात ! एषा नोऽवस्था ।] (अवगुण्ठनमपनयन्ति ।)

इस श्लोक में सुमन्त्र अपना परिचय देते हैं।

सुमन्त्रः—भवत्यः निगृह्यतामुत्कण्ठा।

भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति। कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

सुमन्त्रः—कुमार ! अथ किम् ? सुमन्त्रोऽस्मि।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः॥१५॥

[अन्वयः—चिरजीवदोषैः अन्वास्यमानः, कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः, हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने, शून्यस्य रथस्य सूतः अहं जीवामि ॥१५॥]

हिन्दी रूपान्तर—

देवियाँ—(सहसा समीप जाकर) हाय पुत्र भरत !

भरत—(कुछ आश्वासित होकर) आर्य !

सुमन्त्र—जय हो महा…(यह कहकर आधे में ही रुककर खेद से) अहो, वैसे ही स्वर की समानता है। मैं समझता हूँ कि प्रतिमा में स्थित महाराज ही बोल रहे हैं।

भरत—अब माताओं की अवस्था कैसी है ?

देवियाँ—पुत्र ! हमारी यह अवस्था है। (घूँघट को हटा देती हैं)

सुमन्त्र—आप अपनी उत्कण्ठा को रोक लें।

भरत—(सुमन्त्र को देखकर) सब प्रकार के व्यवहारों में आपका समीपस्थ रहना मुझको सूचित कर रहा है। हे तात ! क्या आप निश्चय से सुमन्त्र ही हैं ?

सुमन्त्र—कुमार! और क्या ? मैं सुमन्त्र हूँ।

अर्थ [श्लोक १५]—दीर्घ काल तक जीवित रहने के दोषों से मैं युक्त हूँ। कृतघ्न भाव ने मुझको तिरस्कृत किया है; क्योंकि उस राजा के मृत हो जाने पर भी, सूने रथ का सारथि मैं जीवित हूँ ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—चिरजीवदोषैः चिरं दीर्घकालं यावत् जीवः जीवनधारणमेव दोषाः अपराधाः तैः अन्वास्यमानः सेव्यमानः। राजनि स्वर्गं गते मम दीर्घजीविता दोषयुक्ता एव। अतोऽहं तदपराधयुक्त एवास्मि। कृतघ्नभावेन कृतघ्नतादोषेण विडम्ब्यमानः तिरस्क्रियमाणः। राजा दशरथेन मयि बहवः उपकाराः विहिताः। परमहं स्वामिमरणेऽपि तदनुसरणं न करोमि इति मे कृतघ्नता। हि यतः तस्मिन् नृपतौ राजनि दशरथे विपन्ने मृते अपि शून्यस्य रथिनाविहीनस्य रथस्य स्यन्दनस्य सूतः सारथिः अहं सुमन्त्रः जीवामि प्राणान् धारयामि। स्वामिनि स्वर्गं गते तदनुसरणमेव मे कर्तव्यमासीत् ॥१५॥

व्याकरण—अनु + √आस् + यक् + शानच् = अन्वास्यमान। कृतं हन्ति = कृत + √हन् + क = कृतघ्न। वि + √पद् + क्त = विपन्न।

छन्दः—उपजाति।

अहोस्वरसादृश्यम्—भरत की आकृति के साथ ही उसका स्वर भी महाराज दशरथ के समान था; अतः सुमन्त्र दशरथ की भ्रान्ति में भरत के लिए भी महाराज कहने लगते हैं, परन्तु तुरन्त ही सावधान होकर बीच में रुक जाते हैं।

सर्वसमुदाचारसन्निकर्षः—सर्वेषु समुदाचारेषु राजकीयव्यवहारेषु सन्निकर्षः सन्निधिः। सुमन्त्र राजा दशरथ के परम आत्मीय थे तथा सभी राजकीय व्यवहारों में विश्वासपात्र होने से साथ ही विद्यमान रहते थे। उनको माताओं के साथ आया देख कर भरत को सम्भावना होती है कि ये सुमन्त्र ही हैं। सम्+उत् आ+√चर्+घञ्=समुदाचार। सम्+नि+√कृष्+अच्=सन्निकर्ष।

भरतः—हा तात ! (उत्थाय) तात ! अभिवादनक्रममुदेष्टुमिच्छामि मातॄणाम्।

सुमन्त्रः—बाढम्। इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या।

भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये।

कौसल्या—जाद ! णिस्सन्दावो होहि। [जात ! निस्सन्तापो भव।]

भरतः—(आत्मगतम्) आक्रुष्ट इवास्म्यनेन। (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा।

भरत—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये।

सुमित्रा—जाद ! जसोभाई होहि। [जात ! यशोभागी भव।]

भरतः—अम्ब ! इदं प्रयतिष्ये। अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—इयं ते जननी।

भरतः—(सरोषमुत्थाय) आः पापे !

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥१६॥

[**अन्वयः**—मम मातु मातुः च मध्यस्था त्वं न शोभसे, गङ्गायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव ॥१६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—हाय तात ! (उठ कर) हे तात ! माताओं को किस क्रम से अभिवादन करूँ, इसका उपदेश पाना चाहता हूँ।

सुमन्त्र—ठीक है। ये आदरणीय राम की माता देवी कौशल्या हैं।

भरत—मातः ! अपराधरहित मैं आपका अभिवादन करता हूँ।

इस श्लोक में भरत अपनी माता को छोटी नदी के समान बता रहा है।

कौसल्या—पुत्र ! सन्ताप से रहित होओ ।

भरत—(मन में) इनके द्वारा मानो मैं झिड़का गया हूँ । (स्पष्ट रूप से) मैं अनुगृहीत हूँ । इसके बाद ।

सुमन्त्र—ये आदरणीय लक्ष्मण की माता देवी सुमित्रा हैं ।

भरत—लक्ष्मण से ठगा गया मैं आपका अभिवादन करता हूँ ।

सुमित्रा – पुत्र ! यशस्वी बनो ।

भरत—मातः ! मैं यह प्रयत्न करूँगा । मैं अनुगृहीत हूँ । इसके बाद !

सुमन्त्र—ये आपकी माता हैं ।

भरत—(क्रोध से उठकर) अरी पापिनी—

अर्थ [श्लोक १६]—मेरी माता कौसल्या के और माता सुमित्रा के मध्य में स्थित हुई तुम उसी प्रकार शोभित नहीं हो रहीं; जैसे कि गङ्गा और यमुना नदियों के मध्य में प्रवेश करायी गयी कोई छोटी नदी शोभित नहीं होती ॥१६॥

संस्कृत व्याख्या—मम मातुः कौसल्यायाः मातुः सुमित्रायाश्च मध्यस्था मध्ये विद्यमाना त्वं कैकेयी तथैव न शोभसे शोभां वहसि, यथा गङ्गायमुनयोः गङ्गा भागीरथी यमुना कालिन्दी तयोः मध्ये अन्तराले प्रवेशिता प्रवेशं कारिता काचित् कुनदी क्षुद्रा जलधारा न शोभते । गौरवशालिन्यौ इमे कौसल्या सुमित्रा च ; अतः त्वया अधमया अनयोर्मध्ये विद्यमानताऽनुचितैव ॥१६॥

व्याकरण—मान्यते पूज्यते या सा = मान् + तृच् = मातृ । षष्ठी का एकवचन = मातुः । कुत्सिता नदी = कुनदी ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उपमा । यहाँ 'माताएँ' उपमेय तथा 'गङ्गा-यमुना उपमान, कैकेयी उपमेय तथा कुनदी उपमान; इव उपमा वाचक पद और मध्य स्थित होना एवं शोभित न होना साधारण धर्म हैं ।

अनपराद्धः—भरत सूचित करना चाहते हैं कि राम के वनवास में मेरा कोई अपराध नहीं है । न + अप + √राध् + क्त = अनपराद्ध ।

आकृष्ट इव—कौसल्या के आशीर्वाद देने पर भरत को लगा कि उन्होंने जैसे उलाहना दिया हो ।

कैकेयी—जाद ! किं मए किद ? [जात ! किं मया कृतम् ?]

भरतः—किं कृतमिति वदसि ?

वयमयशसा चीरेणार्यो नृपो गृहमृत्युना

प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या मृगैः सह लक्ष्मणः ।

166

दयिततनयाः शोकेनाम्बाः स्नुषाऽध्वपरिश्रमैः
धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः ॥१७॥

[**अन्वयः**—वयम् अयशसा, आर्यः चीरेण, नृपः गृहमृत्युना, कृत्स्ना अयोध्या प्रततरुदितैः, लक्ष्मणः मृगैः सह, दयिततनयाः अम्बाः शोकेन, स्नुषा अध्वपरिश्रमैः, आत्मा च धिक् इति उग्रेण वचसा त्वया ननु योजिताः ।।१७।।]

हिन्दी रूपान्तर—

कैकेयी—पुत्र ! मैंने क्या किया है ?

भरत—क्या किया है, यह कहती हो ?

अर्थ [श्लोक १७]—हमको अपयश से, आर्य राम को वल्कल वस्त्र से, राजा दशरथ को घर में ही मृत्यु से, सारी अयोध्या को निरन्तर रुदन से, लक्ष्मण को मृगों के साथ, पुत्रों को स्नेह करने वाली माताओं को शोक से, पुत्रवधू को मार्ग परिश्रम से और अपने आपको, धिक्कार है, इस उग्र वचन से तुमने निश्चय से युक्त कर दिया है। तुम्हारे कारण हम अपयश के भागी हो गये, राम वल्कल पहन कर वन चले गये, राजा दशरथ की घर में ही मृत्यु हो गयी, सारी अयोध्या निरन्तर रो रही है, वन में लक्ष्मण मृगों के साथ रहते हैं, स्नेहशील माताएँ दुःखी हो रही हैं, तुम्हारी पुत्रवधू सीता मार्ग की थकावट से पीड़ित है और सब लोग तुमको भयानक रूप से धिक्कार रहे हैं ।।१७।।

संस्कृत व्याख्या—वयम् अहं भरतः इत्याशयः, अयशसा अपकीर्त्या, आर्यः रामः चीरेण वल्कलवस्त्रेण, नृपः राजा दशरथः गृहमृत्युना गृहे एव मरणेन, कृत्स्ना सम्पूर्णा अयोध्यानिवासिनो जनाः प्रततरुदितैः निरन्तरं रोदनैः, लक्ष्मणः सौमित्रिः मृगैः हरिणैः सह, दयिततनयाः दयिताः प्रियाः तनयाः पुत्रा यासां ताः अम्बाः मातरः शोकेन दुःखेन, स्नुषा पुत्रवधू सीता अध्वपरिश्रमैः अध्वनः मार्गस्य परिश्रमैः आयासैः, आत्मा स्वयं त्वं धिक् धिक्कृतिरेव तुभ्यमिति उग्रेण प्रचण्डेन वचसा कथनेन अभिशापेन इति भावः त्वया कैकेया ननु निश्चयेन योजिताः संयोजिताः । तव कृत्येन राज्यलोभेन रामवनवासेन च अहम् अयशोभाजनं सञ्जातः भरत एवात्र हेतुः इति प्रसिद्धिर्भविष्यति । आर्यः रामः वल्कलं धारयित्वा वनं गतः । राजा दशरथः गृहे एव अपमरणं प्राप्तः । वने मुनिवृत्तिमाश्रित्यैव तस्य स्वर्गगमनं समुचिमासीत् । रामविरहेण सकलेऽयोध्यावासिनः सततमुच्चस्वरेण रुदन्ति । वनं गत्वा लक्ष्मणः मृगसाहचर्यं प्राप्तः । पुत्रान् प्रति स्नेहशीलाः कौसल्यादिमातरः पुत्रवियोगभर्तृ-मरणादिदुःखेन पीडिताः कृताः । सर्वे च जनाः तव एतस्मै कृत्याय सततं त्वां धिक्कुर्वन्ति ।।१७।।

व्याकरण—गृहे मृत्युना = गृहमृत्युना । √मृ + त्युक् = मृत्यु । √कृत + क्स्न = कृत्स्न । √स्नु + सक् + टाप् = स्नुषा । अध्वनः परिश्रमैः = अध्वपरिश्रमैः ।

छन्दः—हरिणी ।

इस श्लोक में बताया गया है कि माता-पिता के अनेक बच्चों में से ...

अलङ्कार—तुल्ययोगिता। अनेक प्रस्तुत या अप्रस्तुत पदार्थों का समान धर्म से संयोजित होना तुल्योगिता अलङ्कार है। यहाँ वयम् आदि अनेक प्रस्तुत पदार्थों का योजिताः इस एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

सरोषमुत्थाय— कैकेयी के प्रति भरत को बहुत क्रोध है; क्योंकि उसने राज्य के लोभ में राम को वन भेज दिया तथा उससे पिता की मृत्यु हो गयी। वह ऐसी माता का अभिवादन नहीं करता, अपितु उसको धिक्कारता है।

कौसल्या—जाद ! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वन्दसि मादरं ?
[जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे भारतम् ?]

भरतः—मातरमिति। अम्ब ! त्वमेव मे माता। अम्बः ! अभिवादये।

कौसल्या—णहि णहि। इअं ते जणणी। [न हि न हि। इयं ते जननी]।

भरतः—आसीत् पुरा, न त्विदानीम्। पश्यतु भवती—

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः
पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं
भर्तृद्रोहदस्तु माताऽप्यमाता ॥१८॥

[अन्वयः—शीलसंक्रान्तदोषैः स्नेहं त्यक्त्वा पुत्राः तावत् ननु अपुत्राः क्रियन्ते। लोके अपूर्वं धर्मं स्थापयामि एव, भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु ॥१८॥

हिन्दी रूपान्तर—

कौसल्या—पुत्र ! सभी प्रकार के मर्यादायुक्त व्यवहारों को जानने वाले तुम अपनी माता का अभिवादन क्यों नहीं करते हो ?

भरत - माता को, यह कहती हो ? मातः ! तुम ही मेरी माता हो। हे मातः! मैं तुमको अभिवादन करता हूँ।

कौसल्या—नहीं, नहीं। यह तेरी माता है।

भरत—पहले थीं, अब ये नहीं हैं। आप देखें—

अर्थ [श्लोक १८]—स्वभाव से दुष्ट जनों की संगति से आये दोषों के कारण स्नेह को छोड़कर पुत्र भी तो निश्चय से अपुत्र बनाये जा रहे हैं। दुष्टों की संगति से दुष्टता उत्पन्न हो गयी है तथा पुत्रों को भी जो अब पुत्र नहीं समझती। संसार में मैं इस अपूर्व धर्म की स्थापना कर ही रहा हूँ कि पति से द्रोह करने वाली स्त्री माता होकर भी माता कहलाने की अधिकारिणी नहीं रहेगी ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—शीलसङ्क्रान्तदोषैः शीलेन दूषितस्वभावयुक्तदुष्टजनसंगत्या सङ्क्रान्तैः सङ्क्रमितैः दोषैः स्नेहं पुत्रेभ्योऽपि वात्सल्य भावं त्यक्त्वा विहाय पुत्राः सुताः तावत् ननु निश्चयेन अपुत्राः क्रियन्ते, पुत्रानपि यः अपुत्रवद् गणयति तेभ्योऽपि।

इस श्लोक में भरत कहता है कि राम राजा दशरथ के बड़े बेटे हैं।

द्रुह्यति। लोके जगति अहम् अपूर्वम् असाधारणं धर्मं नियममेव स्थापयामि प्रवर्तयामि, यद् भर्तृद्रोहात् भर्त्रे पत्यै द्रोहात् माता जननी अपि अमाता अस्तु। यः पत्यैः द्रोहमाचरति सा पुत्रवती माता सती अपि मातृवद् न भवतु सा मातृबहुमानास्पदा न स्यात् ॥१८

व्याकरण—भृ + तृ = भर्तृ। द्रुह् + घञ् = द्रोह।

छन्दः—शालिनी।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा। सामान्य अप्रस्तुत पति से द्रोह करने वाली स्त्री माता होने पर भी माता नहीं होगी, से प्रस्तुत विशेषपतिद्रोहिणी मेरी माता अब माता नहीं है, की अभिव्यक्ति होने से यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

कैकेयी—जाद ! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मए तह उत्तं। [जात ! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्याः मया तथोक्तम्]

भरतः—किमिति किमिति ?

कैकेयी:—पुत्तओ मे राआ होदु त्ति। [पुत्रको मे राजा भवत्विति।]

भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः ?

पितुर्मे नौरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते।
दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ॥१९॥

[अन्वयः—मे पितुः औरसः पुत्रः न, क्रमेण न अभिषिच्यते, भ्रातरः दयिताः न स्युः, प्रकृतीनां न रोचते ॥१९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

कैकेयी—पुत्र ! महाराज के सत्य वचन की रक्षा करते हुए मैंने वैसे कहा था।

भरत—क्या कहा था, क्या कहा था।

कैकेयी—मेरा पुत्र राजा होवे।

भरत—और अब वे आर्य आपके कौन हैं ?

अर्थ [श्लोक १९]—क्या राम मेरे पिता के औरस पुत्र नहीं है ? क्या पुत्रों का राज्याभिषेक उनकी ज्येष्ठता के क्रम से नहीं किया जाता, क्या भाइयों में परस्पर स्नेह नहीं होना चाहिये ? क्या राम का राज्याभिषेक प्रजाओं को अच्छा नहीं लग रहा है ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या—किं रामः मे पितुः जनकस्य दशरथस्य औरसः धर्मशास्त्रपरम्परया धर्मपत्न्याः समुत्पन्नः पुत्रः सुतः न वर्तते, अथवा पुत्राः राजसिंहासने क्रमेण ज्येष्ठभावक्रमेण न अभिषिच्यन्ते ? ज्येष्ठस्य सर्वप्रथमं राज्याभिषेको विधीयते, रामश्च

इस श्लोक में भरत कहते हैं कि सीता को पैदल ही वन में जाना पड़ा

ज्येष्ठः । किं भ्रातरः सहजाता: भ्रातरः दयिता: परस्परस्नेहसम्पन्नाः न स्युः न भवेयु। रामस्य मयि मम च रामे सहजस्नेहो वर्तते । कोऽपि भवेद् राजा, न किमप्यत्रात्याहितम् । अथवा रामस्य राज्याभिषेकः प्रकृतीनां प्रजानां न रोचते प्रकृतयोऽपि रामस्य राज्याभिषेकम् अभिलषन्ति; अतः भवत्या यत्कृतं राज्यलोभवशंवदया कृतम् । अत्यनुचितं नीचकार्यं विहितमिति भावः ॥१६॥

व्याकरण—उरसो जातः = उरस् + अण = औरस । भ्राज् + तृन् = भ्रातृ ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

कैकेयी—जाद ! सुक्कलुद्धा णणु पुच्छिदव्वा ? [जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ?

(भ) वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥२०॥

[अन्वयः—वल्कलैः, हृतराज्यश्रीः, पदातिः, भार्यया सह, वनवासं त्वया आज्ञप्तः । शुल्के एतद् अपि उदाहृतम् ॥२०॥]

हिन्दी रूपान्तर—

कैकेयी—पुत्र ! शुल्क का लोभ रखने वाली से क्या यह पूछना चाहिये ?

भरत—

अर्थ [श्लोक २०]—वल्कलवस्त्र पहना कर, राज्यलक्ष्मी को छीनकर, पैदल ही पत्नी के साथ राम को वनवास में तुमने भेज दिया । शुल्क में क्या यह भी कहा गया था ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—वल्कलैः वल्कलवस्त्राणि परिधाय, हृतराजश्रीः हृता अपहृता राजश्रीः राजलक्ष्मीर्यस्य तादृशः पदातिः पादचारी एव भार्यया पत्न्या सीतया सह स रामः वनवासं काननिवासं त्वया कैकेय्या अज्ञाप्तः आदिष्टः । तवादेशेन स रामः वल्कलवस्त्राणि परिधाय, राज्य परित्यज्य, पादचारी भूत्वा, पत्न्या सह वनं गतवान् । शुल्के विवाहशुल्के किम् एतद् अपि उदाहृतं कथितं प्रतिज्ञातमासीत् ? विवाहशुल्कस्त्वासीद् यत्ते पुत्रोराजा भविष्यति केवलम् । न तत्र रामस्य वनवासोऽपि प्रतिज्ञातः । त्वया किमर्थं रामस्य वनवास आदिष्टः ॥२०॥

व्याकरण—हृता रामस्य श्रीः यस्य स—हृतराजश्रीः । हृ + क्त = हृत । श्री + क्विप् = श्री । पदाभ्याम् अतति = पद + √अत् + इन = पदाति । उत् + आ + √हृ + क्त = उदाहृत ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

कैकेयी:—जाद ! देसकाले निवेदेमि । [जात ! देशकाले निवेदयामि ।]

इस श्लोक में भरत कैकेयी से कहते हैं कि क्या राम तुम्हारा बेटा नहीं है।

(२१)

K.S

भरत:— **अयशसि यदि लोभ: कीर्तयित्वा किमस्मान्**
यदि नृपफलतर्ष: किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्र: ॥२१॥

[अन्वय—यदि अयशसि लोभ:, अस्मान् कीर्तयित्वा किम् ? यदि नृपफलतर्ष: किं नरेन्द्र: न दद्यात् । अथ तु नृपतिमाता, इति एष शब्द: ते इष्ट:, भवति ! वदतु, सत्यं आर्य किं तव पुत्र: न ॥२१॥]

हिन्दी रूपान्तर—

कैकेयी—पुत्र ! उचित देश और काल में बताऊँगी ।

भरत—

अर्थ [श्लोक २१]—यदि तुमको अपकीर्ति पाने का लोभ है तो हमारे कथन करने से तुमको क्या लाभ हुआ ? यदि राज्य के फलों के भोगों की तृष्णा थी, तो क्या राजा दशरथ यह तुमको नहीं दे देते ? और यदि राजमाता यह कहलाने का शब्द तुमको इष्ट था, तो आप बताये कि सचमुच ही आर्य राम आपके पुत्र नहीं हैं ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मात: ! त्वयेदं कुकृत्यं कस्मातकारणाल्लोभाद्वा कृतमिति मया न ज्ञायते । यदि अयशसि अपकीर्तिर्मे भूयादिति तस्मिन् कर्मणि ते लोभ: लालसा आसीत्, तदा अस्मान् मां भरतं कीर्तयित्वा अस्मन्नाम कीर्तनेन भरतार्थमेवाहं राज्यं ययाचे इति कथनेन किं तव को लाभः ? राज्यग्रहणं त्वहं कदापि न करिष्यामीत्यर्थ:; अत: मन्नामग्रहणं सर्वथा निरर्थकमेव । यदि च नृपफलतर्ष: राज्योपभोगवस्तुषु ते तृष्णा आसीत्, किं नरेन्द्र: राजा दशरथ: ते तुभ्य न दद्यात् राज्यभोगान् तुभ्यं समर्पयितुमसमर्थ आसीत् ? दशरथ: ते भर्ता एव सकलानि राज्यसुलभोपभोगवस्तूनि तुभ्यं दद्यात्; अत: राज्यलोभोऽपि व्यर्थ एव । अथ तु यदि च नृपतिमाता, राजमाता इति एष शब्द:, मां लोका: राजमातरं कथयेयुरति तव इष्ट: प्रिय: आसीत्, भवति ! वदतु कथयतु, सत्यं यथार्थत्वेनैव आर्य: राम: तव पुत्र: सुत: न ? रामोऽपि तव एव सुत: । तस्य राज्याभिषेकेनापि त्वं राजमाता इति पदविभूषिता स्यात्; अत: तव राज्यार्थे रामस्य वनप्रेषणं निष्फलमेव वर्तते ॥२१॥

व्याकरण—नृपफलतर्ष:—नृपस्य फलेषु तर्ष: । तृष् + अच् = तर्ष ।

छन्द:—मालिनी ।

अलङ्कार—समुच्चय । कैकेयी का भरत के लिए राज्य माँगना व्यर्थ था, इसकी सिद्धि एक हेतु से होने पर भी अनेक हेतुओं का कथन करने से समुच्चय अलङ्कार है ।

कष्टं कृतं भवत्या—

> त्वयाराज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
> सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रजवनमिति प्रेषितवती ।
> न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवतीं
> अहो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदयं वज्रकठिनम् ॥२२॥

[अन्वयः—राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः न एव गणितः । त्वं ज्येष्ठं सुतं वनं व्रज इति प्रेषितवती । भवति ! जनकतनयां वल्कलवतीं दृष्ट्वा यत् न शीर्णं, अहो, धात्रा हृदय वज्रकठिन सृष्टम् ॥२२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

आपने कष्टदायक कार्य किया—

अर्थ, श्लोक २२—राज्य की इच्छा करने वाली तुमने राजा के प्राणों की भी परवाह नहीं की । तुमने ज्येष्ठ पुत्र को, वन जाओ, इस प्रकार कह कर वन भेज दिया । जनक पुत्री सीता को वल्कल वस्त्र पहने हुए देखकर भी जो तुम्हारा हृदय फट नहीं गया, तो हे देवि ! विधाता ने आपके हृदय को वज्र के समान कठोर बनाया है ।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या—राज्यैषिण्या पुत्रार्थमद्य भरताय राज्यं कामयमानया त्वया नृपतिः राजा दशरथ असुभि: प्राणैरपि न गणितः अपेक्षितः । राज्यलोलुपात्वं राज्ञः प्राणानपि न गणयाभास, स च स्वर्गं गतः । त्वं कैकेयी, ज्येष्ठं प्रथमजं सुतं पुत्रं रामं, वनं काननं व्रज गच्छ, इति कथयित्वा प्रेषितवती अस्मात् नगरान्निष्कास्य वनबासं ददौ । भवति ! जनकतनयां जनकपुत्रीं सीतां वल्कलवतीं चीरवस्त्रधारिणीं दृष्ट्वा अवलोक्य अपि यत् हृदयं न शीर्णं स्फुटितं तदहं मन्ये, अहो, धात्रा विधिना ते हृदयं वज्रकठिनं कुशिल इव कठोरं सृष्टं विनिर्मितम् । तव हृदयं वज्र इव कठोरं वर्तते येनं त्वया ईदृशानि पापपूर्णनिघृणकार्याणि कृतानि ॥२२॥

व्याकरण—राज्यमिच्छति अर्थ में—राज्य + √इष् + णिनि + ङीप् = राज्य + ऐषिणी = राज्यैषिणी । वल्कानि सन्ति अस्य—वल्कल + मतुप् + ङीप् = वल्कलवती । सृज् + क्त = सृष्ट ।

छन्दः—शिखरिणी ।

अलङ्कार—समुच्चय और अनुमान । तुम्हारा हृदय वज्र के समान कठोर है, इस अर्थ की सिद्धि के लिए अनेक हेतुओं का कथन करने से समुच्चय अलङ्कार है । श्लोक के पहले तीन पादों के तीन हेतुओं से चतुर्थ-पाद के अर्थ का अनुमान लगाने से अनुमान अलङ्कार भी हो सकता है । दोनों में कौन-सा अलङ्कार होना चाहिये, इसके साधक-बाधक प्रमाण न होने से सन्देहसंकर है ।

सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्दगयुतौ विज्ञापयतः—

(23) इस श्लोक में बताया गया है कि राजा के बिना प्रजा गलत रास्ते पर चली जाती है।

गोपहीनाः यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥२३॥

[अन्वयः—गोपहीनाः अपालिताः गावः यथा विलयं यान्ति, एवं नृपतिहीनाः प्रजाः हि वै विलयं यान्ति ॥२३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—हे कुमार ! ये दोनों वसिष्ठ और वामदेव, प्रजाओं के साथ अभिषेक सामग्री को आगे करके आपके पास आकर निवेदन करते हैं—

गलत रास्ते पर चलना

[**अर्थ श्लोक २३**]—ग्वालों से रहित और रक्षा न की जाती हुई गौयें जिस प्रकार विनष्ट हो जाती हैं, इसी प्रकार राजा से रहित अरक्षित प्रजाएँ भी निश्चय से नष्ट हो जाती हैं ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—गोपहीनाः गोपेभ्यः गोपालकेभ्यः हीना विवर्जिताः अपालिताः अरक्षिताः गावः धेनवः यथा विलयं यान्ति विनश्यन्ति, एवम् अनेनैव प्रकारेण नृपतिहीनाः नृपतिभ्यः पार्थिवेभ्यः हीनाः विवर्जिताः; अतः अरक्षिताः प्रजाः हि वै निश्चयेन विलयं यान्ति विनाशं प्राप्नुवन्ति; अतः प्रजानां रक्षणाय भरतस्य राज्याभिषेकः अनिवार्यः ॥२३॥

व्याकरण—गोपेभ्यः हीनाः=गोपहीनाः । गां पाति रक्षयति पालयति= गो+√पा+क=गोप । अथवा गुप् रक्षणे=√गुप्+अच्=गोप : वि+√ली +अच्=विलय ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—वाक्योपमा । इसमें श्लोक का प्रथमार्ध वाक्य उपमान और द्वितीयार्ध वाक्य उपमेय है ।

भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ?

भरतः—अभिषेकमिति इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।

सुमन्त्रः—क्व भवान् यास्यति ?

भरतः— **तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।**
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥२४॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

[अन्वयः—तत्र यास्यामि यत्र असौ लक्ष्मणप्रियाः वर्तते । तं विना अयोध्या अयोध्या न । यत्र राघवः सा अयोध्या ॥२४॥]

(24) इस श्लोक में भरत कहते हैं कि जहाँ पर राम है वहीं पर अयोध्या है।

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—प्रजायें मेरे पीछे आवें।

सुमन्त्र—राज्याभिषेक को छोड़कर आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—अभिषेक, यह कहते हो। इन आदरणीया का अभिषेक कीजिये।

सुमन्त्र—आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—

अर्थ [श्लोक २४]—मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ वह लक्ष्मण को प्रेम करने वाला राम है। उसके बिना अयोध्या, अयोध्या नहीं है। जहाँ राम हैं, वहीं अयोध्या है ॥२४॥

(सब निकल जाते हैं)

॥ तीसरा अङ्क पूरा हुआ ॥

संस्कृत-व्याख्या—तत्र तस्मिन् स्थाने अहं यास्यामि गमिष्यामि, यत्र यस्मिन् स्थाने असौ लक्ष्मण प्रियः लक्ष्मणः सौमित्रिः प्रियः स्नेहपात्र यस्य तादृशः रामः वर्तते विद्यते। तं रामं विनां अयोध्या, अयोध्या न वर्तते। रामं विना अयोध्या न शोभते। यत्र राघवः रघुवंशीयः रामः वर्तते, सा एव अयोध्या रघुकुलराजधानी अस्ति। एवमह रामसकाशमेव गमिष्यामि। सर्वाः प्रकृतयो मामनुगच्छन्तु ॥२४॥

व्याकरण—लक्ष्मणः प्रियः यस्य स लक्ष्मणप्रियः। तं विना=विना के योग में "पृथग्विनानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" सूत्र से द्वितीया विभक्ति। रघोरपत्यम्= रघु+अण्=राघव।

छन्द—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—विनोक्ति। जहाँ एक के बिना दूसरी वस्तु शोभन नहीं होती या शोभन होती है, वहाँ विनोक्ति अलङ्कार है। 'त बिना' कहकर कवि कहता है कि राम के बिना अयोध्या शोभित नहीं होती; अतः यहाँ विनोक्ति अलङ्कार है।

अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः—अपने राज्याभिषेक की तैयारी देखकर भरत ने निश्चय कर लिया कि वह प्रजाओं को लेकर राम के पास जायेगा और उनको वन से लौटा कर उनका ही राज्याभिषेक करेगा।

इति भास विरचित प्रतिमानाटके डॉ० कृष्णकुमार व्याख्यायाः

तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ॥

—:०:—

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतश्चेटयौ)

विजया—हला णन्दिणिए ! भणेहि, भणेहि । अज्ज कोसल्लापुरोगेहि सव्वेहि अन्तेवुरेहि पडिमागेहं दट्टुं गदेहि तहिं किल भट्टिदारओ भरदो दिट्ठो ? अहं च मन्दभाआ दुवारे ट्ठिदा । [हला नन्दिनिके ! भण भण । अद्य कौसल्या-पुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैः प्रतिमागेहं द्रष्टुं गतैस्तत्र किल भर्तृदारको भरतो दृष्टः ? अहं च मन्दभागा द्वारे स्थिता ।

नन्दिनिका—हला ! दिट्ठो अम्हेहि कोदूहलेण भट्टिदारओ भरदो । [हला ! दृष्टोऽस्माभिः कौतूहलेन भर्तृदारको भरतः ।]

विजया —भट्टिणी कुमारेण किं भणिदा ? [भट्टिनी कुमारेण किं भणिता ?]

नन्दिनिका—किं भणिदं ? आलोइदुं वि णेच्छदि कुमारो । [किं भणि-तम् ? अवलोकितुमपि नेच्छति कुमारः ।]

विजया—अहो अच्चाहिदम् । रज्जलुद्धाए भट्टिदारअस्स रामस्स रज्ज-विब्भट्ठं करन्तीए अत्तणो वेहव्वं आदिट्ठं । लाओ वि विणासं गमिओ । णिग्घिणा खु भट्टिणी । पापअं किदं । [अहो अत्याहितम् । राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम् । लोकोऽपि विनाशं गमितः । निर्घृणा खलु भट्टिनी । पापकं कृतम् ।]

नन्दिनिका—हला ! सुणाहि । पइदीहि आणीदं अभिसेअं विसज्जिअ रामतवोवणं गदो कुमारो । [हला ! शृणु । प्रकृतीभिरानीतमभिषेकं विसृज्य रामतपोवनं गतः कुमारः ।]

विजया—(सविषादम्) हम् ! एव्वं गदो कुमारो णन्दिणिए ! एहि, अम्हे भट्टिणिं पेक्खामो । [हम् ? एवं गतः कुमारः । नन्दिनिके ! एह्यावां भट्टिनीं पश्यावः ।]

(निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः

हिन्दी रूपान्तर--

(तदनन्तर दो चेटियाँ प्रवेश करती हैं)

विजया—हला नन्दिलिके ! कहो, कहो । आज कौसल्या के साथ सारे

अन्तःपुर की स्त्रियाँ प्रतिमागृह को देखने के लिये गयी थीं। वहाँ उन्होंने क्या राजकुमार भरत को देखा था ? मैं तो अभागिनी दरवाजे पर ही खड़ी रही।

नन्दिनिका—हला ! हमने कुतूहल में भरकर राजकुमार भरत को देखा था।

विजया—राजकुमार ने स्वामिनी से क्या कहा ?

नन्दिनिका—कहने का क्या ? कुमार तो उसको देखना भी नहीं चाहते।

विजया—अहो, महान् अनर्थ हो गया, राज्य का लालच करने वाली स्वामिनी ने राम को राज्य से च्युत करके अपने को विधवा बना लिया और प्रजाओं को भी नष्ट कर दिया। निश्चय ही स्वामिनी अति नृशंस हैं। उन्होंने पाप किया है।

नन्दिनिका—हला ! सुनो। अमात्य आदियों द्वारा प्रस्तुत किये गये राज्य-अभिषेक को छोड़ कर कुमार भरत, राम के तपोवन को चले गये हैं।

विजया—(दुःख से) हम् ! कुमार चले ही गये। नन्दिनिके ! आओ ! हम दोनों स्वामिनी को देखती हैं। (निकल जाती हैं)

प्रवेशक पूरा हुआ

टिप्पणी—

प्रविशत······पिछले अङ्क से विदित होता है कि भरत ने प्रजा-जनों के साथ राम के तपोवन जाकर उनको पुनः वापिस लाकर उनका राज्यारोहण करने का निश्चय किया था। चतुर्थ अङ्क में भरत के राम तपोवन की ओर जाने तथा राम से वापिस लौटने का अनुरोध करने का कथानक प्रारम्भ होता है। दोनों अङ्कों की मध्यवर्ती घटना का इस प्रवेशक द्वारा संकेत किया गया है कि राम के पास जाने का निश्चय करके भरत उनके तपोवन पहुँच गये हैं।

अत्याहितम्—बहुत अधिक अनर्थ हो गया है। अति + आ + √धा + क्त = अत्याहित।

राज्यविभ्रष्टम्—राज्यात् विभ्रष्टम्। वि + √भ्रंश् + क्त।

वैधव्यम्—विगतः धवः यस्या सा = विधवा। विधवायाः भावः = विधवा + ष्यञ् = वैधव्य।

प्रकृतिभिः—राज्य को सात प्रकृतियों वाला कहा गया है—राजा, मन्त्री, प्रजा, कोश, दुर्ग, सेना और राष्ट्र। भरत सब प्रकृतियों को साथ लेकर राम के पास गये थे।

निर्घृणा—निर्गता घृणा करुणा यस्याः सा, निर्घृणा।

प्रवेशक—प्रवेशक का लक्षण तृतीय अङ्क में—लिखा जा चुका है।

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च)

भरतः— **स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे**
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः।

द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु ।
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥१॥

[अन्वयः—सुकृतानुयात्रे नरपतौ स्वर्गं गते, पौराश्रुपातसलिलैः अनुगम्यमानः अकृपणेषु तपोवनेषु रामाभिधानम् जगतः अपरं शशाङ्कं द्रष्टुं प्रयामि ॥१॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर रथ पर बैठे हुए भरत और सुमन्त्र दिखायी देते हैं)

भरत—

अर्थ [श्लोक १]—पुण्यों के सामर्थ्य को साथ लेने वाले राजा दशरथ के स्वर्ग चले जाने पर, नगरनिवासियों के अश्रु-प्रवाहों से अनुसरण किया जाता हुआ मैं रमणीय तपोवनों में, राम नाम के संसार के दूसरे चन्द्रमा को देखने के लिए जा रहा हूँ। पिता तो पुण्यों के बल से स्वर्ग चले गये । मैं राम को लेने के लिए जा रहा हूँ तथा आँसू बहाती हुई प्रजाएँ मेरे पीछे चल रही हैं ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—सुकृतानुयात्रे सुकृतानि पुण्यानि अनुयात्राणि अनुगामीनि यस्य तस्मिन् नरपतौ राजनि दशरथे स्वर्गं नाकं गते सम्प्राप्ते, मे पिता राजा दशरथः स्वसुकृतप्रभावेण स्वर्गं गत इत्यर्थः । पौराश्रुपातसलिलैः पौराणाम् नगरनिवासिनाम् अश्रुपातसलिलैः अश्रुपातानां नयनजलप्रवाहाणां सलिलैः नीरैः अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः, नयनेभ्योऽश्रूणि क्षरन्त्यः प्रजाजनाः मामनुगच्छन्ति इत्यर्थः । अकृपणेषु दैन्यरहितेषु रमणीयेषु इत्यर्थः तपोवनेषु तपःस्थलेषु वसन्तमित्यर्थः, रामाभिधानं राम इति अभिधानं नाम यस्य तं जगतः लोकस्य अपरं द्वितीयं शशाङ्कं चन्द्रमसं द्रष्टुम् अवलोकयितुं प्रयामि गच्छामि । स तु रामः जगतः अपरः शशाङ्कः शशाङ्कवत् नयनाह्लादकः हृदयशीतलकरश्च, तं द्रष्टुं यामि ॥१॥

व्याकरण—सुकृतानि अनुयात्राणि यस्य सन्ति तस्मिन् सुकृतानुयात्रे । अनु + √या + त्रल् + टाप् = अनुयात्रा । रामः अभिधानं यस्य तम् = रामाभिधानम् । अभि + √धा + ल्युट् (अन) = अभिधान ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—रूपक । राम उपमेय पर शशाङ्क उपमान का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है ।

सुमन्त्रः—एष एव आयुष्मान् भरतः—

दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो: ।
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥२॥

[अन्वयः—दैत्यन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रः, यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः, पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य रामस्य भ्राता रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥२॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—ये ही आयुष्मान् भरत है—

अर्थ [श्लोक २]—दैत्यों के गर्व का विनाश करने वाले राजा दशरथ का पुत्र, यज्ञों में राज्य की सम्पत्ति को लगा देने वाले राजा अज का पौत्र, और पिता का प्रिय करने वाले तथा संसार के प्रिय राम का भाई यह भरत राम के मार्ग के समान मार्ग से अर्थात् वन्य मार्ग से जा रहा है ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—दैत्यन्द्रमानमथनस्य दैत्यान्द्राणाम् असुरेशानां मानस्य गर्वस्य मथनस्य विनाशकस्य नृपस्य राज्ञः दशरथस्य पुत्रः सुतः, यज्ञोपयुक्तविभवस्य यज्ञेषु अध्वरेषु उपयुक्ताः विनियोगं प्रापिताः विभवाः ऐश्वर्याणि येन तस्य नृपस्य राज्ञः अजस्य पौत्रः पितुः जनकस्य दशरथस्य प्रियकरस्य प्रियसम्पादनशीलस्य, जगत्प्रियस्य लोकप्रियस्य रामस्य भ्राता अनुजः अयं भरतः रामसदृशेन रामतुल्येन पथा मार्गेण प्रयाति गच्छति। येन पथा रामो गतस्तेनैवायं गच्छतीत्यर्थः। अत्र भरतस्य पितु-पितामहभ्रातृणां गुणानां कीर्तनं कृत्वा। भरतोऽपि तान् गुणाननुसरतीति कवेरभि-प्रायः ॥२॥

व्याकरण—दैत्यानामिन्द्राः दैत्येन्द्रास्तेषां मानं मथ्नाति इति तस्य = दैत्येन्द्र-मानमथनस्य। यज्ञेषु उपयुक्ताः विभवाः येन तस्य = यज्ञोपयुक्तविभस्य। उप + √युज् + क्त = उपयुक्त। वि + √भू + अच् = विभव। जगतः प्रियस्य = जगत्प्रियस्या √प्री + क = प्रिय।

छन्दः—वसन्ततिलका।

अलङ्कार—परिकर। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करने से यहाँ परिकर अलङ्कार है।

भरतः—भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि।

भरत—क्व तत्रभवान् ममार्यो रामः। क्वासौ महाराजस्य प्रति-निधिः। क्व सन्निदर्शनं सत्त्ववताम्? क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः? क्व तत् पात्रं यशसः? क्वासौ नरपतेः पुत्रः? क्वासौ सत्यम-नुवृतः?

> मम मातु प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता।
> तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमंमम ॥३॥

[अन्वयः—मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीः विसर्जिता, मम परमं दैवतं तम् अहं द्रष्टुम् इच्छामि ॥३॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—हे तात !

सुमन्त्र—कुमार ! यह मैं हूँ।

भरत—आदरणीय मेरे भाई राम कहाँ हैं ? महाराज दशरथ के प्रतिनिधि वे राम कहाँ है ? सामर्थ्यशालियों के उत्तम उदाहरण राम कहाँ है ? राज्य की लोभी कैकेयी का तिरस्कार करने वाले वे राम कहाँ है ? यश के पात्र वे राम कहाँ हैं ? राजा दशरथ के पुत्र वे राम कहाँ है ? सत्य का पालन करने वाले वे राम कहाँ हैं ?

अर्थ [श्लोक ३]—मेरी माता कैकेयी का प्रिय करने के लिए जिसने राजलक्ष्मी को छोड़ दिया था, अपने परम देवता उस राम को मैं देखना चाहता हूँ ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—मम भरतस्य मातुः जनन्याः कैकेय्याः प्रियं कर्तुं सम्पादयितुं येन लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः विसर्जिता परित्यक्ता, मम आत्मनः परमं सर्वोत्कृष्टं सततमाराधनीयं दैवतम् अभीष्टदेवतां तं रामम् अहं द्रष्टुम् अवलोकयितुम् इच्छामि अभिलषामि । मम मातरं प्रसादयितुं यः राजलक्ष्मीमपि विसृष्टवान् स एव मे भ्राता रामः ईष्टदेवता । तस्यैव मे दर्शनाभिलाषा स एव मे आराध्यः । अतोऽहं तपोवनं गच्छामि ।।३।।

व्याकरण—वि + $\sqrt{}$सृज् + णिच् + क्त + टाप् = विसर्जिता । देवता + अण् = दैवत ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग । समर्थनीय अर्थ का समर्थन करने से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है,

क्व तत्रभवानार्यो राम······—इन वाक्यों से भरत को राम के प्रति अत्यधिक स्नेह तथा आदर का भाव, पिता के प्रति आदरभाव और माता के प्रति तिरस्कार का भाव व्यञ्जित होता है । यहाँ एक ही राम का अनेक प्रकार से उल्लेख करने के कारण उल्लेख अलङ्कार है ।

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

> **अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।**
> **सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिताः ।।४।।**

[**अन्वयः**—अत्र महायशाः रामः च सीता च लक्ष्मणः च । येषु सत्यं, शीलं, भक्तिः च विग्रहवत् स्थितः ।।४।।

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—कुमार ! इस आश्रम के स्थान में—

अर्थ [श्लोक ४]—इस आश्रम में महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण रहते हैं, जिनमें सत्य, शील और भक्ति मानों मूर्तिमान रूप से स्थित हैं । राम में सत्य, सीता में शील और लक्ष्मण में भक्ति निहित हैं ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—अत्र अस्मिन् आश्रमपदे महायशा महान् विमलकीर्तिशाली रामः, सीता, लक्ष्मणश्च तिष्ठन्तीति शेषः। येषु त्रिषु क्रमशः सत्यं, शीलं भक्तिः च इति अतोऽपि विग्रहवत् मूर्तिमन्त इव स्थिताः सन्निहिताः सन्ति। रामे सत्यं, सीतायां शीलं लक्ष्मणे च भक्तिः इति त्रितयं स्थितम् ॥४॥

व्याकरण—महान् यशः यस्य स महायशाः। √भज्+क्तिन्=भक्ति। विग्रह+वति=विग्रहवत्।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और यथासंख्य। मानों शरीर रूप में स्थित है, यह सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। राम आदि में क्रमशः सत्य आदि का वर्णन करने से यथासंख्य अलङ्कार है।

भरतः—तेन हि स्थाप्ययतां रथः।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (तथा करोति)

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (निष्क्रान्तः)

भरतः—भोस्तात! निवेद्यताम्।

सुमन्त्रः—कुमार! किमिति निवेद्यते?

भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति।

सुमन्त्र—कुमार! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम्?

भरतः—सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्। तेन हि उच्यताम्—इक्ष्वाकु कुलव्यङ्गभूतो भरोत दर्शनमभिलषतीति।

सुमन्त्र—कुमार! नाहमेवं वक्तुं समर्थः। अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम्?

भरतः—न न। नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव मे प्रतिभाति। किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते? तस्मात् तिष्ठतु तातः। अहमेव निवेदयिष्ये। भो भो! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

निर्घृणाश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥५॥

[अन्वयः—निर्घृणः च, कृतघ्नः च प्राकृतः, प्रियसाहसः, भक्तिमान् कश्चित् आगतः, कथं तिष्ठतु, यातु इति ॥५॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—तो रथ को रोक लो।

सुमन्त्र—जैसा आयुष्मान् आदेश देते हैं। (वैसा ही करता है)

भरत—(रथ से उतर कर) सूत्र ! एकान्त में घोड़ों को विश्राम कराओ।

सूत—जैसा आयुष्मांन् आदेश देते हैं। (निकल जाता है)

भरत—हे तात ! निवेदन करो, निवेदन करो।

सुमन्त्र—कुमार ! क्या निवेदन किया जावे ?

भरत—राज्य की लोभी कैकेयी का पुत्र भरत आ पहुँचा है।

सुमन्त्र—कुमार ! गुरुजन के प्रति निन्दा करना ठीक नहीं है।

भरत—ठीक है, दूसरों के दोष कहना उचित नहीं है। इसलिए कहो—इक्ष्वाकु बंश का कलङ्कभूत भरत दर्शन करना चाहता है।

सुमन्त्र—कुमार ! मैं ऐसा करने में समर्थ नहीं हूँ। यदि अनुमति हो तो कहूँ—भरत आ पहुचे हैं।

भरत—नहीं-नहीं। केवल नाम लेने से तो मुझको प्रतीत होता है कि मैंने प्रायश्चित्त नहीं किया है। क्या ब्रह्म हत्यारों के आगमन की सूचना भी दूसरे ही देते हैं ? इसलिए तात रहने दें। मैं ही निवेदन करूँगा। हे लोगों ! पिता के आदेश का पालन करने वाले राम से निवेदन करो, निवेदन करो—

अर्थ श्लोक ५]—निर्दयी, कृतघ्न, नीच, उद्दण्ड, और भक्ति से भरा कोई आया है। वह क्या ठहरे या चला जावे ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—निर्घृण: निर्गता घृणा दया यस्य स निर्दय:, कृतघ्न: कृतमुपकारं हन्ति विनाशयति इति कृतघ्न: उपकारविनाशक:, प्राकृत: पामर:, प्रियसाहस: प्रिय: साहस: उद्दण्डता यस्य स उद्दण्ड:, भक्तिमान् परं भवद्विषये भक्तिशाली कश्चित् अनिर्देश्याभिधाना आगत: अत्र भवतामाश्रमद्वारि समायात:। कथं केनापि प्रकारेण स तिष्ठतु भवत्प्रतीक्षणपर: अत्रैव स्थितो भवतु, यातु गच्छतु वा ? ॥५॥

व्याकरण—कृतं हन्ति = कृ + √हन् + क = कृतघ्न। प्र + आ + √कृ + क्त = प्राकृत। भक्ति + मतुप् = भक्तिमत्।

छन्द—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—परिकर। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करने से परिकर अलङ्कार।

राज्यलुब्धाया:—राज्याय लुब्धा राज्यलुब्धा। तस्या: राज्यलुब्धाया:। √लुभ् + क्त + क्तटाप् = लुब्धा। भरत बहुत लज्जित है कि राज्य के लोभ के वशीभूत होकर उसकी माता ने राम को वन भेजा तथा पिता की मृत्यु का कारण बनी।

न न्याय्यम्—न्यायस्य योग्यम् = न्याय + ष्यञ् = न्याय्य। दूसरों के दोषों का कथन करना उचित नहीं समझा जाता।

इक्ष्वाकुकुलन्यग्भूतः—इक्ष्वाकूणां कुलस्य न्यग्भूतः। न्यक् + √भू + क्त = न्यग्भूत।

नाहमेवं वक्तुं समर्थः—सुमन्त्र अपने को असमर्थ पाते हैं कि कैकेयी या भरत के लिए निन्दासूचक शब्दों का प्रयोग कर सकें।

ब्रह्मघ्नानामपि......—ब्रह्म ब्राह्मणं हन्ति = ब्रह्मन् + हन् + क + ब्रह्मघ्न। ब्राह्मण की हत्या करना महान् पाप समझा गया था। वह लोक में तिरस्कृत होता है तथा कोई उसका नाम लेना भी पसन्द नहीं करता। माता द्वारा किये गये अपराध का कारण स्वयं मान कर भरत अपने को ब्रह्म-हत्यारे के समान पापी समझता है।

पितृवचनकराय—पितुः वचनं करोतीति तस्य। पिता का वचन रखने के लिए वन जाने वाले राम की भरत प्रशंसा करते हैं, परन्तु वचन में यह उलाहना भी निहित है कि उन्होंने अन्य सबको संकट में डाल दिया है।

(ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम्)

रामः—(आकर्ण्य सहर्षम्) सौमित्रे! किं शृणोषि? अपि विदेहराजपुत्रि! त्वमपि शृणोषि?

> कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे
> गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम्।
> यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां
> सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥६॥

[अन्वयः—मे पितुः सदृशतरः असौ कस्य स्वरः गाम्भीर्यात् मेघनादं परिभवति इव? सस्नेहः यः मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां कुर्वन् इष्टतः श्रुतिपथं प्रविष्टः ॥६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के साथ राम प्रवेश करते हैं)

राम—(सुनकर प्रसन्नता से) हे लक्ष्मण! क्या सुन रहे हो? हे विदेहराज पुत्री! सीते! तुम भी सुन रही हो?

अर्थ [श्लोक ६]—मेरे पिता के स्वर के बहुत अधिक समान यह किसका स्वर है, जो गम्भीर होने के कारण मानो मेघ के स्वर को तिरस्कृत कर रहा है? स्नेह से भरा जो स्वर मेरे हृदय में भाई की आशंका उत्पन्न करता हुआ प्रिय रूप होकर कानों के मार्ग में प्रविष्ट हो रहा है। यह स्वर लगता है कि मेरे भाई का है और कानों को अति प्रिय लग रहा है ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—मे मम रामस्य पितुः जनकस्य दशरथस्य सदृशतरः अत्यधिकं समानः असौ अयं कस्य स्वरः कण्ठनिःसृतः ध्वनिः गाम्भीर्यात् गम्भीरत्वेन मेघनाद मेघानां जलदानां नादं गर्जनं परिभवति तिरस्करोति? सस्नेहः स्नेहसम्भृतः यः

स्वरः मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां बन्धोरेवायं स्वर इति आशङ्कां कुर्वन् जनयन् इष्टतः अतिप्रियभावेन श्रुतिपथं कर्णमार्गं प्रविष्टः । अयं स्वरस्तु मे तातस्य स्वरस्य अत्यधिकं सदृशः मेघगर्जनवच्च गम्भीरः । परिचितभावाच्च कस्यचिन्मे बन्धोरेव, श्रुतिगोचरतां गतश्च अभीष्ट इव प्रतिभाति ॥६॥

व्याकरण—अयमपिसदृशः अयमपि सदृशः अयमनयोरतिशयेन सदृशः=सदृश+तरप्=सदृशतर । गम्भीर+ष्यञ्=गाम्भीर्य । मेघानां नादम्=मेघनादम् । √नद्+घञ्=नाद ।

छन्दः—प्रहर्षिणी ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक । मानो तिरस्कृत कर रहा है, यह सम्भावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । मेघनाद इस उपमान की अपेक्षा स्वरः इस उपमेय में गुणों का आधिक्य वर्णन करने के कारण व्यतिरेक अलङ्कार है ।

लक्ष्मणः—आर्य ! ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति । एष हि—

> **घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः**
> **कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः ।**
> **यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया**
> **चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥७॥**

[**अन्वयः**—घनः, स्पष्टः, धीरः, समदवृषभस्निग्धमधुरः, कलः, कण्ठे वक्षसि यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया अनुपहतसञ्चाररभसः, चतुर्णां वर्णानाम् अभयम् इव दातुं व्यवसितः ॥७॥

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—आर्य ! निश्चय से यह स्वर मेरे हृदय में भाई के प्रति अत्यधिक आदर के भाव को उत्पन्न कर रहा है; क्योंकि यह—

अर्थ [श्लोक ७]—यह स्वरसंयोग घना है, स्पष्ट है, धैर्य से युक्त है, मद से भरे हुए साँड के स्वर के समान स्निग्ध और मधुर है, कोमल ध्वनि वाला है, कण्ठ और वक्ष में उचित तालु-मूर्धा आदि उचित स्थानों को प्राप्त करके स्पष्ट रूप से विविध वर्णों का उच्चारण होने के कारण उसके प्रभाव का वेग रुक नहीं रहा और यह चारों वर्णों को मानो अभय देने के लिए उद्यत है । ७॥

संस्कृत-व्याख्या—स्वरसंयोगस्त्वयं घनः निविडः, स्पष्टः सम्यक्परिचीयमानाक्षरः, धीरः गाम्भीर्यगुणसम्पन्नः, समदवृषभस्निग्धमधुरः समदः मदोन्मत्तः यः वृषभः बलीवर्दस्तस्य स्वर इव स्निग्धः सरसः मधुरः रमणीयश्च, कलः कोमलमधुरः, कण्ठे गले वक्षसि हृद्देशे च यथास्थानं यथायोग्यं स्थानं प्राप्य अधिगम्य स्फुटकरणनानाक्षर-

तया स्फुटभावेन प्रतीयमानानि यानि करणानि उच्चारणसाधनानि तैः नानाक्षराणि विविधवर्णाः तेषां भावस्तत्ता तया अनुपहतसञ्चाररभसः अनुपहतः अप्रतिरुद्धः सञ्चारस्य शब्दोच्चारण प्रचारस्य रभसः वेगः यस्य सः यः यथास्थानं वर्णोच्चारणशक्त्या विविधाक्षरान् स्पष्ट रूपेण वेगेन च उच्चारयितुं समर्थः इति भावः, चतुर्णां चतुःसंख्यापरिमितानां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य शूद्राणाम् अभयं निर्भयत्वम् इव दातुं व्यवसितः उद्युक्तः । मुखे कण्ठे वक्षसि च विशिष्टवर्णोच्चारणक्षमानि स्थानानि वर्तन्ते तालुमूर्धकण्ठोष्ठादीनि तैः करणैः यः स्वरसंयोगः स्पष्टरूपेण वेगेन च नानाविधान् अक्षरान् उच्चारयितुं क्षमते, यस्य च गाम्भीर्यभावेन लोकाः निर्भयत्वमनुभवन्ति तादृशः स्वरोऽयं परिचीयते ।।७।।

व्याकरण—समदः यः वृषभस्तस्य स्वर इव स्निग्धः मधुरः च । √वृष् + अभच् = वृषभ । √स्निह् + क्त स्निग्ध । मधु + √रा + क = मधुर । न उपहतः = अनुपहतः । अनुपहतः सञ्चारस्य रभसः यस्य सः । न + उप + हन् + क्त = अनुपहत । सम् + चर् + घञ् = सञ्चार । स्फुटानि करणैः नाना अक्षराणि तस्य भावः तत्ता तया । कृ + ल्युट् (अन) करण । न + क्षर = अक्षर । वि + अव + √षिञ् + क्त = व्यवसित ।

छन्दः—शिखरिणी ।

अलङ्कार—परिकर और उत्प्रेक्षा । अभिप्रायगर्भित विशेषणों का प्रयोग होने से परिकर अलङ्कार है । अभयं दातुम् इव में दानम् क्रिया की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

बन्धुजनबहुमानम्—बन्धुजनस्य बहुमानम् । लक्ष्मण ने पहचान लिया कि यह स्वर मेरे भाई भरत का है; अतः भरत के प्रति उनके हृदय में बहुत अधिक आदर का भाव हुआ कि वे वन में मिलने आये हैं ।

रामः—सर्वथा नामयबान्धवस्य स्वरसंयोगः । क्लेदयतीव मे हृदयम् । वत्स लक्ष्मण ! दृश्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रामति)

भरतः—अये, कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति ! किन्तु खलु विज्ञातोऽस्मि, कैकेय्या पुत्रो भरतः प्राप्त इति ?

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये, अयमार्यो रामः । नं न, रूपसादृश्यम्—

मुखमनुपमं त्वार्यस्याभं शशाङ्कमनोहरं
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम् ।
द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ।।८।।

इस श्लोक में लक्ष्मण अपने भाई के होने की शंका कर रहा है

[अन्वयः—अनुपमं शशाङ्कमनोहरं मुखं तु आर्यस्य आभं, सुरारिक्षत पीनं वक्षः मम पितृसमं, द्युतिपरिवृतः, तेजोराशिः, जगत्प्रियदर्शनः, अयं नरपतिः, देवेन्द्रः वा, स्वयं मधुसूदनः ।।८।।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—सम्पूर्ण रूप से ठीक है कि यह अबान्धव का स्वर नहीं है। यह मेरे हृदय को मानो भिगोये दे रहा है। वत्स लक्ष्मण! देखो तो।

लक्ष्मण—आर्य जैसा आदेश देते हैं। (घूमता है)

भरत—अये, कोई प्रत्युत्तर क्यों नहीं दे रहा है? क्या मुझको पहचान लिया है कि कैकेयी का पुत्र आ पहुँचा है?

लक्ष्मण—(देखकर) अये, ये क्या आर्य राम हैं। नहीं, नहीं रूप की समानता है।

अर्थ [श्लोक ८]—यह अनुपम तथा चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख आर्य राम के मुख के समान है। असुरों के बाणों से घायल हुआ विशाल वक्ष मेरे पिता के समान है, कान्ति से घिरा हुआ यह मानो तेज का समूह है, इसका दर्शन करना लोगों को प्रिय है, यह क्या राजा दशरथ है, अथवा देवों का स्वामी इन्द्र है अथवा स्वयं विष्णु है? भरत का मुख राम के समान था, वक्ष पिता के समान था और वे अत्यधिक तेजस्वी थे, उनको देखकर राम की अथवा पिता की भ्रान्ति होना लक्ष्मण के लिए स्वाभाविक था ।।८।।

संस्कृत-व्याख्या—अनुपमं न विद्यते उपमा उपमानं यस्य तादृशं, शशाङ्कमनोहरं शशाङ्कः चन्द्रः स इव मनोहरं हृदयाकर्षकं, सुरारिशरक्षतं सुरारीणां देवशत्रूणाम् असुराणां शरैः बाणैः क्षतं देव-दानवयुद्धेषु सहायतार्थं युद्धावसरेषु व्रणकिणितं पीनं विशालस्थूलं वक्षः उरःस्थलं मम मे लक्ष्मणस्य पितृसमं पितुः सदृशं वर्तते। द्युतिपरिवृतः द्युतिभिः कान्तिभिः परिवृतः परिवेष्टितः अयं तेजोराशिः तेजसां समूहः वर्तते, जगत्प्रियदर्शनः जगतां लोकानां प्रियं प्रीतिकरं दर्शनम् अवलोकनं यस्य तादृशः वर्तते। अयं जनः नरपतिः राजा दशरथो वर्तते अथवा देवेन्द्रः देवानां इन्द्रः शक्रः वर्तते अथवा स्वयं मधुसूदनः मधुनाम्नो राक्षसस्य विनाशको भगवान् विष्णुः वर्तते ।।८।।

व्याकरण—न विद्यते उपमा यस्य तत् = अनुपमम्। उप + √मा + क्विप् = उपमा। सुराणाम् अरीराणां शरैः क्षतम् = सुरारिशरक्षतम्।

छन्दः—हरिणी।

अलङ्कार—उपमा, रूपक और उल्लेख। शशाङ्क के समान मनोहर में समासगा उपमा है। उपमेय भरत पर तेजोराशि उपमान का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है। एक ही भरत का नरपति, देवेन्द्र और मधुसूदन, अनेक प्रकार से उल्लेख करने से उल्लेख अलङ्कार है।

(सुमन्त्रं दृष्ट्वा) अये तातः ?

सुमन्त्रः—अये, कुमारो लक्ष्मणः ?

भरतः—एवं गुरुरयम् । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः—एह्येहि । आयुष्मान् भव । (सुमन्त्रं वीक्ष्य) तात ! कोऽत्र भवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार ।

रघोश्चतुर्थोऽयमजात् तृतीयः
पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः ।
यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतो-
स्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः ॥९॥

[अन्वयः—अय रघोः चतुर्थः अजात् तृतीयः, प्रकाशस्य तव पितुः द्वितीयः, यस्य त्वम् अनुजः स्वकुलस्य केतोः तस्य अनुजः अय कुमारः भरतः ॥९॥

हिन्दी रूपान्तर—

(सुमन्त्र को देखकर) अये, तात हैं ?

सुमन्त्र—अये, कुमार लक्ष्मण हैं ?

भरत—ये बड़े भाई हैं । आर्य ! अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मण—आओ, आओ । आयुष्मान् होओ । (सुमन्त्र को दखकर) तात ! ये आप कौन हैं ?

सुमन्त्र—कुमार !

अर्थ श्लोक ९|—वंशपरम्परा में ये रघु से चौथी पीढ़ी में हैं, अर्थात् प्रपौत्र हैं, अज से दूसरी पीढ़ी में हैं, अर्थात् पौत्र हैं, लोक में विख्यात तुम्हारे पिता से दूसरी पीढ़ी में हैं, अर्थात् पुत्र हैं। जिस राम के तुम छोटे भाई हो, अपने कुल के ध्वजा रूप उस राम के छोटे भाई ये कुमार भरत हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—वंशपरम्परायामयं रघोः चतुर्थः चतुर्थत्वेन परिगणनीयः प्रपौत्रः वर्तते इति भावः । अजात् तृतीयः तृतीयत्वेन परिगणनीयः, पौत्रः वर्तते इति भावः । प्रकाशस्य लोके प्रसिद्धस्य तव पितुः जनकस्य द्वितीयः द्वितीयत्वेन परिगणनीयः, पुत्रः वर्तते इति भावः । यस्य रामस्य त्वम् अनुजः कनिष्ठभ्राता वर्तसे, स्वकुलस्य आत्मीयस्य वंशस्य केतोः ध्वजरूपस्य तस्य अनुजः कनिष्ठभ्राता अयं कुमारः भरतः वर्तते । तव बान्धव एवायमिति भावः ॥९॥

व्याकरण—अनुजातः = अनु + जन् + ड = अनुज ।

छन्दः—उपजाति ।

अलङ्कार—परिकर और रूपक । भरत के लिए साभिप्राय विशेषणों का कथन करने से परिकर अलङ्कार है । उपमेय राम पर उपमान हेतु का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है ।

क्लेदयति इव—भरत का स्वर पहचानकर राम का हृदय द्रवीभूत-सा हो रहा था। भरत का स्नेह मानो उनको भिगो रहा था।

कैकेय्याः पुत्रः—पुकारने पर भी कोई उत्तर न पाकर भरत को आशंका हुई कि इन्होंने मुझको पहचान लिया है। कैकेयी का पुत्र होने से मेरी बात का उत्तर नहीं दे रहे।

गुरुरयम्'''अभिवादये'''आयुष्मान् भव—इन वाक्यों से विदित होता है कि भास ने लक्ष्मण को बड़ा भाई और भरत को छोटा भाई वर्णित किया है, परन्तु रामायण की कथा से यह वर्णन विपरीत है। रामायण के अनुसार लक्ष्मण से भरत बड़े थे। इनका क्रम था—राम-भरत-लक्ष्मण शत्रुघ्न। रामायण की कथा के आधार पर अपने नाटक की रचना करते हुए भास के लिए यह उचित नहीं था, कि इस प्रकार का परिवर्तन कर उल्टा क्रम दिखावें।

लक्ष्मणः—ऐह्येहीक्ष्वाकुकुमार ! वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव।

(10)
असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापै-
रनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यः।
रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो
भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥१०॥

[अन्वय—असुरसमरदक्षैः वज्रसंघृष्टचापैः अनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैः तुल्यवीर्यः, यज्ञविश्रान्तकोशः स नरेन्द्रः रघु इव जगति भ्राजितानां गुणानां भाजनं भव ॥१०॥] इस श्लोक में लक्ष्मण भरत को आशीर्वाद दे रहे है

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—हे इक्ष्वाकुकुमार ! आओ। वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। आयुष्मान् होओ।

अर्थ [श्लोक १०]—असुरों के साथ युद्ध करने में समर्थ, असुरों के साथ युद्ध करने में इन्द्र के साथ स्पर्धा करने वाले, धनुष को धारण करने वाले, अनुपम बल और पराक्रम से सम्पन्न अपने कुल के पूर्वजों के समान पराक्रमी बनो। यज्ञों में सम्पूर्ण कोश का दान करने वाले उस प्रसिद्ध राजा रघु के समान तुम इस संसार में देदीप्यमान गुणों के पात्र बनो ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—असुरसमरदक्षैः असुरैः दैत्यैः सह समरे युद्धे दक्षैः समर्थैः वज्रसंघृष्टचापैः असुरयुद्धे वज्रेण इन्द्रस्य कुलिशेन सह संघृष्टं स्पर्धमानं चापं धनुः येषां तैः अनुपमबलवीर्यैः अनुपमम् असाधारणं बलं सामर्थ्यं वीर्यं पराक्रमः च येषां तैः स्वैः आत्मीयैरपि कुलैः वंशीयैः पूर्वजैः नरपतिभिः तुल्यवीर्यः तुल्यं समानं वीर्यं पराक्रमः यस्य तादृशः त्वं भव। यज्ञविश्रान्तकोशः यज्ञेषु अध्वरेषु विश्रान्तः दक्षिणासु सम्पूर्णरूपेण प्रदत्तः कोशः निधिः येन तादृशः सः प्रसिद्धः नरेन्द्रः राजा रघुः इव जगति

लोके भ्राजितानां शोभमानानां गुणानां बलवीर्यदाक्षिण्यादीनां भाजनं पात्रं भव। अस्मत्पूर्वजैः देवतानां साहाय्यार्थं धनुर्भिः दैत्या अपि पराजिताः। रघूणां विश्वजिति यज्ञे दक्षिणासु ब्राह्मणेभ्यः सकल एव कोशः विश्रान्तः। त्वयापि तैः इव बलशालिना वीर्यशालिना दाक्षिण्यशालिना च भूत्वा अयोध्यायाः शासनं करणीयम् ॥१०॥

व्याकरण—असुरे समरे दक्षैः=असुरसमरदक्षैः। वज्रेण संघृष्टं चापं येषां तैः=वज्रसंघृष्टचापैः। न विद्यते उपमा यस्य तत्=अनुपम। वीरस्य भावः= वीर+ =वीर्य। अनुपम वीर्य येषां तैः=अनुपमबलवीर्यैः। यज्ञेषु विश्रान्तः कोशः ान सः=यज्ञविश्रान्तकोश.। यज्+नङ्=यज्ञ। वि+श्रम्+क्त=विश्रान्त।

छन्दः—मालिनी।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

लक्ष्मणः—कुमार! इह तिष्ठ। त्वदागमनमार्याय निवेदयामि।

भरतः—आर्य! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि। शीघ्रं निवेद्यताम्।

लक्ष्मणः—बाढम्। (उपेत्य) जयत्वार्यः। आर्य!

11 अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्शं इव तिष्ठति ॥११॥

[अन्वय—यत्र ते रूपम् आदर्शः इव सङ्क्रान्तम्, अयं ते दयितः भ्रातृवत्सलः भ्राता भरतः तिष्ठति ॥११॥ इस श्लोक में बताया गया है कि भरत राम के समान है।

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—मैं अनुगृहीत हो गया हूँ।

लक्ष्मण—कुमार! यहीं ठहरो। तुम्हारे आने की बात आर्य से निवेदन करता हूँ।

भरत—आर्य! अब शीघ्र ही अभिवादन करना चाहता हूँ। शीघ्र निवेदन कीजिये।

लक्ष्मण—हाँ। (समीप जाकर) आर्य की जय हो। आर्य!

अर्थ [श्लोक ११]—जहाँ कि आपका रूप दर्पण के समान प्रतिबिम्बित हुआ है, ऐसा यह आपका प्रिय तथा भाई को स्नेह करने वाला भाई भरत खड़ा है। भरत का रूप बिल्कुल आपके समान है, वह आपको प्रिय है तथा वह आपके प्रति स्नेहशील है। वह आया है ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—यत्र यस्मिन् जने ते तव रूपम् आदर्शे दर्पणे इव संक्रान्त प्रतिबिम्बितं तादृशः अयं पुरो दृश्यमानः ते तव दयितः स्नेहपात्रं भ्रातृवत्सलः भ्रातरि

अनुरक्तः भ्राता अनुजः भरतः तिष्ठति द्वारि स्थितो वर्तते । यथा आदर्शे कस्यापि रूपम् अविकलरूपेणावलोक्यते तथैव भरत ते रूपमविकलरूपेणावलोक्यते ।।११।।

व्याकरण—भ्रातरि वत्सलः = भ्रातृवत्सलः । वत्स + लच् = वत्सल । सम् + क्रम् + क्त = संक्रान्त ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उपमा ।

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ?

रामः—मैथिलि ! भरतावलोकनार्थं विशाली क्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—अय्यउत्त ! किं भरदो आअदो ? [आर्यपुत्र ! किं भरत आगतः ?

रामः—मैथिलि ! अथ किम् ?

> **अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम् ।**
> **कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ।।१२।।**

[**अन्वयः**—अद्य खलु अवगच्छामि, मे पित्रा दुष्करं कृतम् । ईदृशः अयं भ्रातृस्नेहः । तनयस्नेहः कीदृशः ।।१२।।]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या इस प्रकार भरत आया है ?

लक्ष्मण—और क्या ?

राम—सीते ! भरत को देखने के लिए अपनी आँखों को विशाल बना लो ।

सीता—आर्यपुत्र ! क्या भरत आये हैं ?

राम—सीते ! और क्या ?

अर्थ [श्लोक १२]—आज मैं निश्चय से समझ रहा हूँ कि मेरे पिता ने बहुत अधिक कठिन कार्य किया है । इस प्रकार का तो यह भाई का स्नेह है तो पुत्र के प्रति स्नेह कैसा होगा । भाई के प्रति तो स्नेह इतना अधिक है कि मैं भरत के वियोग में अत्यधिक पीड़ित हूँ । पुत्र के प्रति स्नेह तो उससे भी अधिक होता है, अतः मेरे वन चले आने पर पिता को कष्ट हुआ होगा, उसको अब मैं समझ रहा हूँ ।।१२।।

संस्कृत व्याख्या—अद्य इदानीम् अहम् अवगच्छामि भ्रातृभरतागमनावसरे अवचिनोमि ये पित्रा जनकेन दशरथेन दुष्करम् अत्यधिककठिनं कष्टप्रदं च कार्यं कृतं विहितम् । ईदृशः एवंविधः अयम् एष भ्रातृस्नेहः भ्रातरं भरतं प्रति स्नेहः वर्तते राज्यमपि परित्यज्य स्नेहभावेन मां द्रष्टुं भरतः आगतः, अहं च तस्यागमनेन हृदये चेतसि च अनुपमां प्रसन्नतामनुभवामि । तनयस्नेहस्तनयं पुत्रं प्रति तु स्नेहः कीदृशः

कथंविधः भविष्यति । तथाविधं पुत्रस्नेहं हृदये धारयन् मे पिता मदीयराज्यविभ्रंशनं वनवासजनित वियोगं च धारणे असमर्थः सन् दिवं गतः इति मया अधुना भरतागमनसमये अवधीयते ॥१२॥

व्याकरण – दुस् + कृ + अच् = दुष्कर । किम् + दृश् + कञ् (की आदेश) = कीदृश । तनोति विस्तारयति कुलम् = तन् + कथन् = तनय ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

विशालीक्रियतां ते चक्षुः—अविशालं विशालं क्रियताम् = विशालीक्रियताम् । च्वि प्रत्यय । अत्यधिकस्नेहभाजन व्यक्ति के मिलने पर प्रसन्नता के कारण नयनों का विशाल करना एक मुहावरा है । भरत को देखने के लिए सीता का नयनों को विशाल करना स्वाभाविक है । इस प्रकार के प्रयोग कवियों ने अनेकशः किये हैं ।

लक्ष्मणः—आर्ये ! किं प्रविशतु कुमारः ?

रामः—वत्स लक्ष्मण ! इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि ? गच्छ, सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः—अथवा तिष्ठत्वम्—

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य ।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥१३॥

[**अन्वयः**—माता इव तनये भावं निवेश्य तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा आसारम् इव हर्षास्रम् उत्सृजन्ती, इयं मानहेतोः स्वयं गच्छतु ॥१३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

लक्ष्मण—आर्य ! क्या कुमार भरत प्रवेश करें ?

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या इसमें भी मेरी अनुमति को लेना चाहते हो ? जाओ और सत्कार के साथ कुमार को शीघ्र अन्दर ले आओ ।

लक्ष्मण—आर्य जैसा आदेश देते हैं ।

राम—अथवा तुम ठहरो—

अर्थ [श्लोक १३]—माता के समान पुत्र के प्रति स्नेह को अपने हृदय में रख कर हिम से भरे हुए कमलपत्र के समान नेत्रों वाली तथा धारासार वर्षा के समान प्रसन्नता के आँसुओं को बहाती हुई यह सीता इस भरत का आदर करने के लिए स्वयं जाये ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—माता जननी इव तनये पुत्रे भावं वात्सल्यभावं निवेश्य हृदये संधार्य, तथा काचिन्माता चिरादायात पुत्रं प्रति वात्सल्यपूर्णा भवति, तथैव तनयसदृशं भरत प्रति स्नेहपूर्णा सती इत्यर्थः, तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा तुषारेण हिमेन पूर्णम् आवृतम्

इस श्लोक में बताया गया है कि सीता भूमि से उत्पन्न हुई थी।

उत्पलपत्रं कमलपत्रमिव नेत्रं नयनं यस्या सा, आसारं धारासम्पातमिव हर्षास्रं प्रसन्नताश्रुणि इव उत्सृजन्ती प्रवाहयन्ती इयं सीता एव मानहेतोः तस्य भरतस्य सत्कारार्थं स्वय गच्छतु बहिर्यातु। इयं स्वयमेवगत्वा सत्कृत्य स्वपुत्रतुल्यं भरतं इहानयतु ॥१३॥

व्याकरण—तुषारेण पूर्णम् उत्पलपत्रं सदृश नेत्रं यस्या सा=तुषारपूर्णोत्पल-पत्रनेत्रा। आ+सृ+घञ्=आसार।

छन्दः—उपजाति।

अलङ्कार—उपमा। मातेव भावं तनये निवेश्य—पूर्णोपमा। तुषारपूर्णोत्पल-पत्रनेत्रा=वाचकलुप्ता समासगा उपमा।

सीता—जं अज्जउत्तो आणवेदी। (उत्थाय परिक्रम्य भरतमवलोक्य) हं, तदो तं वेलं दाणिं णिक्कन्तो अय्यउत्तो। णहि णहि। रूवसादिस्सं। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति। हं, ततस्तां वेलामिदानीं निष्क्रान्त आर्यपुत्रः। नहि न हि रूपसादृश्यम्।

सुमन्त्रः—अये वधूः?

भरतः—अये, इयमत्रभवती जनकराजपुत्री?

(१५)

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात्।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥१४॥

[अन्वयः—इदं तत् स्त्रीमयं तेजः, क्षेत्रोदरात् हलात् जातम्। नृपेन्द्रस्य जनकस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥१४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र जैसा आदेश देते हैं। (उठकर घूमकर और भरत को देखकर) हूँ, तो अब आर्यपुत्र उसी समय बाहर निकल गये थे? नहीं, नहीं, रूप की समानता है।

सुमन्त्र—अये, वधू है?

भरत—अये, ये आदरणीया राजा जनक की पुत्री सीता हैं—

अर्थ [श्लोक १४]—यह वह स्त्रीरूप में विद्यमान तेज है, जो खेत के मध्य से हल से उत्पन्न हुआ था। राजाधिराज जनक की तपस्या का यह उत्तम उदाहरण है। रामायण की कथा प्रसिद्ध है कि खेत में हल जोतते हुए राजा जनक को सीता पृथिवी के गर्भ से प्राप्त हुई थी, जो एक घड़े मे थी तथा हल की नोक से उखड़ कर यह घड़ा पृथिवी के गर्भ से बाहर निकल आया ॥१४॥

संस्कृत व्याख्या—इदम् एतत् पुरो दृश्यमानं स्त्रीमयं स्त्रीरूपेण परिणतं तेजः प्रसिद्धा कान्तिः, यत् क्षेत्रोदरात् क्षेत्रस्य कर्षणीयभूमेः उदरात् मध्यभागात् हलात्

सीरात् जातमुत्पन्नम् । नृपेन्द्रस्य राजाधिराजस्य जनकस्य तपसः तपस्यायाः सन्निदर्शनम् उत्तमम् उदाहरणम् । प्रसिद्धेयं रामायणीकथा-यत् क्षेत्र कर्षणं कुर्वतः जनकस्य तपः प्रभावात् सीरोत्कर्षणमवाप्य घट एको भूमेः बहिर्यातः, यत्र नवजातैका बालिकातितेजःस्विनी सन्निहितासीत् । सा हलाग्रसंजातेति नामतः सीता कृता जनकेन स्वसुतेव च पालिता । सा तेजसाभासमना अयोनिजा कन्या सीता जनकस्य तपःप्रभावफलमेवासीत् ॥१४॥

व्याकरण—स्त्री + मयट् = स्त्रीमय । क्षेत्रस्य उदरात् = क्षेत्रोदरात् । सम् + नि + दृश् + ल्युट् (अन) = सन्निदर्शन ।

छन्दः अनुष्टुप् '

अथवातिष्ठत्वम्—राम को भरत अत्यधिक प्रिय थे; अतः उनके प्रति स्नेह और आदर को प्रकट करने के लिए वे स्वयं सीता को भेजने का उद्योग करते हैं ।

रूपसादृश्यम्—भरत को देखकर पहले तो सीता को भ्रान्ति होती है कि कहीं राम स्वयं तो बाहर नहीं आ गये; परन्तु शीघ्र समझ जाती है कि राम और भरत का रूप बिल्कुल एक-सा है ।

आर्य ! आभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।

सीता—(आत्मगतम्) णहि रूवं एव्व, सरजोओ वि सो एव्व । (प्रकाशम्) वच्छ ! चिरजीव । [न हि रूपमेव, स्वरसंयोगोऽपि स एव । ! चिरंजीव]

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—एहि वच्छ ! भादु मणोरहं पूरेहि । [एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय ।]

सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः ।

भरतः—तात् ! इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्रः—
अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे ।
विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥१५॥

[अन्वयः—नराधिपे स्वर्गं याते, विदितार्थस्य रामस्य मम एतत् पूर्वदर्शनम्, अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि ॥१५॥]

हिन्दी रूपान्तर—

आर्य अभिवादन करता हूँ । मैं भरत हूँ ।

सीता—(अपने मन में) रूप ही नहीं है, स्वर भी वैसा ही है । (स्पष्ट से) वत्स चिरंजीव होओ ।

भरत—मैं अनुगृहीत हुआ हूँ ।

सीता—वत्स ! आओ । भाई के मनोरथ को पूरा करो ।

सुमन्त्र—कुमार प्रवेश करें ।

भरत—तात ! अब क्या करेंगे ?

सुमन्त्र—

अर्थ [**श्लोक १५**]—राजा दशरथ के स्वर्ग चले जाने पर, जब कि राम को इस समाचार का पता लग चुका है, उसके बाद राम को देखने का मेरा यह पहला अवसर है । अतः मैं बाद में प्रवेश करूँगा ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—नराधिपे नराणामधिपे राजनि दशरथे स्वर्गं याते नाकमधिरूढे सति, विदितार्थस्य विदितः ज्ञातः अर्थः पितृनिधनरूपः समाचारः येन तस्य रामस्य मन एतत् इदं पूर्वदर्शनं प्रथम एव दर्शनावसरः । अतः अहं सुमन्त्रः पश्चात् तव प्रवेशानन्तरमेव प्रवेक्ष्यामि अन्तः गमिष्यामि । राज्ञः दशरथस्य निधनानन्तरं यदा च रामेण सः समाचारः विदितः, मम तस्य दर्शनस्य प्रथम एवावसरः मां दृष्ट्वा तस्य पितृनिधन जन्यशोकसागरः पुनरपि उद्रेकमवाप्स्यति, अथ च भ्रातृमिलनजन्यहर्षश्च मन्दतामेष्यति । अतः भ्रात्रा सह तव मिलनानन्तरमेवं मे तत्र गमनं श्रेयः ॥१५॥

व्याकरण—नराणामधिपे = नराधिपे । अधिपाति = अधि + पा + क = अधिप । विदितः अर्थः येन तस्य विदितार्थस्य ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

भरतः–एवमस्तु । (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।

रामः–(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति । आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाण-
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥१६॥

अन्वय—कपाटपुटप्रमाणं वक्षः प्रसारय । सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग । शरदिन्दुकल्पम् इदम् आननम् उन्नामय । व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय ॥१६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—ऐसा ही हो । (राम के समीप जाकर) आर्य ! अभिवादन करता हूँ । मैं भरत हूँ ।

राम—(प्रसन्नता के साथ) इक्ष्वाकुकुमार ! आओ, आओ । तुम्हारा कल्याण हो । आयुष्मान् होओ ।

अर्थ [**श्लोक १६**]—किवाड़ों के समान विशाल आकार वाले अपने वक्षस्थल को फैला लो । अति विशाल अपनी दोनों भुजाओं से मेरा आलिङ्गन कर लो । शरत्कालीन चन्द्रमा के समान इस सुन्दर मुख को ऊपर उठाओ । शोकरूप आपत्ति से जले हुए इस शरीर को प्रसन्न कर दो ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—कपाटपुटं कपाटयुगलं तदिव प्रमाणम् मानमाकारः विस्तीर्णत्वं वा यस्य तादृशं वक्षः उरुस्थलं प्रसारय विस्तारय। तथाभूते च सति त्वयि ते वक्षःस्थलस्य आलिङ्गनयोग्यता भविष्यति समधिकसुखस्यानुभूतिश्च भविष्यति। सुविपुलेन अतिविशालेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन मां रामम् आलिङ्ग आश्लेषबद्धं कुरु। शरदिन्दुकल्पं शरत्कालीनचन्द्रसदृशम् इदम् आननं मुखम् उन्नामय उन्नतं कुरु, तथाभूते सति च ते मुखे दर्शनाधिकानन्दानुभवो भविष्यति। व्यसनदग्धं व्यसनैः पितृ-निधनमातृभ्रातृवियोगादिजन्यैः कष्टैरापद्भिश्चदग्धं ज्वलन्तम् इदमेतत् शरीरं वपुः प्रह्लादय आनन्दोच्छ्वसितं कुरु। विपद्भिः कष्टैश्च मे शरीरे दग्धतुल्या पीडा वर्तते। तवालिङ्गनेन तवमुखदर्शनेन चेयं दाहपीडा शिशिरत्वमुपैष्यति ॥१६॥

व्याकरण—प्र + मा + ल्युट् (अन) = प्रमाण।

छन्द:—वसन्ततिलका।

अलङ्कार—उपमा। तृतीय चरण में आनन उपमेय, शरदिन्दु उपमान, कल्प उपमावाचक और प्रह्लादय साधारण धर्म हैं।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्या युष्मान्।

रामः—हा तात!

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये ख समानैर्विमानै-
र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम्।
स श्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं
स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥१७॥

[अन्वयः—पूर्वं सासुराणां सुराणां विमर्दे अभिसरिसमये समानैः विमानैः स्वसैन्यैः स्वं गत्वा, स स इति यः बहुशः विख्यातः, स श्रीमान् त्यक्तदेहः नरेन्द्रः दयितं स्नेहवन्तं भवन्तं विना अपि, साम्प्रतं स्वैः पितृभिः नरेन्द्रैः स्वर्गस्थः किं रमयति? ॥१७॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—मैं अनुगृहीत हो गया हूँ।

सुमन्त्र—(समीप आकर) आयुष्मान् की जय हो।

राम—हाय तात!

अर्थ [श्लोक १७]—पहले समय में जबकि देवताओं और असुरों का युद्ध हो रहा था, तब देवताओं की सहायता के लिए स्वर्ग जाते समय, देवताओं के ही जैसे विमानों द्वारा अपनी सेनाओं के साथ आकाश में जाकर, वह दशरथ है, वह दशरथ है, इस प्रकार जो बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए थे, वे श्रीमान् शरीर को छोड़ देने वाले राजा दशरथ, प्रिय तथा स्नेह से भरे हुए आपके बिना भी, अब अपने

पितरों राजाओं के साथ स्वर्ग में रहते हुए क्या आनन्दित होते होंगे ? आप सुमन्त्र के बिना उनको वहाँ भी कोई प्रसन्नता का अनुभव नहीं होता होगा । आपका यहाँ मेरे पिता के साथ सदा रहना होता था; अतः आपके बिना उनको वहाँ किसी प्रकार का आनन्द नहीं मिलता होगा ।।१७।।

संस्कृत-व्याख्या—पूर्वं पूर्वस्मिन् काले देवासुरसंग्रामसमये सासुराणां असुरैः दैत्यैः सह तेषां सुराणां देवानां च विमर्दे अभिसरिसमये अभिसरेः देवानां साहाय्यार्थमाक्रमणाय प्रस्थानस्य समये काले समानैः देवविमानः तुल्यैः विमानैः व्योमयानैः स्वसैन्यैः स्वचमूभिः सह खम् आकाशं गत्वा प्राप्य, स स अयमेव पराक्रमवीर्यातिशाली दशरथ इति सम्बोध्यमानः बहुशः बारं बारं विख्यातः प्रसिद्धिं प्राप्तः सः श्रीमान् लक्ष्मीसम्पन्न त्यक्तदेहः त्यक्तः विसर्जितः देहः शरीरं येन तथाभूतः निधनं प्राप्तः इत्यर्थः नरेन्द्रः राजा दशरथः दयितं स्नेहास्पदीभूतं स्नेहवन्तं स्नेहशालिनं भवन्तं सुमन्त्रं बिना अन्तरा, साम्प्रतमस्मिन् समये स्वैः आत्मीयैरपि पितृभिः पितृकोटिभूतैः नरेन्द्रैः राजभिः दिलीपरघु-अजैः सद्भि स्वर्गस्थः स्वर्गस्थितोऽपि किं रमयति आनन्दानुभवं करोति ? न रमयति इत्यर्थः । स्वपितृभिः साकं स्वर्गे वसन्नपि भवन्तं विना न तस्य काऽपि आनन्दानुभूतिः अस्मिन् लोके सदैवभवता साकं विहरति स्म स राजा। स्वर्गे भवन्तमनवाप्य तस्य हर्षानुभूतिरसम्भवैव ।।१७।।

व्याकरण—सेनानां समूहः = सेना + ष्यञ् = सैन्य । स्वर्गे तिष्ठति = स्वर्ग + स्था + क = स्वर्गस्थ । सम् + प्र + √तन् + इमु = साम्प्रतम् ।

छन्दः—स्रग्धरा ।

अलङ्कार—उदात्त और विनोक्ति । दशरथ के शौर्यातिशय आदि गुणों का कथन करने से उदात्त अलंकार है । आपके बिना वह आनन्दित नहीं हैं, इसमें विनोक्ति अलंकार है ।

सुमन्त्रः—(सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ।।१८।।

[**अन्वयः**—नरपतिनिधनं, भवत्प्रवासं, भरतविषादं, कुलस्य अनाथतां, बहुविधं दुष्प्रसह्यम् अनुभूय मे आयुषा गुण इव बहु अपराद्धम् ।।१८।।]

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—(शोक में भर कर)

अर्थ [श्लोक १८]—राजा दशरथ की मृत्यु, आपका (राम, सीता और लक्ष्मण तीनों का) वनवास, भरत का दुःख, कुल (रघुकुल) का अनाथ होना, इस प्रकार के अनेकों असहनीय दुःखों का अनुभव करके मेरी लम्बी आयु ने गुणों के

समान ही (लम्बी आयु होना गुण माना जाता है) बहुत अधिक अपराध किया है। अनेक प्रकार के असह्य दुःख उठाने के कारण मैं लम्बी आयु को सहन नहीं कर पा रहा हूँ ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या---नरपतिनिधनं नरपतेः राज्ञः दशरथस्य निधनं मरणं, भवत्प्रवासं भवतां राम-सीता-लक्ष्मणानां प्रवासं नगरादागत्य वने निवसनं, भरतविषादं पितृमरणभ्रातृवियोगादिजन्यं दुःखं, कुलस्य एतादृशस्य उन्नतस्य रघुवंशस्य अनाथतां न विद्यते कोऽपि नाथः शरणं यस्य तस्य भावः तत्ता ताम्, इति बहुविधम् अनेक प्रकारकं दुष्प्रसह्यं दुःखेन अतिकष्टेन प्रसह्यं सोढुं शक्य दुःखमिति शेष, मे मम सुमन्त्रस्य आयुषा दीर्घजीवितेन गुणः इव, यद्यपि चिरजीवित्वं गुण एव तथापि तदिव बहु अत्यधिकम् अपराद्धम् अपराधः कृतः। दीर्घायुर्भावः गुण एव तथापि तदिवं बहु सोढुमशक्यानि दुःखानि सततमनुभवामि। राज्ञः दशरथः स्वर्गं गतः, भवन्तः वनप्रदेशमनुप्राप्ताः, भरतः निरन्तरं विषीदति, रघुकुलस्य न कोऽपि नाथो विद्यते। अतः चिरं जीवन्नहं सततमात्मानमपराराधिनमनुभवामि ॥१८॥

व्याकरण---नरपतेः निधनम् = नरपतिनिधनम्। नराणां पतिः = नरपतिः। अप + $\sqrt{}$राध् + क्त = अपराद्ध। आ + $\sqrt{}$इण् + उस् = आयुस्।

छन्दः---पुष्पिताग्रा।

अलङ्कार---हेतु। अपराध करने के अनेक हेतुओं का कथन करने से हेतु अलंकार है।

सीता---रोदन्तं अय्यउत्तं पुणो वि रोदावीअदि तादो। [रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः।]

रामः---मैथिलि! एष पर्यावस्थापयाम्यात्मानम्। वत्स लक्ष्मण! आपस्तावत्।

लक्ष्मणः---यदाज्ञापयत्यार्यः।

भरतः---आर्य! न खलु न्याय्यम्। क्रमेण शुश्रूषयिष्ये। अहमेव यास्यामि। (कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः।

रामः---(आचम्य) मैथिलि! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः।

सीता---अय्यउत्त! णं एदिणा वि सुस्सूसइदव्वो। [आर्यपुत्रः। नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः।]

रामः---सुष्ठु, खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु। तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु।

भरतः---प्रसीदतु मयि भवान्।

(19) इस श्लोक में भरत कहते हैं कि राम के नाम से ही राज्य की रक्षा हो जाती है।

(19) **इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।**
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥१६॥

[**अन्वय.**—इह देहेन स्थास्यामि, तत्र कर्मणा स्थास्यामि । भवतः राज्यं नाम्ना एव कृतरक्षं भविष्यति ॥१६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—रोते हुए आर्यपुत्र को तात फिर भी रुला रहे हैं ।

राम—सीते ! यह मैं अपने आपको संभाल रहा हूँ । वत्स लक्ष्मण ! जल लाओ ।

लक्ष्मण—आर्य जो आदेश देते हैं ।

भरत—आर्य ! यह न्यायोचित नहीं है । क्रम के अनुसार मैं सेवा करूँगा । मैं ही जाऊँगा । (कलश को लेकर, निकल कर, प्रवेश करके) ये जल हैं ।

राम—(आचमन करके) सीते ! लक्ष्मण का काम तो छूटा जा रहा है ।

सीता—आर्यपुत्र ! निश्चय से इनको भी सेवा करनी चाहिये ।

राम—ठीक है । तो यहाँ तो लक्ष्मण सेवा करे । वहाँ अयोध्या में स्थित होने पर मेरी सेवा भरत करे ।

भरत—आप मुझ पर प्रसन्न होवें ।

अर्थ [श्लोक १६]—यहाँ वन में मैं शरीर से स्थित रहूँगा और वहाँ अयोध्या में कर्म से स्थित रहूँगा । आपके राज्य की रक्षा तो आपके नाम से ही हो जायेगी । भरत के कहने का अभिप्राय यह है कि वे वन में ही निवास करेंगे और राम की सेवा करेंगे, परन्तु अयोध्या के राज्य की रक्षा की चिन्ता सदा करते रहेंगे ॥१६॥

संस्कृत व्याख्या—इह अस्मिन् वने एव अहं देहेन शरीरेण स्थास्यामि निवसिष्यामि । नाहमयोध्यां निवर्त्य गमिष्यामि, वन एव मे निवासो भविष्यत्यर्थः । तत्र अयोध्यायां राजधान्यां तु कर्मणा राज्यपालन रूपकर्तव्यकर्मणा स्थास्यामि, शरीरेण इहस्थोऽप्यहं राज्यरक्षात्मककर्तव्यं सम्पादयिष्यामि । भवतः राज्यं नाम्ना भवतः नाममात्रश्रवणेन एव कृतरक्षं कृता विहिता रक्षा यस्य तादृशं सुरक्षितं भविष्यति । भवतः नाममात्रं श्रुत्वैव न कस्यचिदप्यत्रोपऽवकरणसाहस भविष्यति ॥१६॥

व्याकरण—कृता रक्षा यस्य तादृशम् = कृतरक्षम् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

न्याय्यम्—न्यायस्ययोग्यम् = न्याय + यत् = न्याय्य । भरत को कवि ने लक्ष्मण से छोटा वर्णित किया है । सबसे छोटे का अधिकार सबकी सेवा करने का होता है । भरत छोटे हैं; अतः लक्ष्मण को जल लाने के लिए उद्यत देखकर स्वयं जल लाने का प्रस्ताव करते हैं ।

रामः—वत्स कैकेयीमातः ! मा मैवम्—

पितुर्नियोगादहमागतो वनं
न वत्स ! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात् ।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते
कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥२०॥

[अन्वयः—वत्स ! पितु नियोगात अहं वनम् आगतः । न दर्पात्, न भयात्, न विभ्रमात् । ते ब्रवीमि, न कुलं च सत्यधनम् । भवान् नीचपथे कथं प्रवर्तते ॥२०॥]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—हे वत्स कैकेयी के पुत्र ! ऐसा मत कहो, मत कहो—

[अर्थ श्लोक २०]—हे वत्स ! पिता के आदेश से मैं वन में आया हूँ । न तो किसी घमण्ड के कारण, न भय के कारण और ना ही चित्त की भ्रान्ति के कारण यहाँ आया हूँ । मैं तुमसे कहता हूँ कि हमारे कुल का धन सत्य ही है । इसलिए आप नीच मार्ग पर क्यों प्रवृत्त हो रहे हैं ? आपको चाहिये कि सत्य के व्रत का पालन करें और अयोध्या जाकर राज्य सँभाले ॥२०॥

संस्कृत व्याख्या—वत्स भरत ! पितुः जनकस्य दशरथस्य नियोगाद् आदेशाद् अहम् वनम् अरण्यम् आगत· आयातः । न दर्पात् गर्वात्, न भयात् भयकारणात्, न च विभ्रमात् चित्तस्य भ्रान्तिवशाद् वनमागतः । अत्र वनागमनहेतुः पितुः निदेशएव, न दर्पः, न भयं, न च विभ्रमः । ते त्वां ब्रवीमि कथयामि, न अस्माकं कुलं रघुवंशः सत्यधनं सत्यमेव धनं यस्य तादृशं वर्तते । अतः भवान् नीचपथे अधमजनोचितमार्गे कथं कस्मात्कारणात् प्रवर्तसे प्रवृत्तो भवसि । न कुलस्य सत्यधनत्वात् भवतापि सत्य-मार्गे प्रवर्तितव्यम् । पितुरादेशं मान्यं कृत्वा अयोध्यां गत्वा राज्यरक्षा कर्तव्या ॥२०॥

व्याकरण—नि + युज् + घञ् = नियोग । सत्यं धनं यस्य तत् = सत्यधनम् ।
छन्दः—वंशस्थ ।

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राऽभिहित, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्यतावद्यथावत् ॥२१॥

[अन्वयः—अपि च । सुगुण ! त्वत्प्रसूतिः मम अपि प्रसूतिः । निभृतधीमान्

सः ते पिता खलु मे पिता। सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषः दोषः न। वरद ! आर्तं भरतं तावत् यथावत् पश्य ॥२१॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—अब यह अभिषेक का जल कहाँ रखा जावे अर्थात् किसका राज्याभिषेक किया जावे ?

राम—जहाँ मेरी माता ने कहा है, वहीं रखा जावे।

भरत—आर्य प्रसन्न होवें। हे आर्य ! अब घाव पर प्रहार मत करो।

अर्थ [श्लोक २१]—और भी यह बात है। श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हे आर्य ! तुम जिस वंश में उत्पन्न हुए हो, मैं भी उस वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। स्थिर बुद्धि वाले तुम्हारे पिता निश्चय से मेरे भी पिता हैं। हे श्रेष्ठ पुरुष ! पुरुषों के लिए, माता की ओर से किया गया दोष, दोष नहीं गिना जाता। वर देने वाले हे भाई ! पीड़ित भरत को तो ठीक प्रकार से देखिये। भरत की पीड़ा का अनुभव कीजिये ॥२१॥

संस्कृत व्याख्या—अपि चेयं वार्ता। सुगुण शोभनगुणसम्पन्न हे आर्य ! त्वत्प्रसूतिः त्वदुत्पत्तिकुलं मम भरतस्य अपि प्रसूतिः प्रभवकुलं वर्तते। निभृतधीमान् निभृता प्रशस्ता स्थिरा बुद्धिः मतिः निभृतधीमान् सा यस्य अस्ति स निभृतधीन् ते पिता जनकः दशरथः खलु निश्चयेन मे अपि पिता वर्तते। सुपुरुष शोभनपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषः मातरं प्रति उद्दिश्य उपलक्षितः दोषः दोषः न गण्यते। वरप वरं ददादि इति वरदः आर्तं पितृमरणभ्रातृवनवासजनितपीडासन्तप्तं भरतं तावत् यथावत् उचित प्रकारेण पश्य अवलोकय। भवता विचारणीयोऽस्थित् मम दोषः। मातृकृतापराधेऽहं न दण्डनीय इति भावः ॥२१॥

व्याकरण—शोभना गुणाः यस्य सः सुगुणः। प्र + √सू + क्तिन् = प्रसूति। निभृत + धी + मतुप् = निभृतधीमत्। शोभनः पुरुषः = सुपुरुषः। वरं ददाति = वर + √दा + क = वरद। आ + √ऋ + क्त = आर्त (२२) इस श्लोक से

छन्द—मालिनी। राम कहते कि भरत सर्वगुण सम्पन हैं।

सीता—अय्यउत्त ! अधिकरुणं मन्तेअइ भरदो। किं दाणिं अय्यउत्तेण चिन्तीअदि ? [आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरत। किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते ?]

रामः—मैथिलि !

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्ट गुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो ! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥२२॥

[अन्वयः—सुरलोकयातं तं नृपतिं चिन्तयामि, येन आत्मजविशिष्टगुणः अयं न दृष्टः। ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके पुरुषोत्तमेषु यदि विधेः बलं, भो! धिक्॥२२॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र! भरत बहुत अधिक करुणा में भर कर कह रहा है। आर्यपुत्र अब क्या विचार कर रहे हैं?

राम—हे सीते!

अर्थ [श्लोक २२]—स्वर्गलोक को गये हुए उस राजा दशरथ पिता के सम्बन्ध में मैं विचार कर रहा हूँ, जिसने अपने चारों पुत्रों में विशिष्ट गुणशाली इस भरत को नहीं देखा था। इस प्रकार के विशिष्ट स्वभाव वाले और गुणों के निधि पुत्र को पाकर भी लोक में, श्रेष्ठ पुरुषों के मध्य में यदि विधाता का बल सामर्थ्यशाली होता है, तो हे लोगो! तुम सबको धिक्कार है। उस विधि का यह अत्यधिक अनुचित कार्य है कि इस प्रकार के गुणनिधान पुत्र को अच्छी प्रकार न समझकर वे मेरे पिता कालकवलित हो गये॥२२॥

संस्कृत व्याख्या—सुरलोकयातं स्वर्गलोकमम्प्राप्तं तं नृपतिं राजानं दशरथमेव चिन्तयामि विचारयामि येन नृपतिना आत्मजगुणविशिष्टः आत्मजेषु स्वकीयेषु चतुर्ष्वपि पुत्रेषु मध्ये विशिष्टाः सर्वाधिकायः गुणाः यस्य तादृशः सर्वाधिक विशिष्टगुणसम्पन्नः अयं भरतः न दृष्टः अवलोकितः यथार्थरूपेण नावगतः इति भावः। ईदृग्विधम् एतादृशं गुणनिधिं गुणानां निधानं पुत्रं भरतं समवाप्य समधिगम्य लोके जगति पुरुषोत्तमेषु श्रेष्ठ मनुष्येषु पितृचरण सदृशेषु यदि विधेः भाग्यस्यैव बलं सामर्थ्यमवलोक्यते, स एव विधिः प्रमुखो भूत्वा स्वसामर्थ्येन लोकं सञ्चालयति, तदा भोः हे जनाः धिक् अस्मादृशाः सर्वे एव जनाः धिक्कारयोग्याः सन्ति। दैवपारवश्यता धिक्कारयोग्यैव॥२२॥

व्याकरण—आत्मजेषु विशिष्टा गुणाः यस्य सः=आत्मजविशिष्टगुणः। आत्मनो जातः=आत्मन्+√जन्+ड=आत्मज। गुणानां निधिम्=गुणनिधिम्। नि+√धा+कि=निधि।

छन्दः—वसन्ततिलका।

(२३) इस श्लोक में राम कहते हैं कि भरत ने मुझे जीत लिया।

वत्स! कैकेयीमातः!

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया
किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता॥२३॥

[अन्वय:—यत्सत्यं भवता परितोषित: अस्मि। भवान् निष्कलमषात्मा। त्वद्वाक्यस्य वशानुग: अस्मि। भवत: ख्यातै: गुणै: निर्जित: किन्तु एतत् नृपते: वच:। त्वया तत् अनृतं कर्तुं न युक्तम्। किं च, भवद्विधम् उत्पाद्य ते पिता मिथ्याभिधायी भवतु? ॥२३॥

हिन्दी रूपान्तर—

हे वत्स कैकेयी के पुत्र भरत!

[अर्थ श्लोक २३]—हे वत्स बात सत्य है कि आपने मुझको सन्तुष्ट कर दिया है। आप पापरहित निर्मल अन्तःकरण वाले हैं। मैं आपके वाक्यों के वशीभूत हो गया हूँ। आपके प्रसिद्ध गुणों ने मुझको जीत लिया है, किन्तु यह तो राजा दशरथ का वचन है। तुमको उसे असत्य नहीं करना चाहिये और क्या, आपके जैसे पुत्र को उत्पन्न करके आपके पिता असत्यवादी होवें? ॥२३॥

संस्कृत व्याख्या—हे वत्स! यत्सत्यम् इयं वार्ता यथार्थैव वर्तते यदहं भवता परितोषितः सन्तुष्टान्तरात्मा कृत: भवद्व्यवहारेणाहं पूर्णरूपेण सन्तुष्टः नात्र मे वनवासविषये भवत: कोऽपि दोष:। भवान् निष्कलमष: पापपङ्करहित: आत्मा अन्तः-करणं वर्तते। निष्कलङ्कान्तःकरणो भवान्, न किमपि कलुषत्वं भवत: हृदये वर्तते। त्वद्वाक्यस्य तव कथनस्य वशानुग: वशीभूत: अस्मि। यदेव त्वया कथितं तेन मे हृदयं निर्मलनिष्कपटभावत्वेन स्वायत्तीकृतम्। अत: भवत्कथमनुल्लंघनीयमेव। भवत: ख्यातै: जगति प्रथितै: गुणै: सौजन्यसारल्यस्नेहश्रद्धाप्रभृतिभि गुणै: निर्जित: स्वायत्तीकृत: अस्मि। सर्वमेतत्तुवर्तते एव, किन्तु परन्तु एतत् इदं नृपते: राज्ञ: दशरथस्य अस्मित्पितु: वच: वचनं वर्तते। त्वया समग्रगुणविशिष्टेन भरतेन तत् पितु: वच: अनृतम् असत्यं कर्तुं विदधातुं न युक्तम् उचितम् पितुरेव वचनं यद् भरत: राज्याधिरोहणं कुर्यात् रामश्च वनं प्रव्रजेत्, तच्चत्वया अन्यथा कर्तुं नोचितम्। किं च अपरमिदं कथनं यत् भवद्विधं भवत्सदृशं गुणगरिमविशिष्टं पुत्रम् उत्पाद्य जनयित्वा ते पिता जनक: मिथ्याभिधायी असत्यवादी भवतु? पुत्रेण पितु: वच: सर्वथा रक्षणी-यम् पुनश्च भवांस्तु सकलगुणनिधानम्। अत: भवत: परमिदं कर्तव्यं यत् पितु: वचनस्य रक्षा भूयात्, न च स: लोके कदाचिदपि मिथ्यावादीरूपेण निन्दास्पद: स्यात् ॥२३॥

व्याकरण—परि + √तुष् + णिच् + क्त = परितोषित:। निष्कलमष: आत्मा यस्य स: = निष्कलमषात्मा। निर्गतं कलमषं यस्य स: = निष्कलमष:। वशम् अनुगच्छति = वश + अनु + √गम् + ड = वशानुग। मिथ्या अभिदधाति = मिथ्या + अभि + √धा + णिनि = मिथ्याभिधायिन्।

छन्द:—शार्दूलविक्रीडित।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग। समर्थन के योग्य वस्तु का समर्थन करने मे काव्य-लिङ्ग अलङ्कार है।

(२४) इस श्लोक में राम भरत को अपनी सौगन्ध दे रहे हैं।

अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः---भरत के दीनता से भरे वचनों को सुनकर सीता करुणा से भर जाती है तथा पति से प्रार्थना करती है कि भरत की बात को ध्यान से सुन लें।

कैकेयीमातः—कैकेयी माता यस्य सः=कैकेयीमातः। यह सम्बोधन साभिप्राय है। इसके द्वारा राम यह अभिव्यक्त करना चाहते हैं कि कैकेयी के कारण ही पिता ने ये वचन दिये थे, अतः तुमको निश्चय रूप से उनका पालन करना है।

भरतः— यावद्भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले।
रामः-- मैवं नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥२४॥

[अन्वयः—नृप ! यावत् भवन्नियमावसानं भविष्यति, तावत् इह ते पादमूले भवेयम् ॥

[मा एवम्। नृपः स्वसुकृतैः सिद्धिम् अनुयातु। चेत् स्वराज्यं न परिरक्षसि, मे शापितः ॥२४॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—>

अर्थ [श्लोक २४]—हे राजन् ! जब तक कि आपके नियम, चौदह वर्षों के वनवास की समाप्ति होगी, तब तक यहाँ आपके चरणों की सेवा में रहूँ।

राम—>

ऐसा मत कहो। राजा, हमारे आदरणीय पिता अपने सत्यवादित्व आदि पुण्यों के प्रभाव से सिद्धि को, स्वर्ग आदि अनन्त सुखों को प्राप्त करें। यदि तुम अपने राज्य की रक्षा नहीं करते, तो तुमको मेरी शपथ है ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या—नृप हे राजन् ! यावत् यावत्कालपर्यन्तं भवन्नियमावसानं भवतः नियमस्य चतुर्दशवर्षपर्यन्त यद् वने निवसनं तस्य अवसानं समाप्तिः भविष्यति, तावत् तावत्कालपर्यन्तम् इह अस्मिन्नेव वन प्रदेशे ते तव पादमूले च चरणसेवायां तवाश्रये भवेयम् निवासं कुर्याम्। इति मे प्रार्थना।

मा एवम् अनेन प्रकारेण, अहं वने निवत्स्यामि इति प्रकारेण न कथय। नृपः राजा दिलीपः अस्मत्पितृपादाः स्वसुकृतैः स्वीयैः सत्यवादित्वादिपुण्यकर्मफलैरेव सिद्धिं स्वर्गाद्यनन्तसुखभोगफलम् अनुयातु प्राप्नोतु। यदि त्वं मया सह वने निवत्स्यसि, राज्यस्य च रक्षां न करिष्यसि, पितुः वचनमन्यथा भविष्यति। एवं च स राजा मिथ्यावादी भूत्वा विनष्टपुण्यो भूत्वा स्वर्गादिकं न प्राप्स्यसि। अतः चेत् यदि त्वं

२४ - इस श्लोक में भरत राम से चरण पादुका मांगता है।

स्वराज्यं स्वकीयं शासनाधिपत्यं न परिरक्षसि परित्रायसे, मे शापितः अहं तुभ्यं शपथेन बध्नामि अहं त्वां शपथेनेदं कथयामि ।।२४।।

व्याकरण—भवतः नियमस्य अवसानम् = भवन्नियमावसानम् । अव + √सो + ल्युट् (अन) अवसान ।

स्वैः सुकृतैः = स्वसुकृतैः । सु + √कृ + क्त = सुकृत । √शप् + णिच् + क्त = शापित ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अनुत्तरमभिहितम्—न विद्यते उत्तरः यस्य तत् = न + उत्तर = अनुत्तर। अभि + धा + क्त = अभिहित । राम ने जो कहा था, भरत के पास उसका कोई उत्तर नहीं था; क्योंकि पिता को मिथ्यावादी बनाना उसके लिए अनुचित था ।

कः समयः—समय के अनेक अर्थ हैं—शपथ, काल, समझौता, शर्त आदि। यहाँ समय पद का अर्थ शर्त है—"समया—शपथाचारकालासिद्धान्तसंविदः" ।

प्रतिगृहीतुम्—सामान्यतः 'प्रतिगृहीतुम्' पद का अर्थ है—स्वीकार करने के लिए, लेने के लिए । परन्तु यह अर्थ यहाँ संगत नहीं है; क्योंकि भरत चाहते हैं कि वनवास की अवधि पूरी होने पर वे पुनः राम को राज्य वापिस कर दें; अतः यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ मानने पर अर्थ की संगति हो सकेगी । इसका अर्थ होगा कि 'प्रतिग्राहयितुम्' आप को राज्य स्वीकार कराना चाहता हूँ ।

भरतः—हन्त, अनुत्तरमभिहितम् । भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि ।

रामः—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिगृहीतुमिच्छामि ।

रामः—एवमस्तु ।

भरतः—आर्य ! श्रुतम् ? आर्ये ! श्रुतम् ? तातः ! श्रुतम् ?

सर्वे—वयमपि श्रोतारः ।

भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

रामः—वत्स ! किमिच्छसि ? किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ?

(२५) **भरतः**— **पादोपभुक्ते तव पादुके मे**
एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिं
तावद् भविष्याम्यनयोर्विधेयः ।।२५।।

(२६) इस श्लोक में राम अपने द्वारा कमाए यश को वर्णन कर रहा है।

[अन्वयः—पादोपभुक्ते एते तव पादुके मूर्ध्ना प्रणताय मे प्रयच्छ। यावत् भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति, तावद् अनयोः विधेयः भविष्यामि ॥२५॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—हाय! इस प्रकार कहा है कि इसका उत्तर नहीं हो सकता। अच्छा, शर्त पूरा करने पर तुम्हारे राज्य की रक्षा करूँगा।

राम—वत्स! तुम्हारी क्या शर्त है?

भरत—मेरे हाथ मे तुमने जो राज्य धरोहर रूप में रखा है। उसको चौदह वर्षों के अन्त में वापिस करना चाहता हूँ।

राम—ऐसा ही हो।

भरत—आर्य! आपने सुन लिया है? आर्ये! आपने सुन लिया है? तात! आपने सुन लिया है?

सब लोग—हम सब भी श्रोता हैं।

भरत—आर्य! कुछ और भी वर आपसे लेना चाहता हूँ।

राम—वत्स! क्या चाहते हो? तुमको मैं क्या दूँ? तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ?

भरत—

अर्थ [श्लोक २५]—पैरों में पहनी गयी इन अपनी खड़ाऊँओं को, सिर से प्रणाम करने वाले मुझको दे दीजिये। जब तक आप अपने कार्य को सफल करके आयेंगे, तब तक मैं इन खड़ाऊँओं का आज्ञापालक होकर रहूँगा ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या—पादोपभुक्ते पादाभ्यां चरणाभ्याम् उपभुक्ते उपभोगं कारिते, व्यवहृते इत्यर्थः, एते इमे तव रामस्य पादुके काष्ठनिर्मिते पादत्राणे मूर्ध्ना शिरसा प्रणताय प्रणाम कुर्वते, शिरोऽवनमय्य प्रणमते मे मह्यं प्रयच्छ देहि। यावत् यदवधि भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति कार्य सफलतामधिगम्य अत्र आगमिष्यति, तावत् तावत्कालपर्यन्तम् अनयोः तव पादुकयो विधेयः आज्ञावशवर्ती भविष्यामि। वस्तुतः तव पादुके शासनाधिकारं निर्वर्त्स्यथ। अहं तु तयोः वशवर्ती भूत्वा राज्याधिकार-वहनकार्यं करिष्यामि ॥२५॥

व्याकरण—पादाभ्याम् उपभुक्ते = पादोपभुक्ते। उप + भुज् + क्त = उपभुक्त। प्र + √नम् + क्त = प्रणत। वि + √धा + यत् = विधेय।

छन्दः—इन्द्रवज्रा छन्द।

रामः—(स्वगतम्) हन्त भोः!

(२६) सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥२६॥

[अन्वयः—सुचिरेण अपि कालेन मया किञ्चिद् यशः अर्जितम् । अद्य भरतेन अचिरेण एव कालेन सञ्चितम् ॥२६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—(मन में) हे लोगो ! आश्चर्य की बात है—

अर्थ [श्लोक २६]—बहुत अधिक समय में मैंने कुछ यश उपार्जित किया था, परन्तु आज भरत ने बहुत कम समय में उसको सञ्चित कर लिया है ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या—सुचिरेण अतिदीर्घेण अपि कालेन समयेन मया रामेण किञ्चित् स्वल्पमेव यशः पित्राज्ञापालनरूपा कीर्तिः अर्जितं सम्पादितमासीत् परन्तु अद्य इदानीमस्मिन् समये भरतेन अचिरेण अतिस्वल्पेनैव कालेन समयेन् तद् यशः सञ्चितमेकत्रीकृतम् । पितृभक्तोऽह तदाज्ञापरायणश्चेति यशः मया चिरकालं यावत् परिश्रमं कृत्वा उपार्जितमासीत्, परन्तु भरतेन इदानीं भ्रातृभक्तिश्रद्धादिगुणान् प्रदर्शयता न केवलं तादृशं यशः परन्तु ततोऽप्यधिकं स्वल्पेन कालेनैव सञ्चितम् ॥२६॥

व्याकरण—सम् + चि + क्त = सञ्चित् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उदात्त । भरत की विशेष कीर्ति का कथन करने से उदात्त अलङ्कार है ।

सीता—अय्यउत्त ! णं दीयदि खु पुडमजाअणं भरदस्स । [आर्यपुत्र ! ननु दीयते खलु प्रथमयावचनं भरतस्य ।]

रामः—तथास्तु । वत्स ! गृह्यताम् ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । (गृहीत्वा) आर्य ! अत्राभिषेकादकमावर्जयितुमिच्छामि ।

रामः—तात ! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम् ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् ।

भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः !

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः ।
भ्रातॄणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ॥२७॥

[अन्वयः—अहं स्वजनस्य श्रद्धेयः, पौररुचितः, लोकस्य दृष्टिक्षमः, स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितः सुतः, गुणशालिनां भ्रातॄणां बहुमतः, कीर्तेः महद् भाजनं, गुणवतां संवादेषु कथाश्रयः, लब्धप्रियाणां प्रियः ॥२७॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! निश्चय ही आप भरत के लिए पहली माँगी गयी वस्तु दे देते हैं।

राम—ऐसा ही होगा। वत्स ! ले लो।

भरत—मैं अनुगृहीत हो गया हूँ। (लेकर) आर्य ! इन पादुकाओं पर राज्याभिषेक का जल प्रक्षिप्त करना चाहता हूँ।

राम—तात ! भरत को जो इष्ट है, उसको सब वैसा ही कर दो।

सुमन्त्र—आयुष्मान् जो आदेश देते हैं।

भरत—(मन में) हे लोगो ! आश्चर्य की बात है—

अर्थ [श्लोक २७] – मैं अब अपने सम्बन्धियों में श्रद्धा का पात्र, नगर-निवासियों का स्नेह पात्र, संसार में दृष्टि उठाने योग्य, स्वर्ग में स्थित राजा दशरथ का प्रिय तथा सदाचारी पुत्र, गुणशाली भाइयों का बहुत अधिक आदरणीय, यश का महान् पात्र, गुणीजनों की वार्त्ताओं में उनको कथाओं का आश्रय और प्रिय पदार्थों को प्राप्त करने वाले लोगों का स्नेह-भाजन हो गया हूँ। मैं राज्य का लोभी हूँ और भाई के वनवास का कारण हूँ, इस प्रकार का मेरे ऊपर कलंक नष्ट हो गया है और मैं सबकी दृष्टि मे निष्कलङ्क हो गया हूँ ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या –सम्प्रति अहं स्वजनस्य आत्मीय सम्बन्धिनां श्रद्धेयः श्रद्धां-योग्यः विश्वासभाजनं संजात. पौररुचितः पौराणां नगरनिवासिनां रुचितः प्रियः संजातः लोकस्य जगतः दृष्टिक्षमः दृष्टौ दर्शने क्षमः समर्थः सञ्जातः। दृष्टिमुन्नमय्याहं लोकमवलोकयितुं क्षमोऽस्मि। स्वर्गस्थस्य स्वर्गेविद्यमानस्य नराधिपस्य राज्ञः दशरथस्य दयितः प्रियः शीलान्वितः शीलेन सदाचारेण अन्वितः युक्तः सुतः पुत्रः सञ्जातः। गुणशालिनीं गुणैः शौर्यपराक्रमपितृभ्रातृभक्त्वादिभिः गुणै शालन्ते शोभन्ते इति तेषां बहुमत अत्यधिकादरविषयः सञ्जातः। कीर्तेः यशसः महत् प्रकृष्टं भाजनं पात्रं सञ्जातः, गुणवतां गुणशालिनां जनानां संवादेषु कथाश्रयः कथाविषयः सञ्जातः। लब्धप्रियाणां लब्धः अधिगतः प्रियः इष्टकामना यैः तेषां पूर्णकामानां जनानां प्रियः प्रती पात्रं सञ्जातः। रामकृपां प्राप्य मे कलङ्कः विनष्टः। निष्कलङ्कत्वाच्च सर्वे जनाः मयि स्निह्यन्ति, श्रद्धधति च। अत एव स्वजनाः इदानीं मयि श्रद्धधति, नगर-निवासिनः स्निह्यन्ति, दृष्टिमुन्नमय्याहं लोकसमक्षम्, अवलोकयितुं क्षमः, नृपस्य योग्यः सुतः, भ्रातरो मां समादरपात्रतां नयन्ति, महती मे कीर्तिः सञ्जाता, गुणिनो जनाः वार्तालापेषु आदरेण मां कीर्तयन्ति, पूर्णकामाश्च जनाः मयि स्निह्यन्ति ॥२७॥

व्याकरण—पौराणां रुचितः=पौररुचितः। पुरे वसन्ति=पुर+अण्=पौर। लब्धः प्रियः यै तेषाम्=लब्धप्रियणाम्। √लभ्+क्त=लब्ध। √प्री+क=प्रियः।

छन्दः--शार्दूलविक्रीडित।

अलंकार—उल्लेख। एक ही भरत का अनेक प्रकार से वर्णन होने के कारण उल्लेख अलङ्कार है।

इस श्लोक में भरत लौटते को राम की चरणपादुका दिखाते हैं।

अत्राभिषेकोदक···—भरत चाहते हैं कि उनके ऊपर इस बात का कलङ्क किञ्चन्मात्र भी न रहे कि वे राज्य के लोभी हैं; अतः राम के प्रतिनिधि के रूप में उनकी पादुकाओं को लेकर उन्हीं पर राज्याभिषेक के जल को छिड़कवाते हैं।

राज्यं मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्—राज्यशासन निरन्तर शासक की दृष्टि चाहता है कि राजा को सतत जागरूक रहना चाहिये। क्षण भर की लापरवाही भी बहुत अधिक विनाश का कारण हो सकती है।

अलमतिस्नेहेन—भरत को जाना तो पड़ेगा ही; अतः राम का सीता से कहना है कि तुम अब बहुत अधिक स्नेह मत दिखाओ और भरत को जाने दो।

रामः—वत्स कैकेयीमातः! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् तस्मादद्यव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः।

सीता—हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो? [हुं, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः?]

रामः—अलमतिस्नेहेन। अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—वत्स कैकेयीपुत्र! राज्य की क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसलिए आज ही विजय प्राप्त करने के लिए कुमार लौट जावें।

सीता—हुँ, कुमार भरत आज ही लौट जायेंगे?

राम—अत्यधिक स्नेह मत दिखाओ। विजय प्राप्त करने के लिए कुमार आज ही लौट जावें।

भरतः—आर्य! अद्यैवाहं गमिष्यामि।

(२८)

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥२८॥

[**अन्वयः**—पुरे आशावन्तः पौराः त्वद्दिदृक्षया स्थास्यन्ति। त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् तेषां प्रीतिं करिष्यामि ॥२८॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—आर्य! मैं आज ही चला जाऊँगा।

अर्थ [श्लोक २८]—नगर में आशाओं से भरे हुए नगरनिवासी आपके दर्शन की इच्छा कर रहे होंगे। आपकी कृपा रूप इन पादुकाओं का दर्शन कराकर उनको प्रसन्न करूँगा ॥२८॥

संस्कृत-व्याख्या—पुरे नगरे आशा वन्तः उत्कण्ठावन्तः रामः प्रतिनिवर्तिष्यते तस्य राज्याभिषेको भविष्यति, स च राजसिंहासनमधिरुह्य प्रजारञ्जनं करिष्यतीति

हृदयेषु तवागमनाभिलाषां धारयन्ति इति भावः, पौराः नगरनिवासिनः जनाः त्वद्दिदृक्षया तव दर्शनेच्छया स्थास्यन्ति भविष्यन्ति । त्वत्प्रसादस्य त्वया दत्तयोः प्रसादरूपयोः पादुकयोः दर्शनात्, त्वां प्रतिनिवर्तयितुमशक्तः भरतः पादुकयोरेवाभिषेकं कृत्वा आनीतवान् च ते इति पौराः द्रक्ष्यन्ति, तेषां पौराणां प्रीतिं प्रसन्नतां करिष्यामि विधास्यामि । ते पादुके एव द्रष्ट्वा ते तव दर्शनं प्राप्स्यन्ति ॥२८॥

व्याकरण—आशाः सन्ति येषां ते = आशा + मतुप = आशावत् । प्रथमा का बहुवचन = आशावन्त. । तव दिदृक्षया = त्वद्दिदृक्षया । द्रष्टुम् इच्छा = दिदृक्षा । √दृश् + सन् + अ + टाप् = दिदृक्षा । तृतीया विभक्ति का एकवचन दिदृक्षया । √प्री + क्तिन् = प्रीति ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! मयेदानीं किं कर्तव्यम् ?

रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः ।

सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये ।

रामः—वत्स कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।

भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(रथमारोहतः)

रामः—मैथिली ! इतस्तावत् । वत्स लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—आयुष्मान् ! मुझे अब क्या करना है ।

राम—तात ! कुमार भरत का महाराज के समान ही पालन करें ।

सुमन्त्र—यदि जीवित रहूँगा, तो प्रयत्न करूँगा ।

राम—वत्स कैकेयीपुत्र ! मेरे सामने ही रथ पर चढ़ जाओ ।

भरत—आर्य जैसा आदेश देते हैं ।

(सुमन्त्र और भरत रथ पर चढ़ते हैं)

राम—सीते ! इधर आओ । वत्स लक्ष्मण ! इधर आओ । आश्रम के द्वार तक भरत के पीछे चलते हैं ।

(सब बाहर निकल जाते हैं)

इति चतुर्थोऽङ्कः

चतुर्थ अङ्क पूरा हुआ

इति भासविरचितप्रतिमानाटके डॉ० कृष्ण कुमारकृतव्याख्या:

---

(1) इस श्लोक में राम कहते है कि अयोध्या नगरी का सम्पूर्ण भार भरत को ही सम्भालना पड़ेगा।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

सीता—अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्माजिदो अस्समो। अस्समपदविभवेण अणुट्ठिओ देवसमुदाआरो ता जाव अय्यउत्तो ण आअच्छदि, दाव इमाणं बालरुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं। [आर्ये! उपहारसुमनआकीर्णः सम्माजित आश्रमः। आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः। तद्यावदार्यपुत्रो नागच्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि।]

तापसी—अविग्घं से होदु। (अविघ्नमस्य भवतु)

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—(सशोकम्)

(1) **त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यापुरी—**
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः।
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भोः! नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥१॥

[अन्वयः—गुरुणा मया च रहितां तां रम्याम् अयोध्यापुरीं त्यक्त्वा, मम अखिलम् अभिषेकम् अपि उद्यम्य मत्सन्निधौ आगतः। गुणनिधिः भरतः रक्षार्थं पुनः तत्र एव सम्प्रेषितः। भो! कष्टम्। नृपतेः सुमहतीं धुरम् एकः समुत्कर्षति ॥१॥

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर सीता और तापसी प्रवेश करते हैं)

सीता—आर्ये! देवोपहार के पुष्पों से आकीर्ण आश्रम को झाड़—बुहार कर स्वच्छ कर दिया है। आश्रम के वैभव के अनुरूप पुष्प आदि से देवपूजन को सम्पन्न कर दिया है। तो जब तक आर्यपुत्र नहीं आते हैं, तब तक इन छोटे वृक्षों को जल देकर सींच देती हूँ।

तापसी—यह कार्य निर्विघ्न पूरा हो।

(तदनन्तर राम प्रवेश करते हैं)

राम—(दुःख के साथ)

अर्थ [श्लोक १]—पिता से तथा मुझसे रहित उस रमणीय अयोध्या नगरी को छोड़ कर, मेरे सम्पूर्ण राज्याभिषेक की सामग्री को उठाकर जो मेरे समीप आया था, गुणों के निधान उस भरत को, राज्य की रक्षा के लिये पुनः वहीं भेज दिया

है। हे लोगो ! यह कष्ट का विषय है कि महाराज के उस अत्यधिक महान् राजकीय भार को वह अकेला ही वहन कर रहा है ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—गुरुणा जनकेन मया रामेण च रहितां शून्यीकृतां च रम्यां रमणीयां मनोहारिणीं अयोध्यां पुरीम् अयोध्यानगरीं त्यक्त्वा विसृज्य, मम वनवासिनो रामस्य अखिलं सम्पूर्णम् अभिषेकं राज्याभिषेकसामग्रीम् उद्यम्य गृहीत्वा, अत्र वने मम राज्याभिषेकं सम्पादयिष्यतीति सकलामेव राज्याभिषेकसामग्रीमत्रानीय, मत्सन्निधौ मम समीपम् आगतः आयातः। सः गुणनिधिः गुणानां निधिः निधानं भरतः पुनः अपि रक्षार्थं राज्यस्य परिपालनाय तत्र अयोध्यायामेव प्रेषितः प्रहितः। त्वं राज्यपालनकर्तव्यं सुचारुरूपेण निर्वह, इति आदिश्य पुनरयोध्यायां प्रेषितः। भोः जनाः ! कष्टं सुकष्टकरमिदं यत्, नृपतेः राज्ञः दशरथस्य सुमहतीं नानाविधमहत्कार्यवशीभूतत्वादतिगुर्वीं धुरं राज्यशासनभारं सः भरतः एकः एकाकी सहायान्तररहितः समुत्कर्षति समुद्वहति। इति वार्ता मामात्यन्तं खेदयति ॥१॥

व्याकरण—√रम् + यत् + टाप् = रम्या। उत् + √यम् + क्त्वा (ल्यप्) = उद्यम्य। अस्मत् + सम् + नि + √धा + कि = मत्सन्निधि। गुणानां निधिः = गुणनिधिः। तत् + त्रल् = तत्र।

छन्दः—शार्दूलविक्रीडित।

सम्मार्जित……—तम् + √मृज् + णिच् + क्त = सम्मार्जित। इस वर्णन से विदित होता है कि आश्रम में पुष्प आदि से समृद्ध वृक्षों की बहुतायत थी और ये पुष्प आश्रम में बिखरते रहते थे। सीता इनको प्रतिदिन झाड़-बुहार कर आश्रम की सफाई करती थी। वह वहाँ प्रतिदिन पुष्प आदि से देवताओं का पूजन करती थी और आश्रम के छोटे पौधों को सींचती थी।

(विमृश्य) ईदृशमेवैतत्। यावदिदानीमीदृशशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि। तत् क्व नु खलु गता वैदेही ? (परिक्रम्यावलोक्य) अये, इमानि प्रत्यग्राभिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति। तथाहि—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः।
स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥२॥

[**अन्वयः**—सफेनम् अवस्थितं सलिलं वृक्षावर्ते भ्रमति। तृषितपतिताः एते खगाः जलं क्लिष्टं न एव पिबन्ति। बिले जलपूरिते आर्द्राः कीटाः स्थलम् अभिपतन्ति। जलक्षयरेखया वृक्षाः मूले नववलयिनः ॥२॥

(२) इस श्लोक में पेड़ों की सिंचाई का वर्णन है।

हिन्दी रूपान्तर—

(विचार करके) यह राज्य-कार्य तो ऐसा ही होता रहता है। इसलिए अब मैं इस प्रकार के शोक को दूर करने के लिए प्रत्येक अवस्था में साथ देने वाली सीता को देखता हूँ। तो सीता कहाँ गयी होगी ? (घूम कर और देख कर) अये, ये ताजे तत्काल ही सींची गयी वृक्षों की जड़ें निश्चय से सूचित कर रही हैं कि सीता दूर नहीं गयी है; क्योंकि—

अर्थ [श्लोक २]—जल से तत्कालीन ही सिंचाई करने के कारण झाग से युक्त होता हुआ जल वृक्षों के आलवाल में प्रवेश कर रहा है। प्यासे तथा जल के समीप उतरते हुए ये पक्षी जल को व्याकुल होकर नहीं पी रहे हैं। बिल के जल से भर जाने पर भीगे हुए कीड़े स्थल पर आ रहे हैं। भूमि में जज्ब होने के कारण जल के कम हो जाने से बनी रेखा के वृक्षों के मूल में नये घेरे (वलय) बन गये हैं ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—प्रत्यग्राभिषिक्तत्वाद् वृक्षाणामेषावस्था विद्यते—सफेनं फेनेन पिण्डीरेण सहितं फेनिलमित्यर्थः अवस्थितं तदवस्थया विशिष्टं सलिलं जलं वृक्षावर्ते वृक्षाणां पादपानाम् आवर्ते आलवाले भ्रमति भूम्यन्तरं प्रविशति। वृक्षाणामालवालेषु दीयमानं जलं पूर्वं तावत् फेनिलं जायते, तदनन्तरं च धरया शोष्यते। जलस्य फेनिल-भावेन धरया च तस्य शोष्यमाणत्वेन प्रत्यग्राभिषक्तभावः सूच्यते। तृषितपतिताः तृषिताः पिपासाकुलाः अत एव पतिताः जलपानाय भूमौ अवतीर्णा एते इमे खगाः पक्षिणः जलं सलिलं क्लिष्टं कष्टभावेन न एव पिबन्ति पानं कुर्वन्ति। आलवालेषु निर्मलं प्रचुरं च सलिलं वर्तते। अतः जलपाने पक्षिणः न कमपि कष्टम् अनुभवन्ति। बिले कीटनिवासभूते गर्ते जलपूरिते जलेन नीरेण पूरिते सम्पूर्णे सति आर्द्राः जल-क्लिन्नाः कीटाः स्थलं धराया उपरिभागम् अभिपतन्ति आगच्छन्ति। आलवालेषु प्रत्यग्रमेव जलप्रक्षेपणात्तत्र गर्ताः जलेन पूरिताः कीटाश्च आर्द्राः सञ्जाताः। जलप्ला-वनमसहमानास्ते कीटाः बिलगर्भभागान् परित्यज्य बहिः स्थलमागच्छन्ति। जलक्षय-रेखया जलस्य सलिलस्य क्षयस्य ह्रासस्य यो रेखा पंक्तिः तया वृक्षाः पादपाः मूले नववलयिनः नवमण्डलाकाररेखाचिह्निताः दृश्यन्ते। मूलभागे वृक्षाः पङ्कमिश्रितजलेन पूर्णाः। किञ्चित्क्षणानन्तरं जलांशस्य भूमौ शोष्यमाणत्वात् तत्र मूले जलमिश्रित-पङ्कस्य नववलयानि चिह्नितानि। एतैः चतुर्भिर्लक्षणैरनुमीयते, प्रत्यग्रमेव सीतया एते सिञ्चिताः। अतः सा अदूरवर्तिनी एव वर्तते ॥२॥

व्याकरण—वृक्षाणाम् आवर्ते = वृक्षावर्ते। आ + वृत् + अच् = आवर्त। फेनेन सहितम् = सफेनम्। पूर्वं तृषिताः पश्चात् पतिताः = तृषितपतिताः। खे गच्छन्ति इति खगाः। नवानि वलयानि येषां ते = नव + वलय + इनि = नववलयिन्।

छन्दः—हरिणी।

अलङ्कार—स्वाभावोक्ति। जलसेंचन के तुरन्त बाद की अवस्था का स्वाभाविक वर्णन करने के कारण स्वाभावोक्ति अलङ्कार है। इस श्लोक में सीता की कोमलता का वर्णन किया गया है

(विलोक्य) अये, इयं वैदेही। भोः कष्टम्—

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि
स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं
समं लताभिः कठिनीकरोति ॥३॥

(उपेत्य) मैथिली ! अपि तपो वर्धते ?

[अन्वयः—दर्पणे अपि अस्याः यः करः श्राम्यति, स कलशं वहन्त्याः खेदं न एति। कष्टम्। स्त्रीजनसौकुमार्यं वनं लताभिः समं कठिनीकरोति ॥३॥

हिन्दी रूपान्तर—

(देखकर) अये, ये सीता है। हे लोगो ! कष्ट की बात है—

अर्थ [श्लोक ३]—दर्पण को उठाने में भी उसका जो हाथ थक जाता था, वह हाथ घड़े को उठाते हुए भी थकावट के कष्ट को नहीं अनुभव कर रहा है। कष्ट का विषय है कि स्त्रियों की सुकुमारता को वन, लताओं के साथ ही कठोर बना देता है ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—दर्पणमुखाद्यवलोकनावसरेषु आदर्शस्य करे धारणे अपि अस्याः सीतायाः यः करः हस्तः श्राम्यति श्रमजनितायासमनुभवति, सः एव करः कलशं घटं वहन्त्याः धारयन्त्याः जलसेकनिमित्तं जलपूर्णं घटमुत्थाप्य आनयन्त्याः खेदं श्रमजनितायासं न एति प्राप्नोति। आयासं न अनुभवति इत्यर्थः। कष्टम् अत्यधिकखेदावहोऽयं विषयः यत्, स्त्रीजनसौकुमार्यं स्त्रीजनस्य ललनानां सौकुमार्यं मार्दवं वनम् अरण्यं लताभिः वल्लरीभिः समं सार्धं कठिनीकरोति कठोरं विदधाति। सर्वविधश्रमायाससहनशीलतां प्रददतीत्यर्थः। वने निवसन्त्योऽतिसुकुमारस्वभावा अपि ललनाः कठोरगुणं सम्प्राप्य तत्र श्रमायाससहिष्णुतामपादयन्ति ॥३॥

व्याकरण—कृ + अच् = कर। स्त्रीजनस्य सौकुमार्यम् = स्त्रीजनसौकुमार्यम्। सुकुमारस्य भावः = सुकुमार + ष्यञ् = सौकुमार्य। अकठिनं कठिनं करोति = कठिन + च्वि (दीर्घ) + करोति = कठिनीकरोति।

छन्दः—उपेन्द्रवज्रा।

अलंकार—विषम, सहोक्ति और उपमा। अति कोमल सीता द्वारा वृक्ष सेंचनरूप कठोर कार्य के साथ सम्बन्ध दिखाने से विषम अलंकार है। लताओं तथा स्त्रीजन का मनोरम साथ वर्णन करने से सहोक्ति अलंकार है। यहाँ लता और स्त्री का सादृश्य अभिव्यञ्जित होने से उपमा अलंकार है।

(समीप आकर) सीते ! क्या तुम्हारी तपस्या में वृद्धि हो रही है ?

अवस्थाकुटुम्बिनीम्—अवस्था सर्वास्वेव दशासु कुटुम्बिनीं गृहिणीधर्मपालन-

इस श्लोक में राम अपने आप को घायल मान रहे हैं

तत्पराम् । भारतीय स्त्रियाँ प्रत्येक अवस्था में सुख-दुःख में समृद्धि- निर्धनता में, यश-अपयश में, मान-अपमान में पति का साथ देती हैं । यही उनका धर्म है; अतः वे पति के शोक को दूर करने और उनकी प्रसन्नता को बढ़ाने में सहायक होती हैं ।

प्रत्यग्राभिषिक्तानि'''—वृक्षों को सीता ने अभी-अभी सींचा है; अतः उनके आलवाल में जल भरा हुआ है । पक्षी उसको आनन्द से पी रहे हैं । बिलों में जल भर जाने से कीड़े बाहर निकल रहे हैं और वृक्षों के मूल में पंक मिश्रित जल की रेखा का वलय बन गया है ।

भो: कष्टम्—राजमहलों में पली अति कोमल सीता को, घड़ा उठा कर वृक्षों का सेंचन करते देख कर राम के मन में व्यथा होती है ।

अपि तपो वर्धते—तपस्वियों का कुशल मंगल पूछने के लिये तप के सम्बन्ध में प्रश्न किया जाता है । अपि यहाँ प्रश्नार्थक है ।

सीता—हं अय्यउत्तो ? जेदु अय्यउत्तो । (हुं, आर्यपुत्र ? जयत्वार्यपुत्र: ।)

राम:—मैथिली ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्न:, आस्यताम् ।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।) (उपविशति)

राम:—मैथिली ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ?

सीता—सोअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ । किं एदं । (शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखराग: किमेतत् ?)

राम:—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ।

(५) Imp

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे
तथैव तावद्धृदयव्रणो मे ।
नानाफला: शोकशराभिघाता-
स्तत्रैव तत्रैव पुन: पतन्ति ।।४।।

[**अन्वय:**—कृतान्तशल्याभिहते मे शरीरे हृदयव्रण: तावत् तथा एव । नानाफला: शोकशराभिघाता: पुन: तत्र एव तत्र एव पतन्ति ।।४।।]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—हुं, आर्यपुत्र हैं ? आर्यपुत्र की जय हो ।

बैठिये ।

सीता—जैसा आर्यपुत्र आदेश देते हैं । (बैठती है)

राम—सीते ! मैं देख रहा हूँ कि तुम कुछ पूछना चाहती हो, यह क्या बात है ?

राम—सीते ! यदि आपके धार्मिक कार्य में विघ्न न हो रहा हो तो

सीता—आर्यपुत्र के मुख का रंग ऐसा प्रतीत हो रहा है। जैसे कि शोक से से हृदय सूना हो रहा हो। यह क्या बात है ?

राम—सीते ! आपने उचित ही चिन्ता की है—

अर्थ [श्लोक ४]—विधाता के बाणों से आहत किये गये मेरे शरीर में हृदय का घाव अभी तो वैसा ही था, अभी वह घाव भरा भी नहीं था कि अनेक प्रकार के फलों अर्थात् दुःखों को उत्पन्न करने वाले शोकरूपी वाणों के आघात बार बार वहीं और वहीं गिर रहे हैं। अभी तो पिता की मृत्यु और वनवास के दुःख का घाव भरा भी नहीं है कि हृदय पर पुनः पुन और आघात पड़ रहे हैं।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—कृतान्तशल्याभिहते कृतान्तस्य विधातुः शल्यैः वाणैः अभिहते आहते मे मम शरीरे वपुषि हृदयस्य व्रण पितृनिधन-जन्यशोकरूपः मान-सिकाघातव्रणः तावत् तथा एव तथाविध एव वर्तते, न साम्प्रतमपि विरूढः। अपितु नानाफला नानाविविधानि फलानि प्रयोजनानि दुःखदायकानि येषां तथाविधाः शोकशराभिघाता शोक. विषाद एव शरा वणाः तेषाम् अभिघाताः प्रहाराः पुनः वारं वारं तत्र एव तत्र नव तस्मिन् हृदये एव पतन्ति। पितृमरणजन्यस्य हृदयस्थितशोकस्य व्रणः अद्यापि न विरूढः, अपरश्च शोकशराभिघातः हृदये आपतितः।।४।।

व्याकरण कृतान्तस्य शल्यैः अभिहते=कृतान्तशल्याभिहते। कृतः अन्तः येन सः=कृतान्तः। अभि + $\sqrt{}$हन् + क्त अभिहत। शोकः एव शराः तेषाम् अभिघाताः=शोकशराभिघाताः। अभि + $\sqrt{}$हन् + णिच् + क्त=अभिघात।

छन्दः— उपजाति।

अलङ्कार—विषम और रूपक। व्रणित हृदय पर पुन आघात होने से विषम अलङ्कार है। शोक एव शराः में उपमेय पर उपमान का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

धर्म विघ्न—धर्मे विघ्नः=धर्मविघ्नः। वि + हन् + क=विघ्ना आश्रमों में वृक्ष आदि का सेचन तपस्वियों का धर्म माना गया है।

शोकशून्यहृदयस्य—शोकेन शून्यं हृदयं यस्य तस्य। मुखस्य रागः=मुखरागः। रञ्ज् + घञ्=राग। राम को श्राद्ध की चिन्ता थी; अतः उनके मुख पर चिन्ता के भावों के कारण मुख का रंग फीका हो जाना स्वाभाविक था।

सीता—अय्यउत्तस्य को विअ सन्दावो ? [आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ?]

रामः—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः। कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः। तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्तयति।

अथवा—

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन
ते एव जानन्ति हि तां दशां मे ।
इच्छामि पूजां च तथापिकर्तुं
तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

[अन्वयः—येन केन खलु तुष्टिं गच्छन्ति । ते एव हि मे तां दशां जानन्ति तथापि रामस्य सानुरूपां तातस्य पूजां कर्तुम् इच्छामि ॥५॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र को कौन-सा सन्ताप हो रहा है ?

राम—कल आदरणीय पिता जी का वार्षिक श्राद्ध का दिन है । पितरों की इच्छा होती है कि उनकी सन्तान शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपनी सामर्थ्य से पिण्डदान की क्रिया करें । तो मैं इस पिण्डदान की क्रिया को कैसे करूँगा, यह विचार कर रहा हूँ । अथवा—

अर्थ [श्लोक ५]–जिस किसी प्रकार से वे सन्तुष्ट हो जाते हैं तो हो जावें । वे ही निश्चय से मेरी उस अवस्था को जानते हैं । तो भी जो राम के सामर्थ्य से करने के योग्य हो, मैं पिता की वैसी ही श्राद्ध-पूजा करना चाहता हूँ । यद्यपि मेरी अवस्था को, वन में निवास को तथा धनहीनता को वे पितर जानते हैं; अतः जैसा भी मैं श्राद्ध करूँगा, उससे वे सन्तुष्ट हो जायेंगे, तथापि मैं अपने सामर्थ्य के अनुरूप उनका श्राद्ध करना चाहता हूँ ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—श्राद्धक्रियासु ते पितरः येन केन येन केनापि प्रकारेण पुत्र-वैभवानुरूपेण श्राद्धविधिना तुष्टिं तृप्तिं गच्छन्ति । तथापि रामस्य सानुरूपां सामर्थ्यानुसारं तातस्य पितुः जनकस्य पूजां श्राद्ध-निर्वपनक्रियां कर्तुं विधातुम् इच्छामि अभिलषामि । यद्यपि मम वर्तमानदशां वने निवासं धनरहितत्वं च मे पितरः जानन्ति अतः यथैवाहं तेषां निर्वपनविधिं करिष्यामि तथैव ते सन्तोषं प्राप्स्यन्ति, तथापि रामोऽहं जगति विख्यातप्रभावः । अतः तदनुसारमेव मया श्राद्धविधिः सम्पादनीया । परं विगतधना कथं तन्निर्वाहयेयमिति मे चिन्ता ॥५॥

व्याकरण—√तुष् + क्तिन् = तुष्टि । √दश् + अङ् √टाप् = दशा । रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम् ।

छन्दः— उपजाति ।

अलङ्कार—परिकर और दीपक । सानुरूपाम् इस अभिप्रायगर्भित विशेषण होने के कारण परिकर अलङ्कार है । तातस्य रामस्य च इन दोनों कारकों का एक क्रिया से सम्बन्ध होने से दीपक अलङ्कार है ।

तातस्य अनुसंवत्सरश्राद्धविधिः—हिन्दू धर्म में परम्परा है कि पिता के स्वर्ग चले जाने पर उनकी स्मृति में पुत्र श्राद्ध करते हैं । इस अवसर पर ब्राह्मणों को

इस श्लोक में राम दर्भ और फलों का वर्णन कर रहे हैं।

विशेष भोजन कराया जाता है। विश्वास किया जाता है कि यह भोजन पितृलोक में स्थित पितरों को प्राप्त होता है। श्राद्ध का लक्षण है—

संस्कृतव्यञ्जनाढ्यञ्च पयोदधिघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते॥

प्रतिवर्ष आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में मृत्यु की तिथि के अनुसार श्राद्ध किया जाता है। इसको अनुसवत्सर (वार्षिक) श्राद्ध कहते हैं। सवंत्सरं संवत्सरम् अनु = अनुसंवत्सरम्।

सीता - अय्यउत्त णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए, अवत्थाणुरूवं। फलोदएण वि अय्यउत्तो। एदं तादस्य बहुमदअरं भविस्सदि। [आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्ध्या, अवस्थानुरूपम् फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।]

रामः— मैथिलि।

(6) फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।
स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति॥६॥

[अन्वयः— दर्भेषु न स्वहस्तरचितानि फलानि दृष्ट्वा, वनवासं च स्मारितः तातः तत्र अपि रोदिति॥६॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! अवस्था के अनुरूप वैभव के साथ भरत श्राद्ध को सम्पन्न करा देंगे। आर्यपुत्र फल और जल से श्राद्ध सम्पन्न कर लें, तात के लिए यही बहुत अधिक सम्माननीय होगा।

राम—सीते !

अर्थ [श्लोक ६]—दर्भों पर हमारे अपने हाथों से रखे हुए फलों को देख कर और हमारे वनवास को स्मरण करके पिता वहाँ भी रो पड़ेंगे। विश्वास किया जाता है कि श्राद्ध में जो वस्तु ब्राह्मणों को अर्पित की जाती है. वही पितृलोक में पितरों को प्राप्त होती है। हम दर्भों पर फल रख देंगे, तो वहाँ पिता को हमारे वनवास का स्मरण हो आयेगा और वे निश्चय ही उसको देखकर रोयेंगे॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—दर्भेषु कुशेषु नः अस्माकं स्वहस्तरचितानि स्वैः निजैः हस्तैः करैः रचितानि स्थापितानि फलानि दृष्ट्वा अवलोक्य, वनवासम् अस्माकमरण्ये निवसनं च स्मारितः तातः पिता दशरथः तत्र पितृलोके अपि रोदिति विलापं करिष्यति। अस्माकं सौवर्णादीनि पात्राणि न सन्ति, अतः दर्भाणामेव प्रयोगो भविष्यति आधारत्वेन। एवं च श्राद्धवस्तूनि फलान्येव भविष्यन्ति महार्घं व्यञ्जनाद्यभावात्।

इस श्लोक में रावण कहता है कि मैं सीता का अपहरण करूँगा !

भृत्याद्यभावात् तानि निजकरैरेव रचितानि भविष्यन्ति । एतद् दृष्ट्वा पितृलोकेऽपि तातोऽस्माकं वनवासं स्मृत्वा रोदिष्यति । श्राद्धेषु पुत्रैः ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तान्येव वस्तूनि पितरो लभन्त इति प्रसिद्धः ।।६।।

व्याकरण—स्वैः हस्तैः रचितानि = स्वहस्तरचितानि । √हस् + तन् = हस्त । √रच् + णिच् + क्त = रचित । √स्मृ + णिच् + क्त = स्मारित ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—भाविक और स्मरण । पितरों की भविष्य की अवस्था का प्रत्यक्ष के समान वर्णन करने से भाविक अलङ्कार है । समान वस्तु को देखकर अन्य समान वस्तु का स्मरण करना स्मरण अलङ्कार है । वनवास के योग्य दर्भ और फल देखकर वनवास का स्मरण करने से स्मरण अलङ्कार है ।

भरतः श्राद्धम् ऋद्धया—भरत के पास राज्यवैभव है; अतः वह पिता के योग्य श्राद्ध का निर्वाह बड़े वैभव से करेगा ही ।

अवस्थानुरूपं फलोदकेन—अवस्थायाः अनुरूपम् = अवस्थानुरूपम् । रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम् । वन में रहने के कारण राम को केवल फल और जल ही प्राप्य हैं; अतः वे इसी से श्राद्ध सम्पन्न कर सकते हैं ।

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो रावणः)

रावण—एष भोः

(7)

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ।।७।।

[**अन्वयः**—अनियतात्मा अहम् एतत् रूपं गृहीत्वा नियतं खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा स्वरपदपरिहीणां हव्यधाराम् इव तां जनकनृपसुतां हर्तुकामः प्रयामि ।।७।।

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर परिव्राजक के वेश में रावण प्रवेश करता है)

रावण—हे लोगो ! यह—

अर्थ [श्लोक ७]—इन्द्रियों के अधीन होता हुआ मैं इस परिव्राजक के रूप को धारण करके, नियमों का पालन करने वाले और खर राक्षस के साथ वैर को करने वाले अर्थात् उसका वध करने वाले रघुवंशी राम को ठग कर, स्वरों और पदों से विहीन आहुत की जाती हुई, घृतधारा के समान उस जनकराजा की पुत्री सीता का अपहरण करने की इच्छा से जा रहा हूँ । जिस प्रकार हवन में घृत की आहुति, यदि वह स्वर तथा पद से अशुद्ध मन्त्रोच्चारण करके डाली जाये, तो उसका राक्षस अपहरण कर लेते हैं, उसी प्रकार मैं सीता का अपहरण करूँगा ।।७।।

संस्कृत व्याख्या—अनियतात्मा अनियतः अविजितः आत्मा इन्द्रियाणि येन स, आत्मेति पदस्य इन्द्रियार्थे प्रयोगः। इन्द्रियाधीनोऽहं रावणः एतद् इदं रूपं परिव्राजक-रूपं गृहीत्वा सन्धार्य, नियतं नित्यनियमपालकं जितेन्द्रियमिति भावः, खरवधकृतवैरं खरस्य एतन्नामकस्य रावणभ्रातु राक्षसस्य वधेन मारणेन कृतं विहितं वैरं शत्रुता येन तादृशं, रामेण खरराक्षसस्य वधं कृत्वा मया सह वैरभावः कृतः, अतः तस्याः पत्न्या अपहरणं समुचितमेव, राघवं रघुवंशीयं रामं वञ्चयित्वा प्रतार्य, मायामृगरूपेण छलेन आश्रमाद् अन्यत्र कृत्वा, स्वरपदपरिहीणां स्वरेभ्यः पदेभ्यश्च परिहीणां वर्जिताम् अशुद्धप्रयोगविहीनां हव्यधारां हवनेषु हूयमानामाज्यधाराम् इव तां जनकनृपसुतां जनकराजपुत्रीं सीतां हर्तुकामः अपहरणाभिलाषी सन् प्रयामि गच्छामि। यथा स्वरैः पदैश्च विहीनां हव्यधारां राक्षसा अपहरन्ति, तथैवाहं, तस्याः सीताया अपहरणं करिष्यामि ॥७॥

व्याकरण—न नियतः = अनियतः। अनियतः आत्मा यस्य सः = अनियतात्मा। नि + √यम् + क्त नियत। स्वरेभ्यः पदेभ्यश्च परिहीणाम् = स्वरपदपरिहीणाम् √हा + क्त = हीन। हव्यस्य धारा = हव्यधारा। √हु + यत् = हव्य। √धृ + णिच् + अङ् + टाप् = धारा।

छन्दः—मालिनी।

अलङ्कार—उपमा। जनकनृपसुता उपमेय, हव्यधारा उपमान, इव उपमा-वाचक, अपहरण करना सामान्य धर्म है। उपमा के चारों अङ्गों के होने से पूर्णोपमा है।

(परिक्रम्याधो विलोक्य) इदं रामस्याश्रमद्वारपदम्। यावदवतरामि। (अवतरति) यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। अहमतिथिः। कोऽत्र भोः?

रामः—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये।

रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण।

रामः—(विलोक्य) अये, भगवान्? भगवन्! अभिवादये।

रावणः—स्वस्ति।

रामः—भगवन्! एतदासनमास्यताम्।

रावणः—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन। (प्रकाशम्) बाढम्। (उपविशति)

रामः—मैथिलि! पाद्यमानय भगवते।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि। (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आवो।
[यदार्यपुत्र आज्ञापयति। इमा आपः।]

रामः—शुश्रूषय भवन्तम्।

सीता—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा) भवतु, भवतु—

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥८॥

[अन्वयः—हि इयं पृथिव्यां मानुषीणाम् एका अरुन्धती । यस्याः भर्ता भवान् नारीभिः सत्कृतः इति कथ्यते ॥८॥

हिन्दी रूपान्तर—

(घूमकर और देखकर) यह राम के आश्रम के द्वार का स्थान है तो उतरता हूँ । (उतरता है) तो अब मैं अतिथियों के आचरण का पालन करूँगा । मैं अतिथि हूँ । हे ! यहाँ कौन है ?

राम—(सुन कर) अतिथि का स्वागत हैं ।

रावण—इस सुन्दर रूप को मधुर स्वर ने निश्चय से बहुत अधिक विशिष्ट बना दिया ।

राम—(देख कर) अये भगवान् हैं ? हे भगवान् ! अभिवादन करता हूँ ।

रावण—कल्याण हो ।

राम—भगवान् ! यह आसन है । बैठिये ।

रावण—(अपने मन में) क्या इसने मुझको आदेश-सा दिया है । (प्रकट रूप में) अच्छा । (बैठ जाता है)

राम—सीते ! भगवान् के लिए पैर धोने का जल ले आओ ।

सीता—आर्यपुत्र जैसा आदेश देते हैं । (निकल कर और प्रवेश करके) ये जल है ।

राम—भगवान् की सेवा करो ।

सीता—आर्यपुत्र जैसा आदेश देते हैं ।

रावण—(माया के खुल जाने के भय से व्याकुल होकर) रहने दो रहने दो ।

अर्थ [श्लोक ८]—निश्चय से यह सीता मानव स्त्रियों में अकेली अरुन्धती है, पतिव्रताओं में शिरोमणि है, जिसके पति आपका नारियाँ बहुत अधिक यशोगान करती हैं ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—हि निश्चयेन इयम् एषा सीता पृथिव्याम् अस्यां धरायां मानुषीणां मानवस्त्रीणाम् एका अद्वितीया अरुन्धती अरुन्धती इव पतिव्रताशिरोमणिभूता वर्तते । अरुन्धती नाम्नी वसिष्ठपत्नी स्वपातिव्रत्यप्रभावेण सप्तर्षिमध्ये निवसति । सा पतिव्रतासु मानवीषु सर्वश्रेष्ठरूपेण गण्यते । यस्याः सीतायाः भर्ता पतिः भवान् नारीभिः विश्वस्य सर्वाभिः वनिताभिः सत्कृतः पूजितः इति कथ्यते लोके वर्ण्यते । इयं सीता पातिव्रत्यप्रभावेण सकलजनमाननीया । भवांश्चास्या पतिः । तत्पातिव्रत्य प्रभावेण भवान् सर्वाभिः नारीभिः वन्द्यमानत्वात् सकलजनपूजनीया । अतः नाहं योग्यो यदेषा मम पादप्रक्षालनं कुर्यात् ॥८॥

व्याकरण—√प्रथ् + षिवन् + ङीप् (इट् का आगम तथा सम्प्रसारण) पृथिवी । मनुष्य = अण् + ङाप् = मानुषी ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उदात्त । सीता के प्रभावातिशय का वर्णन करने से उदात्त अलङ्कार है ।

मायाप्रकाशपर्याकुलः—मायायाः प्रकाशनेनपर्याकुलः । रावण को भय हुआ कि पतिव्रता सीता के स्पर्श से कहीं उसकी माया प्रकट न हो जावे; अतः उसने सीता द्वारा चरणप्रक्षालन का स्वीकार करना नहीं चाहा ।

रामः—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।

रावणः—अयि, छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।

रामः—बाढम् । (उपविशति)

हिन्दी रूपान्तर—

राम—तो ले आओ । मैं ही सेवा करूँगा ।

रावण—अरे, छाया को छोड़कर मैं शरीर का लंघन नहीं करूँगा । सच्चा अतिथिसत्कार तो वाणी से हो जाता है । मेरा सत्कार हो गया है । आप बैठिये ।

राम—बहुत अच्छा । (बैठ जाते हैं)

छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि—पत्नी को पति की छाया के समान माना गया है । राम शरीर हैं तो सीता उनकी छाया है । जब रावण ने सीता से सेवा कराना स्वीकार नहीं किया तो राम से सेवा कराना शिष्टाचार का उल्लङ्घन होता ।

रावणः—(आत्मगतम्) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । (प्रकाशम्) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि । साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च ।

रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति ?

रावणः—सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता । किमेतत् ?

रामः—भगवन् ! भ्रष्टायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः ।

रावणः—अलं परिहृत्य । पृच्छतु भवान् ।

रामः—भगवन् ! निर्वपनक्रियाकाले केन पितॄंस्तर्पयामि ?

रामः—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।

रावणः- भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थं पृच्छामि ।

रावणः—श्रूयताम् । विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषु तिलाः, कलायं शाकेषु,

इस श्लोक में राम चन्द्र तपस्या और धनुष की बात कर रहे हैं।

मत्स्येषु महाशफरः, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशषु गौः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

रामः—भगवान् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

रामः—एष एव मे निश्चयः—

(9) उभयस्यास्ति सान्निध्यं यदेतत् साधयिष्यति ।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥९॥

अन्वयः—उभयस्य अपि सान्निध्यम् अस्ति, यद् एतत् साधयिष्यति । तपसि श्रान्ते धनुः धनुषि वा श्रान्ते तपः ॥९॥

हिन्दी रूपान्तर—

रावण—(अपने मन में) तो मैं भी अपने ब्राह्मण के योग्य आचरण का पालन करूँगा । (प्रकट रूप में) हे राम ? मेरा गोत्र काश्यप है । मैंने अङ्गों और उपाङ्गों सहित वेदो का अध्ययन किया है, मनु द्वारा रचित धर्मशास्त्र का, महेश्वर द्वारा रचित योगशास्त्र का, बृहस्पति द्वारा रचित अर्थशास्त्र का, मेघातिथि द्वारा रचित न्यायशास्त्र का और प्रचेतस् ऋषि द्वारा रचित श्राद्धकल्प का अध्ययन किया ?

राम—क्या कहा, क्या कहा, श्राद्धकल्प का ?

रावण—सब विद्याओं को लाँघकर आपने श्राद्धकल्प के प्रति इच्छा दिखायी है । यह क्या बात है ?

राम—भगवन् ! पिता की मृत्यु हो जाने के कारण अब इस शास्त्र की अपेक्षा है ।

रावण—आप इस विषय को न छोड़ें । आप पूछें ।

राम—भगवन् ! पिण्डदान के समय पितरों को किस वस्तु से तृप्त करूँ ?

रावण—श्रद्धा से दिया गया सब कुछ श्राद्ध ही है ।

राम—हे भगवन् ! अनादर से दिया गया तो त्याग देने योग्य होता है । मैं विशेष रूप से देने योग्य के लिए पूछ रहा हूँ ।

रावण—सुनो । घासों में दर्भ, ओषधियों में तिल, शाकों मे कलाय, मछलियों में महाशफर, पक्षियों में वाध्रीणस, पशुओ में गाय या गैंडा, मनुष्य जाति मे तो श्राद्धों मे ये ही विहित है ।

राम—भगवन् ! वा शब्द से मैं समझता हूँ कि इस विषय में और भी कुछ है ।

रावण—है तो, परन्तु उसको प्रभाव-सामर्थ्य से ही सम्पादित किया जा सकता है ।

राम—भगवन् ! यही मेरा निश्चय है ।

अर्थ श्लोक ९।—मेरे पास दोनों ही प्रकार के साधन तपस्या और धनुष हैं, जिनसे कि मैं इस साध्य को सिद्ध करूँगा । तपस्या के विफल हो जाने पर धनुष से कार्य सिद्ध करूँगा अथवा धनुष के विफल हो जाने पर तपस्या से सिद्ध करूँगा ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—उभयस्य अपि मयि सदृशे जने उभयप्रकारस्यापि धनुषो तपसश्च साधनद्वयस्य सान्निध्यं सामीप्यमस्ति। द्वयोरपि साधनयोः मयि सामीप्यं वर्तते। धनुषा वा तपसा वा अहं सर्वमपि कार्यजातं साधयितुं शक्नोमीति भावः। तपसि तपस्यायां श्रान्ते अतिशयेन खिन्ने विफले सञ्जाते धनुः वा कोदण्डो वा वर्तते। धनुषि कोदण्डे वा श्रान्ते सञ्जाते तपः विद्यते। यत्कार्यं तपसा साधयितुं न शक्यते तत् धनुषा साधयितुं शक्यते, यच्च कार्यं धनुषा साधयितुं न शक्यते, तत् तपसा साधयितुं शक्यते। अनेन प्रकारेण अहं सर्वाण्यपि कार्याणि प्रभावातिशयेन साधयितुं शक्नोमि ॥६॥

व्याकरण—सम् + नि + धा + कि = सन्निधि। सन्निधेः भावः = सन्निधि + ष्यञ् = सान्निध्यम्। श्रम् + क्त = श्रान्त।

छन्दः—अनुष्टुप्।

साङ्गोपाङ्गम्—वेदों का अध्ययन अङ्गों तथा उपाङ्गों सहित किया जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः ज्योतिष् ये छः वेदाङ्ग हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चार उपाङ्ग हैं।

मानवीयम्—मनुना प्रोक्तम् = मनु + अण् = मानव। मानवस्येदम् = मानव + छ (ईय) = मानवीय। मनु ने धर्मशास्त्र की रचना करके धर्म का अनुशासन किया था। योगशास्त्र की रचना महेश्वर (शिव) ने की थी, जो पतञ्जलि के योग-दर्शन का मूल है। अर्थशास्त्र का प्रवर्तन बृहस्पति ने किया था, जो चाणक्य के अर्थ-शास्त्र का मूल है। न्यायशास्त्र का प्रवर्तन मेधातिथि ने किया था, जो गौतम के न्यायदर्शन का मूल है। श्राद्धकल्प का प्रवर्तन प्रचेतस् ने किया था। प्रचेतस् का अर्थ वरुण देवता है। प्रचेतस् नाम के ऋषि भी हुए हैं।

भ्रष्टायां पितृमज्ञायाम्—पितृत्व से वञ्चित हो जाने पर। भ्रश् + क्त + टाप् = भ्रष्टा।

वार्ध्रीणसः—वार्ध्रीणस एक विशेष पक्षी का नाम है। मार्कण्डेय पुराण में इसका लक्षण है—

रक्तपादो रक्तशिरा रक्तचक्षुर्विहङ्गमः।
कृष्णवर्णेन न तथा पक्षी वार्ध्रीणसो मतः॥

रावणः—सन्ति। हिमवति प्रतिवसन्ति।

रामः—हिमवतीति। ततस्ततः।

रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बु-पायिनो वैदूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः यैर्वैखानसबालखिल्यनैमीषादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति।

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते
हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः ।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवास-
मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद् ध्रियन्ते ॥१०॥

[अन्वयः—तैः तर्पिताः पितरः सुतफलं लभन्ते, जरां हित्वा च दीप्यमानाः हि खम् उपयान्ति । सुरैः तुल्यं विमानवासं समुपयान्ति । आवर्तिभिः च विषयैः बलाद् न ध्रियन्ते ॥१०॥

हिन्दी रूपान्तर—

रावण—हैं । वे हिमालय पर रहते हैं ।

राम—हिमालय पर रहते हैं । उसके बाद ?

रावण—हिमालय के सातवें शिखर पर, प्रत्यक्ष रूप से शिव के सिर पर गिरती हुई गङ्गा के जल का पान करने वाले, वैदूर्य मणि के समान श्यामल पीठ वाले, वायु के समान वेगशाली, काञ्चनपार्श्व नाम के मृग हैं । वैखानस, बालखिल्य, नैमिषीय आदि महर्षियों के ध्यान मात्र से उपस्थित होकर वे मृत हो जाते हैं । तथा उनके द्वारा वे ऋषि श्राद्ध कार्यों को करते हैं ।

अर्थ [श्लोक १०]—उन काञ्चनपार्श्व मृगों के मांस से तृप्त होकर पितर लोग पुत्र होने के फल को प्राप्त कर लेते हैं और वृद्धावस्था को छोड़ कर वे दीप्तिशाली होते हुए स्वर्ग में पहुँचते हैं । देवताओं के समान वे विमानों में निवास करते हैं तथा आवागमन (पुनर्जन्म) को कराने वाले विषय भोग उनका बलपूर्वक अपहरण नहीं कर सकते ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—तैः काञ्चनपार्श्वमृगैः तेषां मांसप्रयोगैः तर्पिताः संतृप्ताः सञ्जाताः पितरः पितृलोके विद्यमानाः पूर्वजाः सुतफलं पुत्रजन्मजन्यप्रयोजनं लभन्ते प्राप्नुवन्ति । तेन च जरां वृद्धावस्थां त्यक्त्वा हित्वा सततं यौवनावस्थामनुभवन्तस्ते दीप्यमानाः भ्राजमानाः सन्तः हि निश्चयेन खं स्वर्गम् उपयान्ति प्राप्नुवन्ति । वार्धक्यमपहाय स्वर्गं सेवन्ते । तत्र स्वर्गे च सुरैः देवैः तुल्यं समानं विमानवासं विमानेषु सप्तभूमिकप्रासादेषु व्योमयानेषु वा वासं निवसनं समुपयान्ति प्राप्नुवन्ति । आवर्तिभिः जननमरणावागमनकारिभिः विषयैः इन्द्रियार्थप्रदीपकैः सांसारिकभोगविषयैः बलात् हठात् न ध्रियन्ते बाध्यन्ते । जन्ममरणकारणभूतानि विषयाणि तान् न बाधन्ते ॥१०॥

व्याकरण—दीप् + यक् + शानच् (मुक् का आगम) = दीप्यमान ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

हिमवतः सप्तमे शृङ्गे...—पौराणिक कथाओं के अनुसार भगीरथ की तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग से गिरती हुई गंगा को शिव ने अपने सिर पर ग्रहण किया था । उस समय वे हिमालय के शिखर पर स्थित थे ।

काञ्चनपार्श्वाः—यह एक काल्पनिक मृग है, जिससे रावण ने राम को

लुभाने का विचार किया था। इनकी पीठ श्यामवर्ण तथा पार्श्व भाग सुनहरे कल्पित किये गये थे।

वैखानसबालखिल्यनैमीषादयः---वैखानस नाम वानप्रस्थियों का है। बालखिल्य नाम के ६० हजार ऋषियों का समुदाय पुराणों में प्रसिद्ध है। इनका आकार एक अंगुष्ठमात्र माना गया था। नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषि नैमिषीय कहलाते थे।

चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः---चिन्तितमात्रेण उपस्थितैः विपन्नैः मृतैश्च। ऋषियों के विचारमात्र से वे उपस्थित हो जाते हैं तथा मर जाते हैं। इससे उनका मांस श्राद्ध में दिया जा सकता है।

रामः---मैथिलि !

> **आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च**
> **विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च।**
> **वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु**
> **दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥११॥**

[अन्वयः---पुत्रकृतकान् हरिणान्, द्रुमान्, विन्ध्यं वनं, तव दयिता. सखीः लताः च आपृच्छ। दीप्तैः औषधिवनैः उपरञ्जितेषु इव तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु वत्स्यामि ॥११॥]

हिन्दी रूपान्तर--

राम---सीते !

अर्थ [श्लोक ११]---अपने पुत्रों के समान हरिणों से, वृक्षों से, विन्ध्य वन से और प्रिय सखी लताओं से विदा ले लो। मैं चमकती हुई औषधियों से युक्त वनों से प्रकाशित होते हुए, हिमालय पर्वत के उन अरण्यों में निवास करूँगा ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या--पुत्रकृतकान् सुततुल्यपालितान् हरिणान् मृगान्, द्रुमान् वृक्षान्, विन्ध्यं वनं विन्ध्यारण्यं, दयिताः स्नेहभाजः तव त्वदीयाः सखीः प्रियवयस्याभूताः लताः वल्लयः च आपृच्छ गमनकालिकामन्त्रणेन सम्भावय। यतोऽहं दीप्तैः सततं प्रकाशमानैः औषधिवनैः ज्योतिष्मत्यादिप्रकाशमानवनस्पतियुक्तैररण्यैः प्रकाशमानेषु तेषु काञ्चनपार्श्वमृगशालिषु हिमवद्गिरिकाननेषु हिमवद्गिरेः हिमालयपर्वतस्य काननेषु अरण्येषु वत्स्यामि निवासं करिष्यामि। मया पितॄणामुत्तमतर्पणं कर्त्तव्यम्। तच्च काञ्चनपार्श्वमृगैः भविष्यति। ते च हिमालयारण्येषु निवसन्ति। अतोऽहं तेषामानयनाय हिमवन्तं गत्वा तत्र तपसा धनुषा वा तानानयिष्यामि। अतः तत्रैव मे वासो रोचते ॥११॥

व्याकरण---पुत्र + कृत + कन् = पुत्रकृतक। √दय् + क्त (इडागम) + टाप् = दयिता।

इस श्लोक में राम कहते है कि हिमालय मुझे स्वयं को दिखा प्राप्त कराएगा।

छन्दः---वसन्ततिलका ।

अलंकार---उदात्त और दीपक हिमालय की उदात्त शोभा का वर्णन करने से उदात्त अलकार है । हरिणान्, द्रुमान्, वनं, लताः इन सब कर्म कारकों का एक क्रिया आपृच्छ से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलङ्कार है ।

सीता---जं अज्जउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

रावणः---कौसल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन, न ते मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः---भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः---अथ किम् ?

रामः---तेन हि पश्यतु भवान्---

(12) **सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।**
भिन्नो मद्वाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥१२॥

[अन्वयः---सौवर्णान् तान् मृगान् मे हिमवान् वा दर्शयिष्यति । वा मद्वाण-वेगेन भिन्नः क्रौञ्चत्वं गमिष्यति ॥१२॥

हिन्दी रूपान्तर---

सीता---आर्यपुत्र जो आदेश देते हैं ।

रावण---हे कौशल्यापुत्र ! बहुत अधिक मन की अभिलाषा मत करो । मनुष्यों को वे हरिण दिखायी नहीं देते ।

राम---भगवन् ! क्या वे हिमालय पर रहते हैं ?

रावण---और क्या ?

राम---तो आप देखें---

अर्थ [श्लोक १२]---स्वर्ण के रंग के उन काञ्चनमृगों को मुझे हिमालय दिखा देगा, अथवा मेरे वाणों के वेग से विदीर्ण होकर क्रौञ्च पर्वत की दशा को प्राप्त होगा । यदि हिमालय मुझे उन स्वर्णमृगों को नहीं दिखायेगा, तो मैं उसको वाणों के प्रहार से विदीर्ण कर दूँगा । उसकी वैसी ही अवस्था होगी, जैसे कि परशुराम ने वाणों से बींध कर क्रौञ्च पर्वत की कर दी थी ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या---सौवर्णान् सुवर्णाभान् तान् काञ्चनपार्श्वाभिधेयान् मृगान् हरिणान् मे मह्यं हिमवान् हिमालयपर्वतः वा दर्शयिष्यति प्रत्यक्षीकारयिष्यति, वा अथवा मद्वाणवेगेन मम रामस्य वाणानां शराणां वेगेन रंहसा भिन्नः विदीर्णः सन् क्रौञ्चत्वं क्रौञ्चपर्वतस्य दशां गमिष्यति प्राप्स्यति । यदि हिमालयपर्वतः हिमगिरि-निवासिनः मुनिजनश्राद्धोपयुक्तान् काञ्चनपार्श्वाभिधेयान् मृगान् मे न दर्शयिष्यति, तस्यामवस्थायामाह तं पर्वतं स्ववाणपातैः विदारयिष्यामि । तदा सः क्रौञ्चपर्वतस्य

इस श्लोक में बताया गया है कि एक हिरण राम की कुटियों के सामने आते हैं

अवस्थां गमिष्यति। कदाचित् शिवशिष्ययोः परशुरामकार्तिकेययोः स्वविद्योत्कृष्टतां परीक्षितुं स्पर्धा जाता। क्रौञ्चगिरिं य एव स्वबाणैः विदारयिष्यति, स एव विजेता भविष्यतीति समयः समजनि। तदा परशुरामस्य बाणैः विदीर्णः क्रौञ्चपर्वतः सच्छिद्रः सञ्जातः। तदेव छिद्रं साहित्ये क्रौञ्चरन्ध्रमिति नाम्ना प्रसिद्धिं गतम्। कालिदासेनापि मेघदूते वर्णितम्—हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्"। तदेव रन्ध्रं मानससरसो यात्रां चिकीर्षतां हंसानां मार्गः ॥१२॥

व्याकरण—सुवर्णस्य इदम् = सुवर्ण + अण् = सौवर्ण। मम बाणानां वेगेन = मद्बाणवेगेन। √भिद् + क्त = भिन्न। क्रौञ्चस्य भावः = क्रौञ्च + त्व = क्रौञ्चत्व।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलंकार—पर्यायोक्त। प्रस्तुत शब्दों से व्यञ्जित होने वाली वस्तु को अन्य प्रकार से कहना पर्यायोक्त अलङ्कार है। मेरे बाणों से बिंध कर उस हिमालय में क्रौञ्च पर्वत के समान छिद्र हो जायेगा, इस अर्थ के लिए कहा गया कि वह हिमालय क्रौञ्चत्व को प्राप्त हो जायेगा; अतः यहाँ अन्य प्रकार से कहने से पर्यायोक्त अलङ्कार है।

रावणः—(स्वगतम्) अहो, असह्यः खल्वस्यावलेपः। (प्रकाशम्) अये, विद्युत्सम्पात इव दृश्यते। कौसल्यामातः! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान्। एष काञ्चनपार्श्वः।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा।

सीता—दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्ढइ। [दिष्टया आर्यपुत्रो वर्धते।]

रामः—न न—

(१५) **तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः।** Imp
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ॥१३॥

[अन्वयः—यदि स्वयम् इह आगतः, तातस्य एतानि भाग्यानि। मैथिली लक्ष्मणं! ब्रूहि, एष हि पूजायाम् अर्हति ॥१३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

रावण—(मन में) अहो, इसका घमण्ड तो निश्चय से सहा नहीं जा रहा। (प्रकट रूप में) अये, बिजली गिर रही-सी प्रतीत होती है। हे कौशल्या के पुत्र! यहाँ स्थित होते हुए आपका हिमालय पूजन कर रहा है। यह काञ्चनपार्श्व मृग है।

राम—यह तो आप भगवान् की महिमा है।

सीता—भाग्य से आर्यपुत्र की महिमा बढ़ रही है।

राम—नहीं, नहीं—

अर्थ [श्लोक १३]—यदि यह स्वयं ही यहाँ आ गया है, तो ये पिता जी के अच्छे भाग्य हैं। हे सीते! लक्ष्मण से कहो कि यह मृग निश्चय से पूजा के योग्य है ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या---यदि अयं काञ्चनमृगः स्वयम् आत्मनैव इह अस्मिन् स्थाने विन्ध्यवने मत्सन्निधौ आगतः दिनैव मे प्रयासेन समायातः, एतानि इमानि तु तातस्य जनकस्यैव भाग्यानि भागधेयानि। पितुः भाग्यैरेवायं काञ्चनमृगस्तस्याभ्युदयायात्र समायातः। हे मैथिलि सीते! लक्ष्मणं सौमित्रिं ब्रूहि कथय, एष मृगः हि निश्चयेन पूजायां वार्षिकश्राद्धविधौ अर्हति उपयुक्तो विद्यते। एनमानीय अनेनैव शीघ्रं श्राद्धकर्म समापनीयम् ॥१३॥

व्याकरण—भज् + ण्यत् = भाग्य। अस्मिन् अर्थ में = इदम् + ह (इदम् को इ आदेश) = इह।

छन्दः अनुष्टुप्।

सीता—अय्यउत्त! णं तित्थअत्तादो उवावत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग्गच्छेहि त्ति सन्दिट्ठो सोमित्ती। [आर्यपुत्र! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्गच्छेति सन्दिष्टः सौमित्रिः।]

रामः---तेन हि अहमेव यास्यामि।

सीता—अय्यउत्त अहं किं करिस्सं? [आर्यपुत्र! अहं किं करिष्यामि?]

रामः—शुश्रूषयस्व भगवन्तम्।

सीता—जं अज्जउत्तो आणवेदि। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति।]

(निष्क्रान्तो रामः)

रावणः—अये, अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः। एष इदानीं पूजामनवेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः—

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥१४॥

[**अन्वयः**—अहो बलम्, अहो वीर्यम्, अहो सत्त्वम्, अहो जवः। स्थाने, राम इति अल्पैः अक्षरैः इदं जगद् व्याप्तम् ॥१४॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र! निश्चय से आपने ही, तीर्थयात्रा से वापिस लौटे हुए कुलपति की अगवानी करने के लिए लक्ष्मण को आदेश दिया है।

राम—इसलिए मैं ही जाऊँगा।

सीता—आर्यपुत्र ! मैं क्या करूँगी ?

राम—भगवान् की सेवा करो।

सीता—आर्यपुत्र जो आदेश देते हैं।

(राम निकल जाते हैं)

रावण—अरे, ये राम तो मेरे सत्कार की पूजन सामग्री को लेकर आ रहे थे। अब पूजा-सामग्री की उपेक्षा करके, मृग को दौड़ते हुए देखकर ये राम धनुष पर बाण चढ़ा रहे हैं।

[अर्थ श्लोक १४]--राम का बल आश्चर्यजनक है, राम का पराक्रम आश्चर्यजनक है, राम का पौरुष आश्चर्यजनक है और राम का वेग आश्चर्यजनक है। यह बात ठीक है कि राम इन थोड़े से अक्षरों से यह संसार व्याप्त हो गया है। राम का यश सारे संसार में व्याप्त हो गया है ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—अहो बलं रामस्य शारीरिकी शक्तिः आश्चर्यभूता वर्तते, अहो वीर्यं रामस्य आन्तरिकपराक्रमः विस्मयास्पदः वर्तते, अहो सत्त्वं रामस्य धैर्यमाश्चर्यजनकं वर्तते, अहो जवः रामस्य वेगः शीघ्रगमनं धनुषि च वेगेन बाणसंयोजनं विस्मयास्पदतां गतः। अतः स्थाने, उचितमेवेदं यत् राम इति अल्पैः त्रित्वमपि भजद्भिः अक्षरैः इदमेतत् जगत् विश्वं व्याप्तम्। अस्य रामस्य कीर्तिः सर्वस्मिन्नेव जगति प्रथिता इति भावः ॥१४॥

व्याकरण—वीरे साधु अथवा वीर्यते अनेन = वीर + यत् = वीर्य। सतोभावः सत् + त्व = सत्त्व। √गम् + क्विप् = जगत्। वि + √आप् + क्त = व्याप्त।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उदात्त। राम के अतिशय गुणों का कथन करने से उदात्त अलङ्कार है।

कुलपतिम्—शिक्षा का प्रधान अधिकारी कुलपति होता था। वह दस हजार छात्रों का भरण-पोषण करने तथा शिक्षा का प्रबन्ध करने में समर्थ होता था—

मुनीनां दश साहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥

एष मृग एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयो वनगहनं प्रविष्टः।

सीता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तविरहिदाए भअं मे एत्थ उप्पज्जइ। [आर्यपुत्रविरहिताया भयं मेऽत्रोत्पद्यते।

रावणः—(आत्मगतम्)

माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात्।
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥१५॥

अन्वय:—मायया रामे अपहृते एकां रुदतीं बालां सीतां तपोवनात् अमन्त्रोक्ताम् आहुतिम् इव हरामि ॥१५॥

हिन्दी रूपान्तर—

एक ही कूद में बाण के लक्ष्य को लाँघ कर यह मृग घने वनों में घुस गया है।

सीता—(अपने मन में) आर्यपुत्र से वियुक्त होकर मुझ में यह भय उत्पन्न हो रहा है।

रावण—(अपने मन में)

अर्थ [श्लोक १५]—काञ्चनमृग की माया के द्वारा राम को दूर कर देने पर, मैं, अकेली, रोती हुई और स्वल्पायु सीता को तपोवन से, मन्त्रोच्चारण से रहित आहुति के समान हर लेता हूँ ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—मायया काञ्चनपार्श्वमृगोपस्थानरूपेण छलेन रामे दाशरथौ अपहृते दूरदेशं प्रापिते सति, एकाम् असहायां रुदतीं क्रन्दन्तीं बालां स्वल्पवयस्कां सीतां जानकीं तपोवनात् मुन्याश्रमस्थानात्, अमन्त्रोक्तां मन्त्रोच्चारणविरहितां स्वाहेतिवचनशून्याम् आहुतिं हव्यम् इव हरामि अपनयामि। यथा मन्त्रोच्चारणरहिता यज्ञाहुतिः राक्षसैरपह्रियते, तथैव रामरहितामेकाकिनीं सीतामहं हरामि ॥१५॥

व्याकरण—अप् + हृ + क्त = अपहृत। मीयते अनया = √मा + य + टाप् = माया।

छन्द—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उपमा। यहाँ सीता उपमेय, आहुति उपमान, इव उपमावाचक शब्द और हरण करना साधारण धर्म है। उपमा के चारों अंग होने से पूर्णोपमा है।

एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयः—एकेन प्लुनेन अतिक्रान्तः शराणां विषयः येन सः।
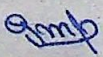
सीता—जाव उडजं पविसामि। [यावदुटजं प्रविशामि]। (गन्तुमीहते)।

रावणः—(स्वरूपं गृहीत्वा) सीते ! तिष्ठ तिष्ठ।

सीता—(सभयम्) हं को दाणिं अअं ? [हं क इदानीमयम् ?]

रावणः—किं न जानीषे ?

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिताः
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ।
दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्यच्छलैः
सत्वां हर्तुमना विशालनयने प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥१६॥

[अन्वयः—येन युद्धे सदानवगणाः शक्रादयः सुराः निर्जिताः, शूर्पणखाविरूप-करणं दृष्टवा, भ्रातरौ हतौ श्रुत्वा, विशालनयने ! सः अहं रावणः अप्रमेयबलिनं दुर्मतिं रामं छलैः विलोभ्य दर्पात् त्वां हर्तुमनाः प्राप्तः अस्मि ॥१६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—तो मैं कुटी में प्रविष्ट होती हूँ। (जाने की चेष्टा करती है)।

रावण—(अपने वास्तविक स्वरूप को धारण करके) सीते ! ठहरो, ठहरो।

सीता (भयभीत होकर) हं, अब यह कौन है ?

रावण—क्या तुम नहीं जानतीं—

अर्थ [श्लोक १६]—जिसने युद्ध में दानवों सहित इन्द्र आदि देवताओं को जीत लिया था, शूर्पणखा को नाक-कान काट कर विरूप किया गया देखकर तथा खर-दूषण दोनों भाइयों को मारा गया सुनकर, हे विशाल नेत्रों वाली सीते ! वह मैं रावण, असीम बलशाली तथा दुष्ट बुद्धि वाले रावण को कपट द्वारा विलोभित करके, घमण्ड में भरकर तुम्हारा अपहरण करने के लिए आ पहुँचा हूँ ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—येन रावणेन युद्धे समरे सदानवगणाः दैत्यानां संघैः सहिताः शक्रादयः इन्द्रादयः सुराः देवताः निर्जिताः निरवशेषं परास्ताः, शूर्पणखाविरूपकरणं शूर्पणखायाः एतदभिधेयायाः स्वभगिन्याः विरूपकरणं रामलक्ष्मणाभ्यां नासाकर्णच्छेदेन विरूपतासम्पादनं दृष्ट्वा अवलोक्य, मे भ्रातरौ खरदूषणौ हतौ रामेण। व्यापादितौ इति श्रुत्वा आकर्ण्य, विशालनयने विशाले आयते नयने नेत्रे यस्याः तादृशी हे सीते ! सः अहं एतद्गुणविशिष्टः अहं रावणः दशाननः, अप्रमेयबलिनम् अप्रमेयं न मातुं शक्यम् अप्रतिमं बलं शारीरिकसामर्थ्यं यस्य तादृशं दुर्मतिं दुष्टा भ्रष्टा मतिः बुद्धिः यस्य तं रामं दाशरथिं छलैः कपटैः मायामृगरूपैः विलोभ्य लोभयित्वा प्रतार्य इत्यर्थः, दर्पात् स्वभुजवीर्याभिमानात् त्वां जानकीं हर्तुमनाः अपहरणेच्छुकः सन् प्राप्तः अस्मि अत्र दण्डकारण्ये समागतोऽस्मि ॥१६॥

व्याकरण—दानवानां गणाः दानवगणाः तैः सहिताः सदानवगणाः। दनोर-पत्यम् = दनु + अण् = दानव। शूर्पणखायाः विरूपस्य करणम् = शूर्पणखाविरूप-करणम्। शूर्पा इव नखा यस्याः सा शूर्पणखा। √कृ + ल्युट् (अन) = करण। दुष्टा मतिः यस्य सः = दुर्मतिः। मन् + क्तिन् = मति। हर्तुं मनः यस्य सः = हर्तुमना। √हृ + तुमुन्।

छन्दः—शार्दूलविक्रीडित।

सीता—हं लावणो णाम ? [हं रावणो नाम ?] (प्रतिष्ठते)।

रावणः—आः रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क्व यास्यसि ?

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि, परित्ताआहि मं । [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व, परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

रावणः—सीते ! श्रूयतां मत्पराक्रमः—

> **भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः**
> **क्रुष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः ।**
> **धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं**
> **धन्याभूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥**

[अन्वयः—शक्रः भग्नः, वित्तनाथः कम्पितः सोमः क्रुष्टः, सूर्यपुत्रः, मर्दितः भोः भीतदेवैः निविष्टं स्वर्गं धिक्, भूमिः धन्या, यत्र सीता वर्तते ॥१७॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—हुँ, तो यह रावण है ? (चलने लगती है) ।

रावण—आः, रावण की दृष्टि में आकर कहाँ जायेगी ?

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो । हे लक्ष्मण ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—सीते ! मेरे पराक्रम के विषय में सुनो—

अर्थ [श्लोक १७]—युद्ध में मैंने इन्द्र को पराजित कर दिया, धन के देवता कुबेर को कँपा दिया, चन्द्रमा को खींच लिया और सूर्य के पुत्र यम को मसल डाला। हे सीते ! डरे हुए देवता जिसमें प्रविष्ट होकर छिप गये उस स्वर्ग को धिक्कार है । वह भूमि धन्य है, जहाँ सीता विद्यमान है ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—शक्रः इन्द्रः भग्नः मया युद्धे पराजितः, वित्तनाथः वित्तानां धनानां नाथः स्वामीदेवताकुबेरः वैश्रवणः कम्पितः भयेन चालितः, सोमः चन्द्रः क्रुष्टः स्वदेशवासाद् आकाशादाकृष्य स्वहर्म्यशिकरे निहितः, सूर्यपुत्रः सूर्यस्य पुत्रः यमः मर्दितः अपमानं कृत्वा पराजितः । एतादृशो मे रावणस्य पराक्रमः । भीतदेवैः भीतैः भयकम्पितैः देवैः सुरैः निविष्टं निलीय स्थितं यत्र तथाभूतं स्वर्गं नाकं धिक् । अतीव-निन्दास्पदं तत्स्थानं न वीरजननिवासयोग्यम् । भूमि सा धरित्री एव धन्या प्रशंसनीया वर्तते, यत्र यस्मिन् स्थाने सीता त्वादृशी रमणीयसौन्दर्यादिगुणशालिनी स्त्री वर्तते निवसति ॥१७॥

व्याकरण—√भञ्ज् + क्त = भग्न । √विद् + क्त = वित्त । सु + मन् = सोम ।

छन्दः—शालिनी ।

अलङ्कार—उदात्त । रावण द्वारा अपने पराक्रमरूप उदार सम्पत्ति का वर्णन करने से उदात्त अलङ्कार है ।

चक्षुर्विषयम्—चक्षुषोः विषयम् । रावण की दृष्टि में जो पड़ गया, वह बच नहीं सकता ।

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि, परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि, परित्ताआहि मं । [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व, परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा
स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।
किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभि-
र्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।।१८।।

[अन्वयः—रामं वा, लक्ष्मणं वा, स्वर्गस्थं नरेन्द्रं दशरथम् एव वा शरणम् उपेहि, कुपुरुषसंश्रितैः वचोभिः किं वा स्यात् ? मृगशिशवः व्याघ्रं न प्रधर्षयन्ति । ।।१८।।

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो । हे लक्ष्मण ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—

अर्थ [श्लोक १८]—चाहे तुम राम की, अथवा लक्ष्मण की अथवा स्वर्ग में स्थित राजा दशरथ की ही शरण में जाओ, कायर पुरुषों का आश्रय लेकर कहे गये इन वचनों से क्या लाभ है ? मृगों के बच्चे बाघ को धर्षित नहीं कर सकते । तुम किसी की शरण को क्यों न पुकारो, मुझसे तुमको कोई बचा नहीं सकता ।।१८।।

संस्कृत-व्याख्या—रामं वा स्वभर्तारं दाशरथिं वा, लक्ष्मणं वा स्वदेवरं सौमित्रिं वा, स्वर्गस्थं स्वर्गे वर्तमान नरेन्द्रं राजानं दशरथं तन्नामानं स्वश्वसुरं वा, शरणं त्रातारम् उपेहि आश्रयस्व, अनेन तव किमपि न सिध्यति । कुपुरुषसंश्रितैः कुत्सिताः दुर्बलत्वेन कुत्साविषयाः पुरुषाः रामलक्ष्मणदशरथाः तान् प्रति प्रयुक्तैः वचोभिः परित्रायस्वेति कथनैः किं वा स्यात् को लाभः ? न कोऽपि प्रयोजनसिद्धिः भविष्यति न कोऽपि तव रक्षां विधातुं समर्थः । मृगशिशवः मृगाणा हरिणानां शिशवः बालकाः व्याघ्रं द्वीपिनं न प्रधर्षयन्ति पराजेतुं समर्थाः भवन्ति । एते सर्वे रामलक्ष्मण-दशरथाः पराक्रमे मृगशिशुसदृशाः अहं च व्याघ्रतुल्यः । न ते मां पराजेतुं शक्ष्यन्ति । अतः व्यर्थमेव ते तानुद्दिश्य विलापः ।।१८।।

(9) इस श्लोक में रावण कहता है कि राम मेरे साथ युद्ध नहीं कर सकता।

व्याकरण—शृणाति दुःखम् अनेन = √शॄ + ल्युट् (अन) = शरण। कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः।

छन्दः—प्रहर्षिणी।

अलङ्कार—दृष्टान्त। उपमान में उपमेय के सामान्य धर्म का प्रतिबिम्बित होना दृष्टान्त अलङ्कार है। राम आदि मुझको पराजित नहीं कर सकते इस उपमेय के सामान्य धर्म का, मृगशिशु व्याघ्र को पराजित नहीं कर सकते, इस उपमान में प्रतिबिम्बन होने से दृष्टान्त अलङ्कार है।

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि, परित्ताआहि। सौमित्ती परित्ताआहि, परित्ताआहि मं। [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व, परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व, परित्रायस्व माम्।]

रावण:—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे
विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम्।
विपुलबलयुतो ममैवयोद्धं
ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥१९॥

[**अन्वयः**—विशालनेत्रे ! इदं किं विलपसि ? यथा तव आर्यपुत्रं मां च विगणय। विपुलबलयुतः ससुरगणः अपि रामः मम एव योद्धम् असमर्थ एव। ॥१९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो। हे लक्ष्मण ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—

अर्थ [**श्लोक १९**]—विशाल नेत्रों वाली हे सीते ! यह तुम क्या विलाप कर रही हो ? जैसे तुम्हारे आर्यपुत्र हैं, मुझको तुम वैसा ही समझ लो। बहुत अधिक से युक्त होते हुए और समस्त देवताओं को साथ लेकर भी राम मेरे साथ युद्ध करने में असमर्थ ही हैं ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या—विशालनेत्रे विशाले आयते नेत्रे यस्याः तथाभूते हे सीते ! इदं कि विलपसि कस्माद्धेतोस्त्वमेवं विलापं कुरुषे ? व्यर्थमेव तव इदं विलपनम्, न कोऽपि ते साहाय्यं करिष्यति। यथा येन प्रकारेण तव ते आर्यपुत्रं भर्त्तारं रामं तमिव मां रावणमपि विगणय सम्भावय। अहं रामादपि बलशाली वर्ते, अतः मामेव त्वं भर्तृरूपेण जानीहि। विपुलबलयुतः विपुलेन महता बलेन शारीरिकसामर्थ्येन सैन्येन वा युतः सहितः, ससुरगणः सुराणां देवाणां गणेन संघेन सहितः देवानां साहाय्यं प्राप्य

(२०) इस श्लोक में सीता को पतिव्रता कहलाया है।

अपि रामः ते भर्त्ता मम एव रावणस्य युद्धे समरे अवस्थातुम् असमर्थः अशक्तः। विपुलसैन्यसहितः देवगणसहितश्चापि स न मां युद्धे पराजेतुं समर्थः। अतस्त्वं मामेव पतिरूपेण सम्भावय ॥१६॥

व्याकरण—विशाले नेत्रे यस्याः सा = विशालनेत्रा। नीयते अनेन = √नी + ष्ट्रन् = नेत्र। √ऋ ण्यत् = आर्य। विपुलेन बलेन युतः = विपुलबलयुतः। √यु + क्त = युत।

छन्दः—पुष्पिताग्रा।

अलङ्कार—हेतु। तुम मुझको पति समझो; इस कथन का हेतु कहा गया है कि राम मुझको युद्ध में हरा नहीं सकता। हेतु और हेतुमान् का कथन करने से हेतु अलङ्कार है।

सीता—(सरोषम्) सत्तो सि। [शप्तोऽसि।]

रावणः—अहह क्षहो पतिव्रतायास्तेजः—

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥२०॥ (20)

[अन्वयः—वेगाद् उत्पतितः यः अहं सूर्यरश्मिभिः न दग्धः, अस्याः परिमितैः, शप्तः असि, इति एभिः अक्षरैः दग्धः ॥२०॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—मैं तुझको शाप देती हूँ।

रावण—हाय, हाय। पतिव्रता का तेज आश्चर्यजनक है—

अर्थ [श्लोक २०]—वेग से ऊपर आकाश में उड़ता हुआ भी जो मैं सूर्य की किरणों से जलाया नहीं जा सका, इस सीता के थोड़े से ही, "मैंने तुझको शाप दिया है", इस प्रकार के इन अक्षरों से झुलस गया हूँ ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—वेगात् अतिशीघ्रगत्या उत्पतितः व्योम्नि उड्डीयमानः यः अहं रावणः सूर्यरश्मिभि भास्करप्रखरकिरणैरपि न दग्धः परितापितः, सोऽहम् अस्याः सीतायाः परिमितैः अतिस्वल्पैः "शप्तः असि", इति एभिः अक्षरैः वर्णैः दग्धः परितापितोऽस्मि सूर्यस्य तेजसोऽपि अभिभवने समर्थोऽहं सीतायाः शापेन व्याकुलीभूतः ॥२०॥

व्याकरण—सूर्यस्य रश्मिभिः = सूर्यरश्मिभिः। √सृ + क्यप् (निपातनात्) = सूर्य। √अश् + मि (धातु को रशादेश) = रश्मि। दह् + क्त = दग्ध। शप् + क्त = शप्त।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—व्यतिरेक। उपमा सूर्य की उपेक्षा उपमेय सीता में तेज के आधिक्य का वर्णन करने से व्यतिरेक अलङ्कार है।

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि, परित्ताआहि। [आर्यपुत्र ! परित्रायस्व, परित्रायस्व।]

रावणः—(सीतां गृहीत्वा) भो भोः ! जनस्थाननिवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु भवन्तः—

बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥२१॥

[अन्वय.—दशग्रीवः बलाद् एव सीताम् आदाय गच्छति। यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः, पराक्रमं कुर्यात् ॥२१॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—(सीता को पकड़कर) हे हे ! जनस्थान में रहने वाले तपस्वियों ! आप सुनें।

अर्थ [श्लोक २१।—यह रावण जबरदस्ती सीता को लेकर जा रहा है। यदि राम को क्षात्रधर्म के प्रति आस्था है, तो पराक्रम प्रकट करे ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—दशग्रीवः दश ग्रीवाः कण्ठाः यस्य सः दशग्रीवः दशमनुष्यतुल्यपराक्रमशाली अयं रावणः बलात् स्वभुजसामर्थ्यादेव सीतां जानकीम् आदाय अपहृत्य गच्छति स्वपुरीं याति। यदि रामः क्षात्रधर्मे स्वक्षत्रियाणां कर्तव्ये स्निग्धः अनुरागवान्, पराक्रम कुर्यात् प्रकटयेत्। रावणेन मयेयं सीता बलादपह्रियते। यदि रामः सत्यमेव क्षत्रियोऽस्ति, युद्धे मां विजित्य स्वभार्यायाः सीतायाः मोक्षणं कुर्यात् ॥२१॥

व्याकरण—दश ग्रीवाः यस्य सः = दशग्रीवः। क्षात्राणां धर्मे = क्षात्रधर्मे। क्षतात् त्रायते = क्षत + √त्रै + क क्षत्र। क्षत्रस्येदम् = क्षत्र + अण् क्षात्र। धरति लोकान्, ध्रियते वा यः पुण्यशालिभिः = √धृ + मन् = धर्म। √स्निह् + क्त = स्निग्ध।

छन्दः—अनुष्टुप्।

सीता—अय्यउत्त ! परित्ताआहि, परित्ताआहि।

रावणः—(परिक्रामन् विलोक्य) अये, स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः। आः, तिष्ठेदानीम्—

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥२२॥

(निष्क्रान्तौ)

[अन्वयः—मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः रुधिरैः आर्द्रगात्रं त्वां यमसादनं नयामि ॥२२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—(घूमते हुए देखकर) अरे, अपने पंखों की वायु के तेज प्रवाह से वनप्रान्त को क्षुब्ध कर देने वाला तथा कठोर भयानक चोंच वाला यह जटायु मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। आः ! अब ठहर—

अर्थ [श्लोक २२]—अपनी भुजाओं से खींचे गये तीक्ष्ण खड्ग से काटे गये पखों के घाव से गिरते रुधिर से भीगे शरीर वाले तुमको मैं यम के घर पहुँचा देता हूँ ॥२२॥

(सीता और रावण दोनों निकल जाते हैं)

इति पञ्चमोऽङ्कः

पाँचवा अङ्क पूरा हुआ

संस्कृत-व्याख्या—मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः मम रावणस्य भुजाभ्यां बाहुभ्याम् आकृष्टेन उद्धृतेन निस्त्रिंशेन तीक्ष्णखड्गेन कृत्तयोः छिन्नयोः पक्षयोः यत् क्षत व्रणः तस्मात् च्युतैः प्रवहमानैः रुधिरैः शोणितैः आर्द्रगात्रं आर्द्राणि क्लिन्नानि गात्राणि अङ्गानि यस्य तथाभूत त्वां जटायुषं यमसादनं यमस्य सादनं गृहं यमलोकमित्यर्थः नयामि प्रापयामि। त्वं मामभिभवितुमुद्यतः। अहं स्वभुजबलसामर्थ्येन खड्गमाकृष्य तव पक्षच्छेद करिष्यामि तदनन्तरं ततः प्रवाहमानैः रुधिरैः तव वपुः क्लिन्नं भविष्यति। तदनन्तरं त्वं मरणमवाप्य यमलोकं गमिष्यति ॥२२॥

व्याकरण—मम भुजाभ्याम् आकृष्टेन निस्त्रिंशेन कृत्तयोः पक्षयोः क्षतात् च्युतैः=मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः। आ+√कृष्+क्त=आकृष्ट। निस्+त्रिंश=निस्त्रिंश। √क्षण्+क्त=क्षत। आर्द्राणि गात्राणि यस्य तम्=आर्द्रगात्रम्। √अर्द्+रक् (दीघ)=आर्द्र। √गम्+त्रन्=गात्र। यमस्य सादनम्=यमसादनम्।

छन्द—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—पर्यायोक्त। मैं तुम्हारे प्राण नष्ट कर दूंगा, इस अर्थ का कथन अन्य प्रकार से, यम के घर पहुँचा दूंगा, करने से पर्यायोक्त अलङ्कार है।

स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डः—स्वस्य पक्षयोः पवनस्य उत्क्षेपेण क्षुभितः वनखण्डः येन सः।

चण्डचञ्चूः—चण्डा चञ्चुः यस्य सः। √चण्ड्+अच्=चण्ड। चञ्चु+उन्=चञ्चू। स्त्रीलिङ्ग में—चञ्चु+ऊङ्=चञ्चू।

इति भासविरचितप्रतिमानाटके डॉ० कृष्णकुमारकृतव्याख्यायाः

पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः

—:o:—

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ)

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः।

प्रथमः— इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसा
मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा
मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥१॥

[अन्वय—नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्लोज्ज्वलदष्ट्र हासिना निशार्धचारिणा निशाचरेन्द्रेण इयं सीता मृगी इव हि परिभूय नीयते ॥१॥

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर दो वृद्ध तपस्वी प्रवेश करते हैं)

दोनों—आप सब रक्षा करें, रक्षा करें।

प्रथम—

अर्थ [श्लोक १]—नीले कमलों की माला के समान कान्ति वाला अर्थात् काले रंग का, कमलनाल के समान शुभ्र तथा उज्ज्वल दाढ़ों को दिखाकर हँसने वाला आधी, रात में विचरण करने वाला यह राक्षसराज इस सीता को हरिणी के समान, बलपूर्वक अपहरण करके ले जा रहा है ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—नीलोत्पलदामवर्चसा नीलं कृष्णवर्णं यदुत्पलं नीलकमलमित्यर्थः तेषां दाम माला इव वर्चः कान्तिः वर्णः यस्य तादृशः, अत्यधिक श्यामल कान्तिः, मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना मृणालानि कमलनालाः तानीव शुक्लाः शुभ्रवर्णाः उज्ज्वलाः कान्तिमत्यः याः दंष्ट्राः ताभिः हसति इति तादृशेन यदैव हसति तदैव तस्य मृणालवत् शुक्लाः उज्ज्वलाश्च दंष्ट्राः भासन्ते, निशार्धचारिणा निशायाः रजन्याः अर्धं निशार्धं तस्मिन् समये भ्रमति इति तथाभूतेन निशाचरेन्द्रेण निशाचराणां राक्षसानाम् इन्द्रेण स्वामिना राक्षसराजेन रावणेन इयम् एषा सीता जानकी मृगी इव हरिणी इव परिभूय तिरस्कृत्य बलात् नीयते अपह्रियते। अयं राक्षसराजो रावणः सीतां हठाद् अपहृत्य नयति ॥१॥

व्याकरण—नील च तदुत्पलं नीलोत्पलम् तेषां दाम इव वर्चः यस्य तेन= नीलोत्पलदामवर्चसा। √वच् + असुन्=वर्चस्। उत् + √पल् + अच्=उत्पल। मृणालानीव शुक्लाः उज्ज्वलाश्च याः दंष्ट्राः ताभिः हसितुं शीलं यस्य तेन। मृण् + कालन्=मृणाल। √दंश् + ष्ट्रन् + टाप्=दंष्ट्रा। हसितुं शीलं यस्य सः=हस् +

णिन = हासिन् । निशायां चरति = निशा + √चर् + ट = निशाचर। निशाचरणाम् इन्द्रः = निशाचरेन्द्र । निशायाः अर्धम् = निशार्धम् । परि + √भू + क्त्वा (ल्यप्) = परिभूय ।

छन्दः—वंशस्थ ।

अलङ्कार—यमक और उपमा । निशाचरेन्द्रेण और निशार्धचारिणा में यमक अलङ्कार है । नीलोत्पलदाम वर्चसा में नीलोत्पलदाम उपमान निशाचरेन्द्र उपमेय वर्चस् साधारण धर्म है । उपमा वाचक पद का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा समासगा अलङ्कार है । मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना में मृणाल उपमान, दंष्ट्रा उपमेय, शुक्ल और उज्ज्वल साधारण धर्म है । उपमा वाचक पद का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा समासगा अलङ्कार है । मृगीव सीता में मृगी उपमान, सीता उपमेय इव उपमावाचक पद तथा परिभूय नीयते साधारण धर्म है । अतः पूर्णोपमा है ।

द्वितीयः—एषा खलु तत्रभवती वैदेही—

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना
विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा
तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥२॥

[अन्वयः—विचेष्टमाना भुजङ्गमाङ्गना इव, विधूयमाना पुष्पिता लता इव, सा पापेन दशानेन प्रसह्य तपोवनात् सिद्धिः इव अपनीयते ॥२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

दूसरा—ये आदरणीय सीता—

अर्थ, श्लोक २—तड़पती हुई सर्पिणी के समान और काँपती हुई पुष्पित लता के समान वह सीता, पापी रावण के द्वारा बलपूर्वक तपोवन से मानो सिद्धि हो, इस प्रकार ले जायी जा रही है ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—विचेष्टमाना समुपस्थितविपत्प्रतीकाराय विविधं चेष्टमाना भुजङ्गमाङ्गना सर्पिणी यथा निगृह्य नीयमाना सर्पिणी आत्मानं मोचयितुं विविधं चेष्टते, तथैव सीता चेष्टमाना वर्तते । विधूयमाना पवनादिवेगेन कम्पमाना पुष्पिता पुष्पादि समृद्धसमृद्धा लता वल्लरी इव सा तत्र भवती जानकी पापेन पापकर्मकारिणा दशाननेन दश आननानि मुखानि यस्य तेन रावणेन प्रसह्य हठात् बलप्रयोग कृत्वा तपोवनात् अस्मात् आश्रमात् सिद्धिः इयं तपःफल सम्पद वर्तते सैव अपनीयते अपहृत्य-नीयते अतः अस्य रक्षा कर्तव्यैवेतिभावः ॥२॥

व्याकरण—वि + √चेष्ट् + शानच् + टाप् = विचेष्टमाना । भुजङ्गमानाम् अङ्गना = भुजङ्गमाङ्गना । भुजं कुटिलं गच्छति = भुजम् + √गम् + खच् (मुम् का

आगम)=भुजङ्गम। कल्याणानि अङ्गाणानि यस्याः=अङ्ग+न+टाप्=अङ्गना। √सिध्+क्तिन्=सिद्धि।

छन्दः—वंशस्थ।

अलङ्कार—मालोपमा और उत्प्रेक्षा। एक ही उपमेय सीता के अनेक उपमान होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। सिद्धिरिव में सीता उपमेय में सिद्धि उपमान की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः।

प्रथमः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये, वचनसमकाल एव दशरथस्यानृण्यं कर्तुं 'मयिस्थिते क्व यास्यसीति' रावणमाहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः।

द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः।

प्रथमः—एष रावणः।

द्वितीयः—एष जटायुः।

उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम्।

प्रथमः—काश्यप ! काश्यप ? पश्य क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम्—

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं परिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते।
तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाट्यते ॥३॥

[अन्वयः—पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते। अचलः तुण्डाभ्यां सुनिघृष्ट तीक्ष्णं संवेष्टनं चेष्टते। आयसकण्टकैः इव वज्राग्रैः इव तीक्ष्णैः नखैः वक्षसः भीमान्तरं पाट्यते, इव वज्राग्रैं दार्यमाणविषमाद् शैलात् शिला पाट्यते ॥३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

दोनों—आप सब रक्षा करें, रक्षा करें।

पहला—(ऊपर देखकर) अरे, कहने के साथ ही मित्र दशरथ के उपकारों के ऋण से मुक्त होने के लिए "मेरे होते हुए तुम कहाँ जाओगे", इस प्रकार रावण को ललकार कर जटायु आकाश मे उड़ गया है।

दूसरा—क्रोध से आँखों की पुतलियों को घुमाता हुआ यह रावण लौट आया है।

पहला—यह रावण है।

दूसरा—यह जटायु है।

दोनों—अहो, आकाश में इनका युद्ध प्रारम्भ हो गया है।

पहला—काश्यप ! काश्यप ! गृध्रों के राजा के सामर्थ्य को देखो—

अर्थ [श्लोक ३]—यह जटायु पंखों से रावण पर आक्रमण करके अपने पराक्रम के अनुसार द्वन्द्व युद्ध कर रहा है। स्थिर रहता हुआ यह चोंचों से अच्छी प्रकार से तीक्ष्णता से उनको चुभाता हुआ रावण को घेरने की चेष्टा कर रहा है। लोहे के बने काँटों के समान और वज्र की नोक के समान तीक्ष्ण नाखूनों से रावण के वक्षस्थल को भयानक रूप से अन्दर तक विदीर्ण कर रहा है, जैसे कि वज्र की नाकों से विदीर्ण कर देने के कारण विषम पर्वत से शिलाएँ उखाड़ दी जाती हैं॥३॥

संस्कृत व्याख्या—अयं जटायुः पक्षाभ्यां परिभूय एनं रावणं प्रहृत्य वीर्यविषयं स्वस्य वीर्यस्य पराक्रमस्य विषयं स्वपराक्रमानुरूपं द्वन्द्वं युगलयुद्धं प्रतिव्यूहते प्रत्याक्रमणरूपेण युध्यते। अचलः युद्धे स्थिरः सन् तुण्डाभ्यां चण्डचञ्चूभ्यां सुनिघृष्ट तीक्ष्णं सु सष्टुप्रकारेण घृष्टं कर्तितं तीक्ष्णं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यातथा सवेष्टनं सम्यक् वेष्टनसहितं चेष्टते चेष्टां करोति। रावणस्य वपुषि चञ्चूभ्यामतितीक्ष्णरूपेण प्रहरन् तं वलयाकारेण आवर्तयितु चेष्टते इत्यर्थः। आयसकण्टकैः लोहनिर्मितैः कण्टकैरिव वज्राग्रैः कुटिशकोटिभिरिव तीक्ष्णैः निशितैः नखैः नखरैः वक्षसः रावणस्य वक्ष.स्थलस्य भीमान्तर भीमं भयानकरूपेण आन्तरम् अभ्यन्तरभागः पाटचते विदीर्यते, इव यथा वज्राग्रैः दीर्यमाणविषमात् दीर्यमाणत्वात् विपाटनव्यापारात् अतः विषमात् भीषणात् शैलात् पर्वतात् शिलाः पाषाणः पाटचते उद्ध्रियते। यथा वज्राग्रैः शैलानां शिलाः पाटचन्ते तथैव जटायोः नखैः रावणस्य वक्षसोऽन्त.भागः विपाटय बहिः नीयते॥३॥

व्याकरण—परि + √भू + क्त्वा (ल्यप्) = परिभूय। द्वौ द्वौ सह अभिव्यक्तौ = द्वन्द्व। सु + नि + घृष् + क्त = सुनिघृष्ट। √निज् + क्स्न (दीर्घ) = तीक्ष्ण। सम् + √वेष्ट् + ल्युट् (अन) = सवेष्टन। आयसैः कण्टकैः = आयसकण्टकैः। अयस् + अण् = आयस। √कण्ट् + वुन् (अक) = कण्टक। शिलानां समूहः शिला + अण् = शैल।

छन्दः—शार्दूलविक्रीडित।

अलङ्कार—मालोपमा। एक नख उपमेय के अनेक उपमान आयसकण्टक तथा वज्राग्र होने से मालोपमा अलङ्कार है।

द्वितीयः—हन्त! संक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादिश्वरः स दक्षिणासदेशे हतः।

उभौ—हा धिक्। पपितोऽत्रभवान् जटायुः।

प्रथमः—भोः कष्टम्। एष खलु तत्रभवान् जटायुः—

> कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं
> क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा।
> दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो
> नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः॥४॥

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्र भवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (निष्क्रान्तौ)

(विष्कम्भकः)

[**अन्वयः**—स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं कृत्वा शत्रुं क्रीडामयूरमिव अचिन्तयित्वा; निशाचरपतेः दीप्तं तेजः अवधूय नागेन्द्रभग्न वनवृक्षः इव अवसन्नः ।।४।।]

हिन्दी रूपान्तर—

दूसरा—खेद है, अति कुपित हुए रावण ने खड्ग से उस गृध्राज के दाहिने पर प्रहार किया है ।

दोनों—हाय, धिक्कार है । आदरणीय जटायु गिर गये हैं ।

पहला—अरे, बड़ा कष्ट है । ये आदरणीय जटायु—

अर्थ [श्लोक ४]—अपने पराक्रम के अनुसार अत्यधिक प्रयत्न करके, शत्रु रावण की, मानो वह खेलने योग्य मोर हो, इस प्रकार परवाह न करके, राक्षसराज रावण के प्रचण्ड तेज का तिरस्कार करके गजराज के द्वारा तोड़े गये जगली वृक्ष के समान नीचे गिर गया है ।।४।।

दोनों—इसको स्वर्ग प्राप्त हो ।

पहला—काश्यय ! आओ । इस घटना को आदरणीय राम से निवेदन करें ।

दूसरा—हाँ । अच्छा प्रस्ताव है । (दोनो निकल जाते हैं)

(इस प्रकार विष्कम्भक पूरा हुआ)

संस्कृत-व्याख्या—अयं जटायुः स्ववीर्यसदृशं स्वस्य आत्मनः वीर्यस्य पराक्रमस्य सदृशं योग्यं स्वपराक्रमानुरूपं परमं महान्तं प्रयत्नं प्रयासं कृत्वा विधाय, शत्रुं रिपुं रावणं क्रीडामयूरमिव क्रीडनकशिखण्डिनमिव अचिन्तयित्वा अविगणय्य उपेक्ष्य, निशाचरपतेः राक्षसराजस्य रावणस्य दीप्तम् अतिसमिद्ध तेजः प्रतापम् अवधूय स्वपराक्रमेन तिरस्कृत्य, स्वपराक्रमं प्रदर्श्य इति भावः, नागेन्द्रभग्नवनवृक्षः नागेन्द्रेण गजराजेन भग्नः त्रोटितः यः वनवृक्षः आरण्यपादपः स इव अवसन्नः अवसदं प्राप्य अधः पतितः । रावणेन आघातं प्राप्य अचेतनो भूत्वा अधो भूम्यां निपतितः ।।४।।

व्याकरण—स्वस्य वीर्यस्य सदृशम्=स्ववीर्यसदृशम् । √शद+क्रुन=शत्रु । अव+√धू+क्त्वा (ल्यप्)=अवधूय । नागानाम् इन्द्रः=नागेन्द्रः । नगे पर्वते भवः =नग+अण्=नाग । इदी परमैश्वर्ये, इन्द्+र=इन्द्र । अव+सद्+क्त=अवसन्न ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और उपमा । शत्रु उपमेय में क्रीडामयूर उपमान की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । उपमेय जटायु का उपमान वनवृक्ष के साथ सादृश्य प्रदर्शित करने से उपमा है । यहाँ इव उपमावाचक और अवसन्न साधारण धर्म हैं ।

क्रव्यादीश्वर —क्रव्यम् आमं मांसम् अत्ति = क्रव्य + अद् + विट् = क्रव्यात् = कच्चा मांस खाने वाला । कच्चा मांस खाने के कारण गिद्ध को क्रव्यात् कहा गया । क्रव्यादानाम् ईश्वरः = क्रव्यादीश्वरः । राक्षसों को भी क्रव्यात् या क्रव्याद कहा गया है ।

स्वर्ग्यः—स्वर्गाय योग्यः = स्वर्ग + यत् = स्वर्ग्यं ।

विष्कम्भक—पाँचवें और छठे अंक के मध्य की घटना की सूचना देने के लिए इस विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है । पाँचवें अङ्क के अन्त में घटना थी कि रावण ने सीता को पकड़ कर ले जाना चाहा । इसी समय उसको मुकाबला करता हुआ जटायु दिखायी दिया । अगले अंक में सुमन्त्र द्वारा सीता-हरण तथा राम के किष्किन्धा पहुँचने की सूचना भरत को दी गयी । बीच की घटना कि जटायु का वध करके रावण सीता को ले गया, की सूचना इस विष्कम्भक से दी गयी है । इस विष्कम्भक में मध्य कोटी के पात्रों का प्रयोग हुआ है; अतः यह शुद्ध विष्कम्भक है ।

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजया । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया किं क्रियताम् ?

काञ्चुकीयः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—'एष खलु रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् सुमन्त्र इति ।

प्रतिहारी—अय्य ! अवि किदत्थो तादसुमन्तो आअदो ? [आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ?]

कञ्चुकीयः—भवति! न जाने—

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥५॥

[अन्वयः—हृदयस्थित शोकाग्निशोषिताननम् आगतं सुमन्त्रम् अधुना दृष्ट्वा एव मे मनः आकुलम् आसीत् ॥५॥

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर काञ्चुकीय प्रवेश करता है)

काञ्चुकीय—अरे, यहाँ कौन है? स्वर्णनिर्मित तोरणद्वार पर कौन विद्यमान है?

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—आर्य ! मैं विजया हूँ। क्या करूँ?

काञ्चुकीय विजये ! कुमार भरत से निवेदन करो, निवेदन करो—'ये जो कि आदणीय सुमन्त्र राम का दर्शन करने के लिए जनस्थान गये थे। लौट आये हैं।

प्रतिहारी—आर्य ! तात सुमन्त्र क्या सफल होकर आये हैं।

काञ्चुकीय—आदरणीये ! मैं नहीं जानता—

अर्थ [श्लोक ५]—हृदय में स्थित शोक रूपी अग्नि से सूखे हुए मुख वाले वापिस आये सुमन्त्र को इस समय देखकर ही मेरा मन व्याकुल हो गया था ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननं हृदये अन्तःकरणे यः शोकः विषादः स एव अग्निः अनलः तेन शोषितं नीरसतां गतं प्रभाहीनमित्यर्थः आननं मुखं यस्य तथाभूतम् आगतं वनान्निवृत्य समायातं सुमन्त्रं राजमार्थिम् अधुना अस्मिन् समये दृष्ट्वा अवलोक्य एव मे मनः चित्तम् आकुलं विह्वलम् आसीत् अभवत्। वनान्निवृत्य यदैव सुमन्त्रः समायातः तदैव तस्य कान्तिहीनमप्रसन्नवर्णं मुखं दृष्ट्वा मे चित्ते व्याकुलता सञ्जाता ॥५॥

व्याकरण—हृदये स्थितेन शोकेनैव अग्निना शोषितम् आननं यस्य तम्= हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम्। आ + √गम् + क्त = आगत। आ + √कुल् + क = आकुल। अस्मिन् काले इदम् शब्द से निपातनात् = अधुना।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—रूपक। शोक उपमेय पर अग्नि उपमान का आरोप करने से रूपक अलकार है।

प्रतिहारी अय्य ! एदं सुणिअ पय्याउलं विअ में हिअअं। [आर्य एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम्।]

काञ्चुकीय—भवति ! किमिदानीं स्थिता ? शीघ्रं निवेद्यताम्।

प्रतिहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि। [आर्य ! इयं निवेदयामि।]

(निष्क्रान्ता)

काञ्चुकीयः—(विलोक्य) अये, अयमत्रभवान् भरतकुमारः सुमन्त्रागमन-

जनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जरितोत्तमाङ्ग इत एवाभिवर्तते । य एषः—

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकाल-
स्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः ।
आज्ञा वशादखिलभूपरिरक्षणस्थः
श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः ॥६॥

[अन्वयः—प्रख्यातसद्गुणगणः, प्रतिपक्षकालः, तिग्मांशुवंश तिलकः, त्रिदशेन्द्र कल्पः, आज्ञावशात् अखिलभूपरिरक्षणस्थः श्रीमान्, उदारकलभेभसमानयानः ॥६॥]

हिन्दी रूपान्तर

प्रतिहारी—आर्य ! यह सुनकर मेरा हृदय बहुत अधिक व्याकुल हो रहा है ।

काञ्चुकीय—आदरणीये ! अब खड़ी क्यों हो ? शीघ्र निवेदन करो ।

प्रतिहारी—आर्य ! यह मैं निवेदन कर रही हूँ ।

(निकल आती है)

काञ्चुकीय—(देखकर) अरे, ये आदरणीय कुमार भरत हैं । सुमन्त्र के आने से इनके हृदय में कौतूहल उत्पन्न हो गया है । इन्होंने चीर और वल्कल वस्त्र पहने है. जटाओं के समूह से इनका सिर पिंगल हो रहा है । ये इधर ही आ रहे हैं । ये हैं—

अर्थ (श्लोक ६)—इनके उत्तम गुण लोक में प्रसिद्ध हैं, शत्रुओं के लिए ये काल के समान हैं. सूर्य वंश के ये तिलकभूत हैं. देवराज इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली हैं, श्रीराम के आदेश से सारी पृथ्वी की रक्षा करने में तत्पर हैं, श्री से सम्पन्न हैं और विशालकाय गजराज के समान इनकी गति है ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—अयं कुमारो भरतः—प्रख्यातसद्गुणगणः प्रख्यातः लोक-प्रसिद्धः सद्गुणानां श्रेष्ठ शौर्योदारत्वादिगुणानां गणः समूहः यस्य तादृश्यः, प्रतिपक्ष-कालः प्रतिपक्षेषु शत्रुषु कालः यमराजसदृश्यः तेभ्यः साक्षात् मृत्युरेव, तिग्मांशुवंश-तिलकः तिग्मांशोः सूर्यस्य वंशः कुलं सूर्यवंशः तस्य तिलकः ललामभूतः, त्रिदशेन्द्रकल्पः त्रिदशानां देवानाम् इन्द्रः देवराजः तत्कल्पः समानैश्वर्यशाली, आज्ञावशात् श्रीरामस्य आदेशाद् अखिलभूपरिरक्षणस्थः अखिलायाः समस्तायाः भुवः धरायाः परिरक्षणे परिपालने तिष्ठति अवहितो भवति इति तथाभूतः, श्रीमान् लक्ष्मीवान्, उदारकल-भेभसमानयानः उदारस्य विशालकायस्य सत्कुलीनस्य कलभेभस्य गजराजस्य समान सदृशं यानं गतिः यस्य तादृशः सर्वगुणगरिमाशाली वर्तते ॥६॥

व्याकरण—प्रख्यातः सद्गुणानां गणः यस्यः सः = प्रख्यातसद्गुणगणः । प्र + √ ख्या + क्त - प्रख्यात । तिग्मांशोः वंशस्यतिलकः = तिग्मांशुवंश-तिलकः । तिग्माः तीक्ष्णाः अंशवः यस्य सः तिग्मांशुः = सूर्यः । अखिलायाः

भुवः परिक्षण तिष्ठति इति सः=अखिलभूपरिरक्षणस्यः। परि+√रक्ष्+ल्युट् (अन)=परिरक्षण। उदारस्य कलभेभस्य समानं यानं यस्य सः=उदारकलभेभसमानयानः। √गा+ल्युट् (अन)=यान।

छन्दः—वसन्ततिलका।

अलंकार—रूपक और उपमा। प्रतिपक्षकालः में उपमेय भरत पर उपमान काल का आरोप करने से रूपक है। त्रिदशेन्द्रकल्प. में भरत और त्रिदशेन्द्र का साम्य कहने से उपमा है। कलभेभसमानयानः में कलभेभ उपमान, भरत उपमेय, समान उपमावाचक और यान साधारण धर्म हैं।

सुमन्त्रागमनजनित कुतूहलहृदयः—सुमन्त्रस्य आगमनेन जनितं कुतूहलं यस्य तादृशः हृदयं सः।

चीरवल्कलवसनः—चीराणां वल्कलानां च वसनानि यस्य स।

चित्रजटापुञ्जपिञ्च रितोत्तमाङ्गः—चित्राणां जटानां पुञ्जेन पिञ्जरितम् उत्तमाङ्गं यस्य सः।

(ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च)

भरतः—विजये! एवमुपगतस्तत्रवान् सुमन्त्रः?

गत्वा तु पूर्वमयमार्यनिरीक्षणार्थं
लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
रामं प्रजानयनबुद्धिमनोऽभिरामम् ॥७॥

[**अन्वयः**—पूर्वम् तु आर्यनिरीक्षणार्थ गत्वा, लब्ध प्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते, प्रजानयनबुद्धिमनोऽभिरामं रामं दृष्ट्वा अयम् अत्रभवान् सुमन्त्रः किम् इह आगतः ॥७॥

हिन्दी रूपान्तर

(तदनन्तर भरत और प्रतिहारी प्रवेश करते हैं)

भरत—विजये! इस प्रकार क्या आदरणीय सुमन्त्र आ गये हैं?

अर्थ (श्लोक ७)—पहले तो आर्य राम के दर्शन करने के लिए वे मेरे साथ तपोवन में गये, तदनन्तर राम के प्रसाद रूप पादुकाओं को और 'तुम राज्य का पालन करो' इस प्रकार की शपथ को ग्रहण करके मैं वापिस लौट आया। उसके पश्चात् प्रजाजनों के नेत्रों, बुद्धियों और मनों को आनन्दित करने वाले राम का दर्शन करके ये आदरणीय सुमन्त्र क्या यहाँ वापिस आ गये हैं? ॥७॥

संस्कृत व्याख्या—पूर्वं तु प्रथमं तावत् पूर्वकाले मया सह आर्यनिरीक्षणार्थम् आर्यस्य ममाग्रजस्य रामस्य निरीक्षणार्थं दर्शनार्थं गत्वा तत्र चित्रकूटे तपोवनभूमि

प्रपद्य, तदनन्तरं लब्धप्रसादःशपथे लब्धः प्राप्तः प्रसादः रामप्रतिनिधिरूप पादुका-युगलप्रसादः शपथः, चतुर्दशवर्षावधिवनवासकाले त्वया राज्यपरिपालनं कर्त्तव्यं तदनन्तरं च वनवासावधिसमाप्तावहं सन्निवर्त्य राजधान्यामयोध्यायां राज्यग्रहणं करिष्यामीति प्रतिज्ञा येनतादृशे मयि भरते सन्निवृत्ते चित्रकूट तपोवनादयोध्यायां समागमे सति, तदनन्तरं च प्रजानयनबुद्धिमनोऽभिरामं प्रजानां लोकानां नयनानि चक्षूंषि बुद्धीः मतीः मनांसि चेतांसि च अभिरमयति आनन्दयति इति तादृशं लोका-ह्लादकरं रामं दृष्टवा अवलोक्य अयम एष. अत्रभवान् आदरणीयः सुमन्त्रः किमिति प्रश्ने इह अयोध्यायाम् आगतः सम्प्राप्तः ? तमेव दर्शयित्वा रामविषयकं समाचारं प्राप्य स्वमनसो दुःखं दूरीकरिष्यामीति भावः ॥७॥

व्याकरण—आर्यस्य निरीक्षण र्थम् = आर्य निरीक्षणार्थम् । √ऋ + ण्यत् = आर्य । निर् + √ईक्ष् + ल्युट् (अन) निरीक्षण । लब्धः प्रसादः शपथश्च येन तस्मिन् लब्धप्रसादशपथे । प्रजानां नयनानां बुद्धीनां मनसां च अभिरामम् = प्रजा-नयनबुद्धिमनोऽभिरामम् । मन्यते बुध्यते अनेन = √मन् + असुन् = मनस् । अभि-रमयति = अभि + √रम् + घञ् = अभिराम ।

छन्द:—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—यमक । रामम् और मनोभिरामम् में यमक अलंकार है ।

काञ्चुकीय:—(उपगम्य) जयतु कुमारः ।

भरत:—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीय:—असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरत:—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीय:—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तो)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च)

सुमन्त्र:—(सशोकम्) कष्टं भोः ! कष्टम्—

नरपतिनिधनं मयानुभूतं
नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् ।
श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो
गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥८॥

[अन्वय:—नरपतिनिधनं मया अनुभूतम् । नृपतिसुतव्यसनं मया एव अनु-भूतम् । इह च स मैथिलीप्रणाशः श्रुतः । मे आयुषा गुणे इव बहु अपराद्धम् ॥८॥]

हिन्दी रूपान्तर—

काञ्चुकीय—कुमार की जय हो।

भरत—अब आदरणीय सुमन्त्र किस स्थान पर हैं ?

काञ्चुकीय—वे काञ्चन तोरण के द्वार पर हैं।

भरत—तो उसको शीघ्र प्रवेश कराओ।

काञ्चुकीय—कुमार जैसा आदेश देते हैं।

(विजया और काञ्चुकीय दोनों निकल जाते हैं)

(तदनन्तर सुमन्त्र और प्रतिहारी प्रवेश करते हैं)

सुमन्त्र—(शोक के साथ) बड़ा कष्ट है, अरे ! बड़ा कष्ट है—

अर्थ 'श्लोक ८'—राजा दशरथ की मृत्यु को मैंने देखा था। राजकुमार राम और लक्ष्मण की आपत्ति को वनगमन को मैंने ही देखा था और यहाँ सीता के अपहरण की बात को भी सुन लिया ! मेरी इस लम्बी आयु ने मानो गुण के स्थान पर बहुत अपराध ही किये हैं ! मैं आयु के लम्बी होने के कारण ही इन दुःखों का अनुभव कर रहा हूँ ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—नरपतिनिधनं नरपतेः राज्ञः दशरथस्य निधनं मरणं मया सुमन्त्रेण एव अनुभूतं प्रत्यक्षरूपेणावलोकितम्। राज्ञो दशरथस्य मृत्युजन्य दुःखं मयैवानुभूतमित्यर्थः। नृपतिसुतव्यसनं नृपतिसुतयोः राजपुत्रयोः रामलक्ष्मणयोः व्यसनं वनगमनरूपा आपत्तिः मया सुमन्त्रेण एव अनुभूतं प्रत्यक्षीकृता। अहमेव राजपुत्रवन-गमनहेतुः संजातः स्यन्दनस्य स रथित्वात्। अधुना इह च अस्मिन्नेव समये स पूर्व-मननुमेयः मैथिलीप्रणाशः सीतायाः अपहरणं च श्रुतः आकर्णितः। एवं च मे मम सुमन्त्रस्य आयुषा दीर्घवयसा गुणे सत्यपि इव सम्भावनायां बहु अपराद्धम् अपराध एव कृतः। गुणोऽप्ययं दोष इव जात इत्यर्थः ॥८॥

व्याकरण—नरपतेः निधनम् = नरपतिनिधनम्। नि + √धा + क्यु (अन) निधन। मैथिल्याः प्रणाशः = मैथिलीप्रणाशः। प्र + नश् + घञ् = प्रणाश। अप् + राध् + क्त = अपराद्ध।

छन्दः—पुष्पिताग्रा।

अलङ्कार—विषम। दीर्घायु से लाभ प्राप्त होने के स्थान पर अनर्थों की परम्परा प्राप्त होने से विषम अलंकार है।

प्रतीहारी—(सुमन्त्रमुद्दिश्य) एदु एदु अय्यो। एसो भट्टा। उवसप्पदु अय्यो। [एत्वेत्वार्यः। एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।]

सुमन्त्रः—(उपसृत्य) जयतु कुमारः।

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः ? अपि

दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धती चारित्रम् ? अपि दृष्टं त्वया निष्कारणविहितवन-वासं सौभ्रात्रम् ?

(सुमन्त्र सचिन्तस्तिष्ठति)

प्रतिहारी—भट्टिदारओ खु अय्यं पुच्छदि । [भर्तृदारकः खल्वार्यं पृच्छति ।]

सुमन्त्रः—भवति ! किं माम् ।

भरतः—(स्वगतम्) अति महान् खल्वायासः । सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः । (प्रकाशम्) अपि मार्गात् प्रति निवृत्तस्त्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार ! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये ।

भरतः—किन्नु खलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति ?

सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥९॥

[अन्वयः— विनीतानां क्रोधः कुतः, वा कृतचेतसां लज्जा । मया तु तत् तपोवनं तैः विहीनं शून्यं दृष्टम् ॥९॥

हिन्दी रूपान्तर—

प्रतिहारी—(सुमन्त्र को लक्ष्य करके) आर्य आवें, आवें । ये स्वामी हैं । आर्य समीप आवें ।

सुमन्त्र—(समीप आकर) कुमार की जय हो ।

भरत—तात ! क्या आपने लोक में आविष्कृत होने वाले पिता के प्रति स्नेह को देखा ? क्या आपने अरुन्धती के दो भागों में विभक्त होने वाले चरित्र को देखा ? क्या आपने बिना कारण के वनवास को देने वाले भ्रातृस्नेह को देखा ?

(सुमन्त्र चिन्ता मे भरा खड़ा रहता है)

प्रतिहारी—राजकुमार आपसे ही पूछ रहे हैं ।

सुमन्त्र—आदरणीये ! क्या मुझसे ?

भरत—(मन में) इनका कष्ट निश्चय से बहुत अधिक है । दुःख के कारण इनका हृदय खो-सा गया है (प्रकट रूप में) क्या आदरणीय आप मार्ग से ही लौट आये ?

सुमन्त्र—कुमार ! आपके आदेश से मैंने राम का दर्शन करने के लिए जन-स्थान की ओर प्रस्थान किया था ! मैं बीच में से ही कैसे लौट आता ?

भरत—तो क्या क्रोध के कारण अथवा लज्जा के कारण वे अपने दर्शन नहीं दे रहे हैं ?

सुमन्त्र—कुमार !

अर्थ [श्लोक ६]—विनीत व्यक्तियों को क्रोध कहाँ होता है ? अर्थात् विनीत व्यक्ति क्रोध नहीं करते । अथवा पुण्यात्माओं को लज्जा कहाँ होती है ? अर्थात् पुण्यात्माओं को लज्जा करने का कोई कारण नहीं होता । मैंने तो वह तपोवन उन राम आदि से रहित और सूना देखा था । अर्थात् जब मैं जनस्थान पहुँचा तो राम, लक्ष्मण और सीता तपोवन में नहीं थे ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—विनीतानां विनयभावेन अवनतानां क्रोधः रोषः कुतः कस्मात् कारणात् भवितुं शक्नोति । विनीताः जनाः क्रोधं न कुर्वन्ति । वा अथवा कृतचेतसां पुण्यशालिनां जनानां लज्जात्रपा कुतः सम्भवति । न कोऽहेतुस्तादृशो वर्तते येन पुण्यशालिनो जनाः लज्जिताः भवेयुः । अतस्तेषां रामसीतालक्ष्मणानामदर्शने क्रोधः त्रपा वा न हेतुः । मया सुमन्त्रेण तु तद् आश्रमं तपोवनं रामादीनां निवासः तैः रामादिभिः विहीनं परित्यक्तम् अत एव शून्यं रिक्तमिव प्रतीयमानं दृष्टम् अवलोकितम् ॥६॥

व्याकरण—वि + नी + क्त = विनीतानाम् । किम् से पञ्चम्यास्तसिल = किम् + तसिलप् (क आदेश) = कुतः ।

छन्दः— अनुष्टुप् ।

लोकाविष्कृतपितृस्नेह—लोके आविष्कृतः पितरं प्रति स्नेहः । राम पिता के प्रति भक्ति और स्नेह के कारण ही वन गये थे, जिससे कि पिता की प्रतिज्ञा असत्य न हो ।

द्विधाभूतमरुन्धतीचरित्रम्—लोक में वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती का यश अपने पातिव्रत्य के लिए प्रसिद्ध हैं । सीता भी उनसे कम पतिव्रता नहीं है; अतः कल्पना की गयी कि मानो उनका चरित्र दो भागों में बँट कर एक भाग सीता को प्राप्त हो गया है ।

निष्कारण विहितवनवासं सौभ्रात्रम् लक्ष्मण को कोई वनवास का आदेश नहीं था । तथापि भाई के प्रति स्नेह और भक्ति के कारण उन्होंने स्वयं ही वनवास स्वीकार किया । सुभ्रातुः भावः = सुभ्रातृ + अण् = सौभ्रात्र । इन तीनों कथनों में पहला राम के लिए, दूसरा सीता के लिए और तीसरा लक्ष्मण के लिए हैं ।

भरतः—अथ क्व गता इति श्रुताः ?

सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुताः ।

भरतः—हन्त ! अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः । दुःखिताः प्रतिवसन्ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

इस श्लोक में सुग्रीव का वर्णन किया गया है।

v. imp.

भरतः—तात ! कथमिव ?

सुमन्त्रः—सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥१०॥

[अन्वय—ज्येष्ठेन भ्रात्रा बालिना राज्यात् भ्रंशतः हृतदारः सुग्रीवः शैले वसन्, तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥१०॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—आपने सुना होगा कि वे अब कहाँ चले गये हैं ?

सुमन्त्र—किष्किन्धा नाम का वानरों का निवास है। सुना है कि वहाँ गये है।

भरत—निश्चय ही वानरों को मनुष्य की विशेषताओं का ज्ञान नहीं होता वे बड़े दुःखों से पीड़ित रहते हैं।

सुमन्त्र—कुमार ! पशु-पक्षी भी उपकार को समझते हैं।

भरत—तात ! किस प्रकार ?

सुमन्त्र—

अर्थ [श्लोक १०]—बड़े भाई बाली ने जिसको राज्य से भ्रष्ट कर दिया था और जिसकी पत्नी को छीन लिया था, ऐसा सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। समान दुःख मे दुःखी राम ने उसको दुःखों से छुटकारा दिलाया। अर्थात् उसके राज्य को और पत्नी को वापिस करा दिया ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—ज्येष्ठेन भ्रात्रा अग्रजन्मना बालिना राज्याद् भ्रंशितः अपहृतराज्याधिकारः, हृतदारः हृताः स्वहस्तगता कृता दाराः कलत्रं यस्य तादृशः सुग्रीवः शैले पर्वते ऋष्यमूकाभिधाने वसन् निवसन्, तुल्यदुःखेन तुल्यं समानं दुःखं कष्टः हृतकलत्रभावात् यस्य तेन, रामोऽपि हृतराज्यत्वाद् हृतकलत्रत्वाच्च समारूपेण विषण्णः, तेन मोक्षितः कष्टेभ्यः मोक्षं प्रापितः। रामेण बालिवधं कृत्वा सुग्रीवः राज्ये प्रतिष्ठितः भार्यया च संयोगं प्रापितः ॥१०॥

व्याकरण—√भ्रंश् + णिच् + क्त = भ्रंशितः। √भ्राज् + तृन् = भ्रातृ। हृताः दाराः यस्य सः। √दृ + णिच् + घञ् = दार।

छन्दः—अनुष्टुप्

अविज्ञातपुरुषविशेषाः—न विज्ञातः पुरुषाणां विशेषः येषां ते। जिनको मनुष्य की विशेषताएँ विदित नहीं है। वे नहीं जानते कि मनुष्यों ने सभ्यता का विकास करके सुख से रहना सीख लिया है और अनेक सुविधाओं को वे उपभोग करते है।

वनौकसाम्—वनम् ओकः येषां ते। वानरों को वनौकस् कहा गया है।

तिर्यग्योनय—पशु-पक्षी की योनि वाले। तिरः अञ्चति = तिरस् + अञ्च्

+ क्वप् (तिरस् को तिर् आदेश तथा अञ्च् के न् का लोप) तिर्यञ्च् । पशु-पक्षी भी उपकार मानते हैं और कृतज्ञ होते हैं।

भरतः--तात ? कथं तुल्यदुःखेन नाम ?

सुमन्त्रः--(स्वागतक) हन्त ! सर्वमुक्तमेवमया । (प्रकाशम्) कुमार ! न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता ।

भरतः--तात ! किं गूहसे ? स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः, यदि न सत्यं ब्रूयाः ।

सुमन्त्र.---का गतिः । श्रूयताम्---

वैरं मुनिजलस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥११॥

[अन्वयः -- मुनिजनस्य अर्थे महता रक्षसा वैरं कृतम् । ततः रावणेन मायाम् उपाश्रित्य सीता हृता ॥११॥

हिन्दी रूपान्तर --

भरत--तात ! समान दुखः वाले ने, इसका क्या अभिप्राय है।

सुमन्त्र---(मन में) हाय, मैंने सभी कुछ कह दिया। (प्रकट रूप से) कुमार कोई ऐसी बात नहीं है। मेरा अभिप्राय है कि ऐश्वर्य से भ्रष्ट होना उनका समान दुःख है।

भरत--तात ! क्यों छिपाते हो ? यदि तुम सत्य न बोलो तो स्वर्ग गये हुये महाराज की तुमको शपथ है।

सुमन्त्र --और क्या चारा है ? सुनो--

अर्थ श्लोक ११।--मुनिजनों की रक्षा करने के लिए महान् राक्षस रावण से उन्होंने शत्रुता कर ली थी। तदन्तर रावण ने माया का आश्रय लेकर सीता का अपहरण कर लिया ।।११॥

संस्कृत-व्याख्या --मुनिजनस्य अर्थे ऋषिणां रक्षणाय महता महाबलशालिना रक्षसा राक्षसराजेन रावणेन सह तेन रामेण वैरं शत्रुत्वं कृतं विहितम् । ततः तदनन्तरं रावणेन मायां कपटम् उपाश्रित्य अवलम्ब्य सीता जानकी तव भ्रातृवधूः सूर्यवंशकुलवधूः हृता अपहृत्य स्वनगरीं नीता ॥११॥

व्याकरण---वीरस्य भावः कर्म वा =वीर + अण् = वैर । मीयते अनया = मा + य + टाप् = माया । रावयति भीषयति सर्वान् रु + णिच् + ल्यु (अन) = रावण ।

छन्दः--अनुष्टुप् ।

सर्वमुक्तमेव---सीता हरण का समाचार देकर भरत को सुमन्त्र दुःखी नहीं

इस श्लोक में भरत कहते हैं कि राम जी ने बड़े कष्ट उठाये हैं।

करना चाहते थे, परन्तु उनके मुख से तुल्यदुःखेन पद निकल गया। इससे भरत को लगा कि राम का राज्य तो छिन ही गया है, सीता का हरण भी न हो गया हो। तभी तुल्यदुःखता होगी।

कागति:—भरत ने जब स्वर्गीय महाराज दशरथ के चरणों की सौगन्ध दिला दी तो सुमन्त्र को लाचारी हो गयी और उन्हें पूरा समाचार सुनाना पड़ा।

भरतः—कथं हृतेति ? (मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः— समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

भरतः—(पुनः समाश्वस्य) भोः कष्टम —

(12) पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो

दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।

भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो

जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥१२॥

(अन्वयः— पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तः, वनप्रदेशे महद् दुःखं समनुभूय, पुनः भार्यावियोगम् उपलभ्य मम आर्यः खे जीमूतचन्द्र इव प्रभया वियुक्तः ॥१२॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—क्या अपहरण कर लिया ? (मूर्च्छित हो जाता है)।

सुमन्त्र—आश्वासन रखो, आश्वासन रखो।

भरत—(पुनः होश मे आकर) अरे ! बहुत कष्ट है—

अर्थ [श्लोक १२]—पिता और बन्धुओं से बिछुड़ हुए तथा वन प्रदेश में महान् दुःखो का अनुभव करके, अब पत्नी से वियुक्त होकर मेरे आर्य बड़े भाई राम आकाश मे मेघो से आच्छन्न चन्द्रमा के समान कान्ति से रहित हो गये हैं ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—पित्रा जनकेन बान्धवजनेन बन्धुभिश्च विप्रयुक्तः वियोगं प्राप्तः दूरीकृतः इत्यर्थः, वनप्रदेशे अरण्यप्रान्ते महत् अत्यधिकं दुस्सहं दुःखं कष्टं समनुभूय सम्यक्तया अनुभवं कृत्वा, पुनः तदनन्तरमधुना भार्यावियोगं भार्यायाः पत्न्याः वियोगं विरहं सीताहरणेन भार्यावियोगः सम्प्राप्तः उपलभ्य अधिगम्य मम आर्यः श्रेष्ठः भ्राता रामः खे आकाशे जीमूतचन्द्रः जीमूतैः मेघैः आच्छन्नः चन्द्रः शशी इव प्रभया स्वकान्त्या वियुक्तः विरहितः सञ्जातः। यथा मेघाच्छन्नो चन्द्रः प्रभाहीनो सञ्जायते, तथैव पत्न्याः वियुक्तः रामः प्रभाहीनो सञ्जातः ॥१२॥

व्याकरण—बध्नाति स्नेहे = बन्ध् + उ = बन्धु। बन्धोः भावः, बन्धूनां समूहो

वा बन्धु + अण्—बान्धवा विभर्तुं योग्या = भृ + ण्यत् + टाप् = भार्या । प्रकर्षेण भाति = प्र + भा + क्विप् + प्रभा ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—उपमा । यहाँ आर्य राम उपमेय, जीमूतचन्द्र उपमान, इव उपमा-वाचक पद और प्रभया विमुक्तः, साधारण धर्म हैं । यह पूर्णोपमा है ।

भोः ! इदानीं किं करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् । अनुगच्छतु मा तातः ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

(उभौ परिक्रामतः)

सुमन्त्रः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । देवीनां चतुश्शाल-मिदम् ।

भरतः—अत्रैव मे कार्यं । भोः ! कः इह प्रतिहारे ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टिदारओ । विजआखु अह । [जयतु भर्तृदारकः । विजया खल्वहम् ।]

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्र भवत्यै ।

प्रतिहारी—कदमाए भट्टिणीए णिवेदेमि ? [कतमस्यै भाट्टन्यं निवेद-यामि ?]

भरतः—या मां राजानमिच्छति ।

प्रतिहारी—(आत्मगतम्) हं कि णु खु भवे ? (प्रकाशम्) भट्टा ! तह) हं । [कन्नु खल भवेत ? भर्तः ! तथा ।]

(निष्क्रान्ता)

हिन्दी रूपान्तर—

अरे, अबक्या करूँगा ? अच्छा, जान लिया है । तात ! आप मेरे पीछे आवें ।

सुमन्त्र—कुमार जो आदेश देते हैं ।

(दोनों घूमते हैं)

सुमन्त्र—कुमार ! निश्चय ही इधर नहीं, निश्चय ही इधर नहीं जाना चाहिये । यह तो रानियों की चौसालां (अन्तःपुर) है ।

भरत—यहीं से मुझको कार्य है । अरे ! यहाँ द्वार पर कौन है ?

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—राजकुमार की जय हो । मैं विजया हूँ ।

भरत—विजये ! मेरे आने की बात आदरणीया रानी जी से निवेदन
कर दो।

प्रतिहारी—किन रानी जी से निवेदन करूँ ?

भरत—जो मुझको राजा बनाना चाहती है।

प्रतिहारी—(मन में) हाँ, कौन-सी मुसीबत की बात हो सकती है ! (प्रकट
रूप में) स्वामिन् ! ऐसा ही होगा।

(निकल जाती है)

टिप्पणी—

देवीनां चतुश्शालम्—चतुश्शाल (चौसाला) एक विशेष प्रकार की गृहरचना
है। इसमें बीच में आँगन होता है तथा उसके चारों ओर कमर बने होते हैं। भार-
तीय गृहनिर्माण पद्धति में यह विशेष रचना है। समृद्ध घरों में एक से अधिक भी
चतुश्शाल होते थे। बाहर के चतुश्शाल का उपयोग पुरुषो के लिए तथा अन्दर के
चतुश्शाल का उपयोग स्त्रियों क लिऐ होता था। इसको अन्तःपुर भी कहते थे।
सामान्यतः इसमें पुरुषों के जाने का निषेध था। इसलिए भरत से सुमन्त्र कहते हैं कि
इधर न जाइये।

या मां राजानमिच्छति—भरत ने व्यंग्य के साथ यह कथन किया है। उसका
अभिप्राय है कि मेरे लिए राज्य की कामना करके कैकयी न महान् अनर्थ किया है।
उस कैकेयी को ही मैं देखना चाहता हूँ। प्रतिहारी भी इस बात को समझ जाती है
तथा कल्पना करता है कि कोई मुसीबत की बात है।

(ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च)

कैकेयी—विजए ! मं पेक्खिदुं भरदो आअदो ? [विजये ! मां प्रेक्षितुं
भरत आगतः ?]

प्रतिहारी—भट्टिणि ! तह ! भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो तादसुमन्तो
आअदो। तेन सह भट्टिदारओ भरदो भट्टिणि पेक्खिदुं इच्छति किल। [भट्टिनि।
तथा। भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात् तात सुमन्त्र आगतः। तेन सह भर्तृ-
दारको भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल।]

कैकेयी—(स्वगतम्) केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सदि भरदो ? [केन
खलूद्घातेन मामुपालप्स्यसे भरतः ?]

प्रतिहारी—भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ ? [भट्टिनि ! किं प्रवि-
शतु भर्तृदारकः।]

कैकेयी—गच्छ ! पवेसेहि णं। [गच्छ। प्रवेशयैनम्।]

प्रतिहारी—भट्टिणि ! तह । (परिक्रम्योपसृत्य) जेदु भट्टिदारओ । पविसदु किल । [भट्टिनि ! तथा । जयतु भर्तृदारकः । प्रविशतु किल ।]

भरत—किं निवेदितम् !

प्रतिहारी—आम् ।

भरत—तेन हि प्रविशावः । (प्रविशतः)

कैकेयी—जाद ! विजआ मन्तेदि रामस्य सआसादो सुमन्तो आअदे त्ति । [जात ! विजया मन्त्रयते—रामस्य सकाशात् सुमन्त्र आगत इति ।]

भरत—अतः परं प्रियं निवेदयाम्यत्रभवत्यै ।

कैकेयी—जाद ! अपि कोसलल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा ? [जात ! अपि कौसल्या सुमित्रा च शब्दापयितव्ये ?]

भरत—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम् ।

कैकेयी—(आत्मगतम्) हं, किं णु खु भवे ! (प्रकाशम्) भणाहि जादे ! [हं किन्नु खलु भवेत् ? भण जात !]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर कैकेयी और प्रतिहारी प्रवेश करते हैं)

कैकेयी—मुझको देखने के लिए क्या भरत आया है ?

प्रतिहारी—स्वामिनी ! ऐसा ही है । राजकुमार राम के पास से तात सुमन्त्र आये हैं । उनके साथ राजकुमार भरत स्वामिनी को देखना चाहते हैं ।

कैकेयी—(अपने मन में) न जाने क्या बात उठाकर भरत मुझे को उलाहना देगा ?

प्रतिहारी—स्वामिनी ! राजकुमार क्या प्रवेश करें ?

कैकेयी—जाओ और इसको प्रवेश कराओ ।

प्रतिहारी—स्वामिनी ! बहुत अच्छा । (घूमकर समीप आकर) राजकुमार की जय हो । आप प्रवेश करें ।

भरत—विजये ! क्या निवेदन कर दिया ?

प्रतिहारी—हाँ ।

भरत—तो प्रवेश करते हैं । (भरत और सुमन्त्र दोनों प्रवेश करते हैं)

कैकेयी—पुत्र ! विजया कहती है कि राम के पास से सुमन्त्र आये हैं ?

भरत—इससे भी अधिक प्रिय बात आदरणीया आपसे निवेदन करता हूँ ।

कैकेयी—पुत्र ! क्या कौशल्या और सुमित्रा को भी बुला लिया जावे ?

भरत—उनको यह बात नहीं सुननी है ।

कैकेयी—(अपने मन मे) यह क्या बात हो सकती है ? (प्रकट रूप में) पुत्र ! कहो ।

इस श्लोक में भरत अपनी माता से कहते हैं कि तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी हो रही हैं।

टिप्पणी—

केन खलु उद्घातेन मामुपालप्स्यते भरत—भरत को राम के वनवास के कारण कैकेयी के प्रति बहुत अधिक क्रोध है। वे कैकेयी से या तो बोलते ही नहीं और कभी बोलते भी हैं तो व्यङ्ग्य प्रहार के साथ उलाहना देते हुए बोलते हैं। अब भी भरत के आने पर कैकेयी को आशंका है कि भरत कोई कटु बात कह कर उलाहना देंगे। उत् + हन् + घञ् = उद्घात। प्रहार, कटु बात का आघात आदि अर्थ हैं।

न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम्—सीता के अपहरण का वृत्तान्त सुना कर भरत कैकेयी को खूब खरी-खोटी सुनाना चाहते हैं; अतः वे नहीं चाहते कि इस बात को कौसल्या और सुमित्रा भी सुनें।

भरत—श्रूयताम्—

(13) **यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः।**
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥१३॥

[अन्वयः—यः त्वन्नियोगात् स्वराज्यं परित्यज्य वनं गतः, तस्य भार्या सीता हृता। ते मनोरथः पर्याप्तः ॥१३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—सुनिये—

अर्थ [श्लोक १३]—जो राम आपके आदेश से अपने राज्य को छोड़कर वन को चले गये थे, उनकी पत्नी सीता का अपहरण कर लिया गया। आपकी अभिलाषा खूब पूरी हो गयी है ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—यः रामः पितृमातृभक्तः निदेशकारी च वर्तते त्वन्नियोगात् तव आदेशाद् स स्वराज्यं स्वम् आत्मीयं राज्यं परित्यज्य हित्वा वनम् अरण्यं गतः प्राप्तः वल्कलवसनानि परिधाय पत्न्या सीतया भ्रात्रा लक्ष्मणेन च सह तपोवनेषु सम्प्राप्तः, तस्य त्वन्निदेशकारिणो रामस्य भार्या पत्नी सीता जानकी हृता राक्षसेन रावणेन अपहृत्य नीता। ते तव मनोरथः अभिलाषः पर्याप्तः पूरितः। रामवनवासस्य त्वमेव हेतुः, तदनन्तरं च तत्र सीतापहरणस्यापि त्वमेव हेतुरित्यर्थः ॥१३॥

व्याकरण—राज्ञो भावः कर्म वा = राजन् + यक् = राज्य। नि + √युज् + घञ् = नियोग। परि + √आप् + क्त = पर्याप्त। मनसः रथः = मनोरथः। √हृ + क्त = टाप् = हृता।

छन्दः—अनुष्टुप्।

कैकेयी--हं ?

भरतः हन्त भोः सत्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम् ।
वधूप्रधर्षणं प्राप्त प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ।।१४।।

[अन्वयः—भोः हन्त ! सत्वयुक्तानां मनस्विनाम् इक्ष्वाकूणाम् अत्रभवतीं वधू प्राप्य वधूप्रधर्षणं प्राप्तम् ।।१३।।]

कैकेयी—हैं ?

भरत—

अर्थ [श्लोक १४]—हे लोगो ! यह बड़े खेद तथा धिक्कार के योग्य बात है कि पराक्रमशाली तथा बहुत अधिक स्वाभिमानी इक्ष्वाकुवंशियों ने आदरणीया आपको वधू के रूप में प्राप्त करके वधू के अपहरण जैसे अपमान को भी पाया है । आप इस इक्ष्वाकुवंश में वधू के रूप में आयीं आपके कारण इस कुल को वधू का अपहरण होकर उनको अपमानित होना पड़ा ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या—भोः हे जनाः ! हन्त इति खेदे । अत्यधिक कष्टकरः धिक्कारयोग्यश्चायं विषयः यत्-सत्वयुक्तानां पराक्रमशालिनां मनस्विनां स्वाभिमानवतां च इक्ष्वाकूणाम् इक्ष्वाकुवशीयानाम् अत्रभवतीम् आदरणीयां त्वां विपरीतलक्षणया कुत्सिताचरणशालिनीं त्वां कैकेयी वधूं प्राप्य वधूरूपेण उपलभ्य वधूप्रधर्षणं वधूस्नुषा तस्याः प्रधर्षणम् अपहरणरूपमयमान .प्राप्त समधिगतम् । पराक्रमशालिभिः मनस्विभिश्च इक्ष्वाकुभिः पूर्वं कदाचिदपि ईदृशो मानभङ्गावसरो न प्राप्तः, कस्यचिदपि साहस ईदृशी न बभूव, य इक्ष्वाकुकुलवधूषु दृष्टिनिक्षेपमपि कर्तुं शक्नुयात्, परन्तु त्वया राज्यलोभेन ईदृशोऽप्यवसरः प्रदत्तः; अतः अत्यधिकधिक्कारयोग्यात्वम् ।।१४।।

व्याकरण—सत्त्वेन पराक्रमेण युक्तानाम् = सत्त्वयुक्तानाम् । सतो भावः = सत् + त्व = सत्त्व । √युज् + क्त = युक्त । प्रशस्तं मनः अस्य अस्ति = मनस् + विनि = मनस्विन् । वध्वाः प्रधर्षणम् । प्र + धृष् + ल्युट् (अन) = प्रधर्षण ।

छन्द— अनुष्टुप् ।

अलंकार—विषम । सम्मान के योग्य इक्ष्वाकुवंशियों को असम्मान के प्राप्त होने से विषम अलंकार है ।

..

कैकेयी—(आत्मगतम्) भोदु । दाणिं कालो कहेउं । (प्रकाशत्) जाद ! तुवं ण जाणासि महाराअस्स सावं ? [भवतु । इदानीं कालः कथयितुम् । जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम् ?]

भरतः—किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त ! आअक्ख वित्थरेण । [सुमन्त्र ! आचक्ष्वविस्तरेण ।]

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित्सरसि कलशं पूरयमाणो वनराजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितयो हिंसितः ।

भरतः—हिंसित इति । शान्त पापम् । ततस्ततः ?

सुमन्त्रः—ततस्तमेवंगतं दृष्ट्वा—

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा ।
यथाहं भोः स्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥

इति ।

[अन्वयः—रुदितस्य अन्ते सत्यभाषिणा तेन मुनिना उक्तम्—भोः ! यथा अहम् एवं त्वम् अपि पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥

हिन्दी रूपान्तर—

कैकेयी—(अपने मन में) अच्छा । बात कहने का यह समय है (प्रकट रूप से) पुत्र ! क्या तुम महाराज के शाप की बात को नहीं जानते ?

भरत—क्या महाराज को शाप दिया गया था ?

कैकेयी—सुमन्त्र ! विस्तार से सारी बात कहो ।

सुमन्त्र—आप जैसा आदेश देती हैं । कुमार ! सुनो—पहले समय में कभी शिकार लिए महाराज गये थे । वहाँ किसी जलाशय में एक अन्धे महर्षि का नेत्ररूप मुनिपुत्र घड़े में जल भर रहा था, उस जल के भरने की गड़गड़ाहट का शब्द जंगली हाथी की चिंघाड़ के समान था । उस शब्द से हाथी की भ्रान्ति से महाराज ने शब्दभेदी बाण के द्वारा उस मुनिपुत्र को मार डाला ।

भरत—मार डाला ? पाप शान्त हो, शान्त हो । उसके बाद ?

सुमन्त्र—तदन्तर उसको इस अवस्था में देखकर—

अर्थ [श्लोक १५]—खूब रो लेने के बाद सत्य बोलने वाले उस मुनि ने कहा है—हे राजन् ! जैसे कि मैं पुत्र के शोक से मर रहा हूँ, उसी प्रकार तुम्हारी भी पुत्र के शोक से मृत्यु होगी ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—रुदितस्य अन्ते पर्याप्तरूपेण रोदनं कृत्वा तदनन्तरं सत्यभाषिणा सत्यम् अवितथं भाषितुं कथयितुं शीलं यस्य तेन, यस्य कथनमेव सत्यं भवतीत्यर्थः, तेन मुनिना महर्षिणा विपन्नचक्षुषा उक्तं कथितम्—भोः हे राजन् ! यथा येन प्रकारेणाहं पुत्रशोकात् मरिष्यामि, त्वम् अपि एवम् अनेनैव प्रकारेण पुत्रशोकाद् पुत्रस्य तनयस्य शोकाद् विरहजन्यदुःखाद् विपत्स्यसे मृत्युं प्राप्स्यसि ॥१५॥

व्याकरण—सत्यं भाषितुं शीलं यस्य = सत्य + √भाष् + इनि = सत्यभाषिन्, पुत्रस्य शोकात् = पुत्रशोकात् । √शुच् + घञ् = शोक ।

छन्द:—अनुष्टुप् ।

इदानीं कालः कथयितुम्—भास ने यहाँ कैकेयी को निर्दोष दिखाने के लिए कल्पना की है कि राजा की रक्षा के लिए ही मन्त्रियों के परामर्श से उसने राम को वन भेजने का कार्य किया था। अब वह रहस्य भरत के सामने कैकेयी खोलना चाहती है, जिससे कि भरत का उसके प्रति क्रोध समाप्त हो जावे !

सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण—कैकेयी उस बात को स्वयं नहीं कहना चाहती, वह सुमन्त्र के द्वारा ही कहलाती है, जिससे कि भरत को विश्वास हो सके ।

पुरा मृगयां गतेन—रामायण में श्रवणकुमार की कथा है। अन्धे माता-पिता को वह तीर्थयात्रा करा रहा था। रात में सरयू के तट पर वह जल भरने गया। इसी समय दशरथ वहाँ शिकार खेलने आ निकले। दूसरे घड़े में जल भरने के शब्द उन्होंने राजा का शब्द समझकर शब्दवेधी बाण चलाया। उससे श्रवणकुमार की मृत्यु हो गयी। दुःखी होकर उन अन्धे माता-पिता ने दशरथ को शाप दिया कि उसकी भी इसी प्रकार पुत्र के विरह के दुःख से मृत्यु होगी ।

भरतः—नान्विदं कष्टं नाम ।

कैकेयी—जाद ! एदण्णिमित्तं अवराहे मां णिक्खिविअ पुत्तओ रामो वणं पेसिदो, ण हु रज्जलोहेण । अपरिहरणीओ महरिसिसाओ पुत्तविप्पवासं विणा ण होदि, [जात ! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन । अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति ।]

भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

कैकेयी—जाद ! मादुलउले वत्तमाणस्स पकिदिहुदो दे विप्पवासो । [जात ! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः ।]

भरतः अथ चतुर्दशवर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि ?

कैकेयी—जाद ! चउद्दस दिवसा त्ति वत्तुकामाए पय्याउलहिअआए चउद्दस वरिसाणि त्ति उत्तं । [जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामयपर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम् ।]

भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम् । अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य ?

सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेव प्रभृतीनामनुमतं विदितं च

भरतः—हन्त ! त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते । दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती

अम्ब ! यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया । दूषितात्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम् । अम्ब ! अभिवादये । (चरणयोः पतति)

कैकेयी—जाद ! का णाम माता पुत्तअस्स अवराहं ण मरिसेदि उट्ठेहि उट्ठेहि । को एत्थ दोसो ? [जात ! का नाम माता पुत्रकस्यापराधनं न मर्षयति ? कोऽत्र दोषः ?]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—निश्चय से यह बहुत अधिक कष्ट की बात है ।

कैकेयी—पुत्र ! इसी कारण मैंने आपको अपराधी बनाकर प्रिय पुत्र राम को वन भेजा था, किसी राज्य के लालच से नहीं भेजा था । महर्षि का शाप अवश्यंभावी था और पुत्र को परदेश भेजे बिना उसका परिहार नहीं हो सकता था ।

भरत—तो हम तीनों पुत्रों, मेरा और राम का प्रवास बराबर ही होता । मुझको वन किस कारण नहीं भेजा ?

कैकेयी—पुत्र ! तुम मामा के घर रह रहे थे; अतः महाराज को तुम्हारे प्रवास का अभ्यास हो गया था ।

भरत—तो फिर चौदह वर्ष की अवधि किसलिए निर्धारित की थी ।

कैकेयी—पुत्र ! मैं चौदह दिन की अवधि कहना चाहती थी, परन्तु हृदय के व्याकुल हो जाने के कारण चौदह वर्ष, इस प्रकार कह दिया ।

भरत—यही स्त्रियों की चतुराई है । इस पर अच्छी प्रकार विचार करना चाहिये और यह बात क्या गुरुजनों को विदित है ?

सुमन्त्र—कुमार ! वशिष्ठ, वामदेव आदि गुरुजनों ने इसकी अनुमति दी थी और यह बात उनको विदित है ।

भरत—अहोभाग्य है । ये तो निश्चय से तीनों लोकों के साक्षी हैं । भाग्य से आप निरपराध हैं माता ! भाई के प्रति स्नेह के कारण मुझको क्रोध उत्पन्न हो गया था और मैंने आदरणीया आप पर दोष लगाया था, उसको आप क्षमा कर दीजिये । हे मात ! मैं आपका अभिवादन करता हूँ । (पैरों में गिरता है)

कैकेयी—पुत्र ? कौन-सी ऐसी माता है, जो प्रिय पुत्र के अपराध को क्षमा नहीं कर देगी ? उठो, उठो । इसमें कौन-सा दोष है ?

टिप्पणी-

पुत्रको रामो वनं प्रेषितः न खलु राज्यलोभेन—यहाँ कैकेयी अपनी सफाई देने तथा अपने को निरपराध सिद्ध करने के लिए बता रही है कि मैंने राज्य का लोभ नहीं किया था । राम भी मुझको पुत्र की तरह प्रिय हैं । न मेरे प्रिय पुत्र ही हैं । महर्षि के शाप का परिहार करने के लिए ही मैंने उनको वन भेजा था । पति की ही हितकामना के कारण ही मैंने अपने को अपराधी बनाया ।

प्रकृतिभूतस्ते विप्रवासः—भरत को फिर भी आशंका रही और उन्होंने कहा कि मैं भी पुत्र था और राम भी पुत्र थे। मुझको ही क्यों नहीं वन भेज दिया। कैकेयी कहती है कि तुम बहुत समय से मामा के घर रह रहे थे; अतः महाराज को तुम्हारे वियोग का अभ्यास हो गया था; अतः तुम्हारे वन भेजने से शाप का परिहार नहीं हो सकता था। प्रकृतिभूतः=स्वभावतामापन्नः। अप्रकृतिः प्रकृति भूतः= प्रकृति + च्वि + भूत = प्रकृतीभूत। वि + प्र + वस् + घञ् = विप्रवास।

पर्याकुलहृदयया—भरत को फिर भी शंका बनी रही कि कैकेयी का हृदय दूषित था। उसने चौदह वर्ष की लम्बी अवधि क्यों नियत की। कैकेयी बताती है कि वह चौदह दिन की अवधि कहना चाहती थी, परन्तु उस समय उसका हृदय बहुत व्याकुल था और चौदह दिन के स्थान पर मुख से चौदह वर्ष निकल गये। पर्याकुलं हृदयं यस्याः तया=पर्याकुलहृदयया। परितः आकुलम्=पर्याकुलम्। √हृ + कयन् (दुक् का आगम)=हृदय।

अस्ति पाण्डित्यम्—भरत को अभी भी शंका है। वह जानता है कि स्त्रियाँ बातें बनाने में बहुत चतुर होती हैं; अतः वह कैकेयी के कथन पर और भी विचार करना चाहता है।

त्रैलोक्यसाक्षिणः—त्रयाणां लोकानां समाहारः=त्रैलोक्यम्। सह अक्षि यस्य =सह + अक्षि + इनि = साक्षिन्। वसिष्ठ, वामदेव आदि पर विश्वास करना ही चाहिये। अत्र भरत को माता की बात पर विश्वास होता है। वह ग्लानि से भर जाता है कि उसने माता को व्यर्थ ही दोष लगाया। वह क्षमा माँगता है।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आपृच्छाम्यत्रभवताम्। अद्यैवाहमार्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि। अयमिदानीम्—

> **वेलामिमां मत्तगजान्धकारां**
> **करोमि सैन्योघनिवेशनद्धाम्।**
> **बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं**
> **ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥१६॥**

[**अन्वयः**—इमां वेलां मत्तगजान्धकारां सैन्योघनिवेशनद्धां करोमि। तरद्भिः बलैः च रावणेन सह समुद्रं तुल्यं ग्लानिं नयामि ॥१६॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—मैं अनुगृहीत हो गया हूँ। आदरणीया आपसे मैं पूछ रहा हूँ। आज ही मैं आर्य राम की सहायता के लिए सारे राजाओं को सन्नद्ध करता हूँ। अब यह मैं—

अर्थ [श्लोक १६]- इस समुद्रतट को मैं अपने मतवाले हाथियों के द्वारा

अन्धकारयुक्त करता हूँ और सैन्यसमूह का शिविर लगाकर इससे सन्नद्ध कर रहा हूँ। समुद्र को पार करती हुई सेनाओं के द्वारा रावण के साथ ही समुद्र को भी समान रूप से पराजित किये देता हूँ ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या— इमाम् एनां वेलां समुद्रतटं, यस्मात् स्थानात् लङ्का रावण-राजधानी आक्रमितुं शक्यते तां समुद्रतटवर्तिनीं भूमिम् अहं मत्तगजान्धकारां मत्तैः मदजलस्रवणदक्षैः गजैः करिभिः अन्धकाराम् अन्धकारयुक्तां श्यामलवर्णां करोमि। मदीयैः कृष्णवर्णैः मदजलस्राविभिः गजैः समुद्रतटे तमसो व्याप्तिरिव भविष्यति। पुनश्च सैन्यौघनिवेशनद्धां सैन्यानां चमूनाम् ओघस्य समूहस्य निवेशेन शिविरस्थापनेन नद्धां व्याप्तां करोमि। समुद्रतटे सैन्यस्य शिविरं मया स्थाप्यते तदनन्तरं तरद्भिः सागरं प्लवमानैः बलैः सैन्यैः रावणेन दशाननेन सह समुद्रं पयोनिधिं तुल्यं समकालमेव ग्लानिं पराजयजनितहर्षक्षयतां नयामि प्रापयामि। समुद्रसन्तरणसमकालमेव रावणं पराजित्य तं शोकभाजनतां नयामि ॥१६॥

व्याकरण—मत्तैः गजैः अन्धकाराम् = मत्तगजान्धकाराम्। अन्धं करोति = अन्ध + √कृ + अण् = अन्धकार। सैन्यानाम् ओघस्य निवेशेन नद्धाम्। √नह + क्त + टाप् = नद्धा। ग्लै + क्तिन् = ग्लानि।

छन्द — उपजाति।

अलंकार— सहोक्ति। रावणेन सह समुद्रम् में सहोक्ति अलंकार है।

अये शब्द इव। तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी— जेदु कुमारो। इमं वुत्तन्तं सुणिअ जेट्टभट्टिणी मोहं गदा। [जयतु कुमारः। इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा ज्येष्ठभट्टिनी मोहं गता।]

कैकेयी— हम्।

भरतः— कथं मोहमुपगताम्बा ?

कैकेयी— एहि जाद ! अय्यां अस्सासइस्सामो। [एहि जात ! आर्यामाश्वासयिष्यावः।]

भरतः— यदाज्ञापयत्यम्बा।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

हिन्दी रूपान्तर—

अरे, शब्द सा हो रहा है। शीघ्र ही शब्द का कारण पता करो।

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—कुमार की जय हो। इस वृत्तान्त को सुनकर बड़ी स्वामिनी कौशल्या मूर्च्छित हो गयी हैं।

कैकेयी—हैं ?

भरत—क्या कहा, माता मूर्च्छित हो गयी हैं ?

कैकेयी—पुत्र ! आओ। आर्या को आश्वासित करें।

भरत—माता का जैसा आदेश है।

(सब निकल जाते हैं)

टिप्पणी—

आर्यस्य साहाय्यार्थम्—कैकेयी का स्पष्टीकरण होने के बाद भरत तुरन्त ही राम की सहायता के लिए जाना चाहते हैं और इसके लिए माता कैकेयी से अनुमति मांगते हैं।

ज्येष्ठभट्टिनी—ज्येष्ठा चासौ भट्टिनी। बड़ी रानी कौशल्या।

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

॥ छठा अंक पूरा हुआ ॥

इति भासविरचितप्रतिमानाटके डा० कृष्णकुमारकृत व्याख्या:

षष्ठोऽङ्कः समाप्तः

—:०:—

सप्तमोऽङ्कः

(तत प्रविशति तापसः)

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(प्रविश्य)

नन्दिलकः—अय्य ! अअं ह्मि । [आर्य ! अयमस्मि ।]

तापसः—नन्दिलक ! कुलपतिर्विज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृतं गुणगणविभूषण विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यं, तत् सर्वं सज्जीक्रियतामिति ।

नन्दिलकः—अय्य ! सव्वं सज्जीकिदं । किन्तु, [आर्य ! सर्वं सज्जीकृतं किन्तु,]

तापसः—किमतत् ?

नन्दिलकः—एत्थ विभीषणकेरआ रक्खसा । तेसं भक्खणणिमित्तं कुलवदी पमाणं [अत्र विभीषणसम्बन्धिना राक्षसाः । तेषां भक्षणनिमित्तं कुलपतिः प्रमाणम् ।]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर तपस्वी प्रवेश करता है)

तपस्वी—नन्दिलक ! हे नन्दिलक !

(प्रवेश करके)

नन्दिलक—आर्य ! मैं यह हूँ ।

तपस्वी—नन्दिलक ! कुलपति आदेश देते हैं—अपनी पत्नी का अपहरण करने वाले और तीनों लोकों को भयभीत करने वाले रावण का विनाश करके; राक्षसों के चरित्र के प्रतिकूल शुद्ध आचरण वाले और गुणों के समूह से अलंकृत विभीषण का लङ्का में राज्याभिषेक करके; देवताओं, देवर्षियों तथा सिद्धों के समक्ष निमल चरित्र को प्रतिपादित करने वाली आदरणीया सीता को लेकर प्रमुख रीछों, राक्षसो और वानरों से घिरे हुए; शरत्कालीन निर्मल आकाश के चन्द्रमा के समान

सबको आनन्दित करने वाले ये आदरणीय राम यहाँ आ रहे हैं। तो आज इस आश्रम में, हमारे तपोवन के ऐश्वर्य के योग्य अर्थात् वन में सुलभ जो भी सामग्रियाँ अभीष्ट हो सकती हैं, उन सबको तैयार कर लिया जावे।

नन्दिलक—आर्य ! सब कुछ तैयार कर लिया है, किन्तु,

तपस्वी—किन्तु, यह क्या बात है ?

नन्दिलक—यहाँ विभीषण से सम्बन्धित राक्षस भी आये हैं। उनके भोजन के लिए क्या सामग्री हो, इसमें कुलपति ही प्रमाण हैं।

टिप्पणी—

स्वदारापहारिणम्—स्वकीयान् दारान् अपहर्तुं शीलं यस्य तम् = स्व + दार + अप + हृ + णिनि = स्वदारापहारिन्।

त्रैलोक्यविद्राविणम्—त्रैलोक्यं विद्रावयितुं शीलं यस्य तम् = त्रैलोक्य + वि + द्रु + णिच् + णिनि = त्रैलोक्यविद्राविन्।

देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्राम्—दैवैः, देवर्षिभिः सिद्धैश्च प्रतिपादितं विमलं चारित्रं यस्याः तादृशीम्। सीता के चरित्र पर राम ने सन्देह किया था। देवताओं ने उसके चरित्र की निर्मलता प्रतिपादित की थी।

शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामः—शरदि विमले गगने चन्द्र इव अभिरामः। अभिरमयति = अभि + रम् + घञ् = अभिराम।

अस्मद्विभवेन—आश्रम में वन्य फल-मूल = जल ही उपलब्ध होते हैं। वही यहाँ का ऐश्वर्य है। उससे भी राम के आतिथ्य का प्रबन्ध किया जावे।

विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः—राक्षस नरमांस का भक्षण करते हैं; अतः उनको भोजन क्या दिया जावे, यह नन्दिलक को आशंका थी।

तापसः—किमर्थम् ?

नन्दिलकः—ते खु खज्जन्ति। [ते खलु खादन्ति]

तापसः—अलमलं सम्भ्रमेण। विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः।

नन्दिलकः—णमो रक्खसज्जणाअ। [नमो राक्षससज्जनाय]

(निष्क्रान्तः)

तापसः—(विलोक्य) अये अत्र भवान् राघवः ? य एषः—

जय नरवर ! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि-
स्तवभवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ॥१॥

जयतु भवान् जयतु । (निष्क्रान्तः) ।

(मिश्रविष्कम्भकः)

[अन्वयः—नरवर ! जय । द्वितीयः अरिः तव जेयः स्यात् । एकातपत्रा भूमिः तव विधेया भवतु । इति अनेकैः प्रसन्नैः मुनिभिः स्तूयमानः मानवेन्द्रः विमानात् क्षितितलम् अवतीर्णः ।।१।।

हिन्दी रूपान्तर—

तपस्वी—किसलिए यह कह रहे हो ?

नन्दिकलक—वे निश्चय से खाते हैं ।

तपस्वी—घबराओ नहीं । ये राक्षस निश्चय से विभीषण के आज्ञाकारी हैं ।

नन्दिलक—राक्षसों में सज्जन विभीषण को नमस्कार है ।

(निकल जाता है)

तपस्वी—(देखकर) ये आदरणीय राम हैं । जो कि ये—

अर्थ [श्लोक १]—मनुष्यों मे श्रेष्ठ हे राम ! आपकी जय हो । रावण के अतिरिक्त दूसरे भी जो आपके शत्रु हों, उनको आप जीत लें । एकछत्र वाली यह पृथिवी आपके वशवर्तिनी हो । इस प्रकार अनेक प्रसन्न मुनियों के द्वारा स्तुति किये जाते हुए, मनुष्यों के राजा राम पुष्पक विमान से पृथिवीतल पर उतर आये हैं ।।१।।

जय हो, आपकी जय हो ।

(निकल जाता है)

(मिश्रविष्कम्भक पूरा हुआ)

संस्कृत-व्याख्या—नरवर ! नरेषु मनुष्येषु वरश्रेष्ठ हे राम ! जय तव विजयी भवतु । त्वं सर्वोत्कृष्टरूपेण वर्तसे इत्यर्थः । द्वितीयः रावणपेक्षाया यः कश्चिद् अन्योऽपि तव रे अरिः शत्रु वर्तसे स जेयः तव शक्त्या पराभवितुं योग्यः स्यात् भवेत् । एकातपत्रा एकमेव आतपत्रं राजछत्रं यत्र तथाभूता एकराजाधीना इयं भूमिः धरणी तव विधेया वशवर्तिनी भवतु । तवैकस्यैव राज्ञः आधिपत्ये स्थिता भूमिः भवतु तत्रत्याश्च सर्वे लोकास्ते विधेयाः भवन्तु । इति अनेन प्रकारेण अनेकः बहुभिः मुनिभिः ऋषिभिः स्तूयमानः वन्द्यमानः, रावणवधसन्तुष्टैः अत एव रामदर्शनप्रसन्नैः मुनिभिः प्रशस्यमानः मानवेन्द्रः मानवानां मनुष्याणाम् इन्द्रः राजा रामः विमानात् पुष्पकाभिधेयाद् व्योमयानाद् क्षितितलं पृथिवीतलम् अवतीर्णः अवतरन् अवलोक्यते ।।१।।

व्याकरण—$\sqrt{}$जि + यत् = जेय । वि + $\sqrt{}$धा + यत् = विधेय । आतपात् त्रायते = आतप + त्रै + क = आतपत्र । प्र + सद् + क्त = प्रसन्न । अव + $\sqrt{}$तॄ + क्त = अवतीर्य ।

छन्दः—मालिनी ।

मिश्रविष्कम्भक—इस विष्कम्भक में मध्यम तथा नीच कोटि के पात्रों का

पयोग हुआ है। अतः यह मिश्रविष्कम्भक है; इसके द्वारा छठे और सातवें अंक के मध्य की घटना का बोध होता है। सीता का अपहरण होने के बाद लंका पर आक्रमण करके राम ने रावण को मार डाला, विभीषण का राज्याभिषेक किया और सीता को साथ लेकर, वानरों आदि के साथ पुष्पक विमान पर बैठ कर वे अयोध्या की ओर चले तथा मार्ग में जनस्थान में ऋषियों के आश्रम में उतरे।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—भोः—

समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम्।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥२॥

[अन्वयः—समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा, जगति गुणसमग्रां विशुद्धां सीतां प्राप्य, अन्तशः गुरूणाम् अपि वचनं पूरयित्वा भूय मुनिजनवनवासं प्राप्तवान् अस्मि ॥२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर राम प्रवेश करते हैं)

राम—हे लोगो !

अर्थ [श्लोक २—बहुत अधिक बल और पराक्रम से युक्त, रावण का विनाश करके, संसार में समग्र गुणों से विभूषित निर्मल चरित्र वाली सीता को प्राप्त करके, अन्त में गुरुजनों के वचन को भी पूरा करके मैं पुनः मुनियों के तपोवन में आ पहुँचा हूँ ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—समुदितबलवीर्यं समुदितम् अत्यधिकमुन्नतं बलं शारीरिक सामर्थ्यं सेना च वीर्यं पराक्रमं च यस्य तादृशं रावणं दशाननं नाशयित्वा समूलं वधं विधाय, जगति अस्मिन् लोके गुणसमग्रां समग्रगुणविभूषितां विशुद्धां निर्मलचारित्रां सीतां जानकीं प्राप्य लब्ध्वा, अन्तशः अन्तं यावत् गुरूणां गुरुजनानां पित्रादीनां वचनम् आज्ञां चतुर्दश वर्षाणि यावत् वने वासः कर्त्तव्य इत्यादेशं पूरयित्वा पालनं कृत्वा भूयः पुनरपि मुनिजनवनवासं मुनिजनानाम् ऋषीणां वनवासम् अरण्यनिवासं तपोवनं प्राप्तवान् अस्मि समागतः अस्मि। मया प्रबलपराक्रमी रावणो हतः, विशुद्धचरित्रा सीता पुनः प्राप्ता, गुरूणामपि वनवासस्यादेशः पूरितः। पुनश्च अहमस्मिन् मुनिजनाध्युषिताश्रमपदे सम्प्राप्तः। एवं सर्वप्रकारेण कृतकृत्योऽहं सञ्जातः इति रामस्य अभिप्रायः ॥२॥

व्याकरण—समुदितं बलं वीर्यं च यस्य तम्=समुदितबलवीर्यम् । सम्+उद्+√इ+क्त=समुदित । गुणा: समग्रा: यस्यां ताम्=गुणसमग्राम् । समं सकलं यथा स्यात् गृह्यते=सम+√ग्रह्+ड (टि का लोप)=समग्र ।

छन्द:—मालिनी ।

तापसीनामभिवादनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते खलु मैथिली । (विलोक्य) अये, इय वैदही—

सखीति सीतेति च जानकीति
यथावय: स्निग्धतरं स्नुषेति ।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री
सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥३॥

[अन्वय:—सखी इति, सीता इति, जानकी इति, स्नुषा इति च तपस्विदारै: यथावय: स्निग्धतरं सम्भाष्यमाणा जनकेन्द्रपुत्री मन्दं समुपैति ॥३॥]

हिन्दी रूपान्तर—

तपस्विनियों का अभिवादन करने के लिए भीतर प्रविष्ट हुई सीता देर कर रही है (देखकर) अये, यह तो सीता है—

अर्थ [श्लोक ३]—समान आयु वाली स्त्रियों से सखी इस प्रकार से, आयु में अधिक स्त्रियों से सीता और जानकी इस प्रकार से। वृद्धा स्त्रियों से पुत्रवधू इस प्रकार से तपस्वियों की पत्नियों से आयु के अनुसार अत्यधिक स्नेह से वार्त्ता करती हुई जनकराज की पुत्री सीता धीरे-धीरे मेरे पास आ रही है। राम ने सीता को देखा तो अनेक तपस्वी-पत्नियाँ उसको घर कर वार्त्ता कर रही थीं। समान आयु वाली स्त्रियाँ उसको सखी कहकर पुकार रही थीं, बड़ी आयु की स्त्रियाँ उनको नाम लेकर, सीता या जानकी कह कर बुलाती थीं तथा स्त्रियाँ वधू कह कर पुकार रही थीं ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—सखी इति समवयस्काभि स्त्रीभि: सखी सम्बोध्य, सीता इति जानकी इति च अधिकवयस्काभि: स्त्रीभि: सीता, इति वा जानकी इति वा सनामग्रहणं सम्बोध्य, स्नुषा इति वृद्धाभि: स्त्रीभि: वधू: इति च सम्बोध्य यथावय: वयसा अनुसारं स्निग्धतरम् अत्यधिक स्नेहेन सम्भाष्यमाणा संबोध्य व्याह्रियमाणा जनकेन्द्रपुत्री जनकस्य राजपुत्री राजकुमारी मैथिली मन्दं शनै: शनै: समुपैति मम समीप समागाति ॥३॥

व्याकरण—वयसा अनुरूपम्=यथावय: । स्निह्+क्त=स्निग्ध । स्नु+सक्+टाप्=स्नुषा । सम्+भाष्+यक्+शानच्+टाप्=सम्भाष्यमाणा ।

छन्द:—उपजाति ।

इस श्लोक में राम के वापिस आने का वर्णन किया गया है।

अलङ्कार--स्वाभावोक्ति। सीता की स्वाभाविक अवस्था का वर्णन करने से स्वाभावोक्ति अलङ्कार है।

तापसीनामभिवादनार्थम्--भारद्वाज के आश्रम में आकर सीता स्वयं ही तपस्विनियों का अभिवादन करने के लिए उनकी कुटियों में चली गयी थीं।

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

तापसी—हला ! एसो दे उदुम्बिओ। उवसप्पणं। ण सक्कं तुमं एआइणिं पेक्खिदुं। [हला ! एष ते कुटुम्बिकः। उपसर्पणम्. न शक्य त्वामेकाकिनीं प्रेक्षितुम्।]

सीता--हं अज्ज वि अविस्ससणीअं मे पडिभादि। (उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो। हम्, अद्याप्यविश्वसनीयमिव से प्रतिभाति। जयत्वार्यपुत्रः।]

रामः–मैथिली ! अपि जानासि पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् ? अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतकाः वृक्षाः ?

सीता--जाणामि जाणामि। आलोइअपत्तआ अव्लोअअदव्वा दाणिं संवुत्ता। [जानामि जानामि। अवलोकितपत्रका उल्लोकयितव्या इदानीं सवृत्ताः।]

रामः—एवमेतत्। निम्नस्थलोत्पादको हि कालः। मैथिलि ! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लत्रासस भरतं हृष्ट्वा परित्रस्त मृगयूथमासीत् ?

सीता--अटयउत्त ! दिढं खु स्मरामि। [आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि।]

रामः---अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निवपनक्रियां चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगो दृष्टः।

सीता—हं अय्यउत्त ! मा खु एवं भणिदुं। [हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खलु एवं भणितुम्।] (भीता वेपते)।

रामः—अलमलं सम्भ्रमेण। अतिक्रान्तः खल्वेष कालः। (दिशोऽवलोक्य) अये कुतो नु--

U.vmf

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः।
शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनघोरनादैः
सम्मूर्च्छतो वनमिदं नगरीकरोति ॥४॥

[अन्वयः— लोध्रसमानगौरः रेणुः समुत्पतति। पवनावधूतः च दिशः प्रावृणोति। पटहस्वनधीरनादैः च सम्मूर्छितः शङ्खध्वनिः इद वनं नगरीकरोति ।।४।।]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर सीता और तपस्विनी प्रवेश करती हैं)

तपस्विनी—हला सीते ! ये तुम्हारे पति हैं। तुम इनके समीप जाओ। मैं तुमको अकेला नहीं देख सकती।

सीता—हाँ, आज भी मुझको यह सब अविश्वसनीय-सा प्रतीत होता है। (समीप जाकर) आर्यपुत्र की जय हो।

राम—सीते ! क्या तुम जानती हो कि यह जनस्थान पहले भी हमारा रहने का स्थान था ? क्या तुम यहाँ अपने पुत्रों के समान पाले गये वृक्षों को पहचानती हो ?

सीता—जानती हूँ, जानती हूँ। पहले इनके पत्तों को नीचे मुख करके देखना पड़ता था, अब ये ऊपर को मुख करके देखने योग्य हो गये हैं।

राम—ऐसी ही बात है। समय सब नीचे के स्थानों को भर देता है, अर्थात् दुःखों को दूर कर देता है ! सीते। क्या तुमको याद है कि इस सप्तपर्ण के वृक्ष के नीचे श्वेत वस्त्र को पहने हुए भरत को देखकर मृगों का झुण्ड डर गया था ?

सीता—आर्यपुत्र ! इस बात को खूब अच्छी तरह स्मरण करती हूँ।

राम— यह तो हमारी तपस्या का साक्षीभूत महान् जलाशय है। हम यहाँ बैठकर पिता की श्राद्ध की क्रिया के विषय मे विचार कर रहे थे कि हमने काञ्चनपार्श्व नाम के मृग को देखा था।

सीता—हाय आर्यपुत्र ! नहीं, निश्चय से इस बात को मत कहिये। (सीता कांपती है)

राम—घबराओ नहीं, घबराओ नहीं। यह समय तो बीत गया है। (दिशाओं को देखकर) अरे, यह कहाँ से—

अर्थ [श्लोक ४]—लोध्र के समान शुभ्र वर्ण की धूल ऊपर उठ रही है और वायु के वेग से उड़ायी जाकर दिशाओं को आच्छादित कर रही है। नगाड़ों की ध्वनियों और वीरों की गर्जनाओं के शब्दों से मिश्रित होकर शंखों की ध्वनि इस वन को नगर बना रही है ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—लोध्रसमानगौरः लोध्रपुष्पैः समानं सदृशं गौरं शुभ्रवर्णः यस्य तादृशः रेणुः धूलिः समुत्पतति, भुवं उत्थाय उपरि आकाशे गच्छति। सःच धूलिः पवनावधूतः पवनेन वायुवेगेन अवधूतः इतस्ततः प्रसारितः च दिशः आशाः सम्प्रावृणोति सम्यक् समन्ततः आच्छादयति। पटहस्वनधीरनादैः पटहानां डिडिमानां स्वनेन ध्वनिभिः धीराणां वीरपुरुषाणां च नादैः गर्जनाभिः सम्मूर्छितः मिश्रितः वृद्धिं गत इत्यर्थः शङ्खध्वनिः शङ्खानां कम्बूनां ध्वनिः निनादः इदम् एतद् वनम् अरण्यं नगरी

इस श्लोक में भरत राम के दर्शन के लिए आये हैं

करोति नगरसादृश्यं प्रापयति । प्रतीयते काऽपि महती सेना समागच्छति, यत्र शंखाः ध्मायन्ते, पटहाः ताडयन्ते धीराश्च सिंहवत् गर्जन्ति । येषां निनादैः वनमिदः नगरवज्जायते ।।४।।

व्याकरण—पवनेन अवधूतः = पवनावधूतः । पुनाति – √पू + ल्युट् (अन) पवन । अव + √धू + क्त = अवधूत । पटहानां स्वनैः धीराणां च नादैः पटहस्वनधीर-नादैः । सम् + √मूर्छ् + णिच् + क्त = सम्मूर्छित । अनगर नगरं करोति = नगर + च्वि + करोति (दीर्घ) = नगरीकरोति ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—उपमा । लोध्रसमानगौरः में उपमा अलङ्कार है । लोध्र उपमान, रेणु उपमेय, समान उपमावाचक पद और गौर साधारण धर्म है ।

न शक्यं त्वाम् एकाकिनीं प्रेक्षितुम्—सीता का एक बार अपहरण हो चुका है; अतः उसको अकेला छोड़ने में तापसियाँ भी डरती हैं ।

पूर्वाधिष्ठानं जनस्थानम्—जनस्थान में राम पहले रह चुके हैं । पहले के स्मृत चिह्नों को देखकर वे अपने निवास स्थान को पहचान लेते हैं ।

अवलोकितपत्रका उल्लोकयितव्याः—सीता ने इन वृक्षों को आरोपित किया था तथा पुत्रों के समान पालन किया था । उस समय ये छोटे थे । इनके पत्तों को मुख नीचा करके देखना पड़ता था, परन्तु अब इतनी लम्बी अवधि में ये बड़े हो गये तथा इनके पत्तों को देखने के लिए मुख को ऊपर करना पड़ता है ।

निम्नस्थलोत्पादको हि कालः—निम्नानां गर्तभूतानां स्थलानां समभूमिभूतानां च उत्पादकः कालः । समय से गड्ढे भर कर समतल हो जाते हैं । समय सभी खाइयों को पाट देता है । भारी से भारी दुःखों को भी सह्य बना देता है ।

मा खल्वेवं भणितुम्—काञ्चनपार्श्व मृग का नाम सुनकर सीता को रावण द्वारा अपने अपहरण की घटना स्मरण हो आती है । वह भय से काँपने लगती है और राम को उसका वर्णन करने से रोकती है ।

(प्रविश्य)

लक्ष्मण—जयत्वार्यः । आर्य !

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतः भ्रातृवत्सलः ।।५।।

[**अन्वयः**—त्वद्दर्शनसमुत्सुकः भ्रातृवत्सलः अयं भरतः महता सैन्येन मातृभिः सह सम्प्राप्तः ।।५।।]

हिन्दी-रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो । आर्य !

अर्थ [श्लोक ५]—आपके दर्शनों के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित तथा भाई के प्रति स्नेह करने वाला यह भरत महान् सेना और माताओं के साथ आ पहुँचा है ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—त्वद्दर्शनसमुत्सुकः तव दर्शने अवलोकने समुत्सुकः अत्यधिकम् उत्कण्ठितः भ्रातृवत्सलः स्निग्धः अयम् एष भरतः महता विशालेन सैन्येन सेनया मातृभिः अम्बाभिश्च सह सम्प्राप्तः अस्मिन् तपोवने समायातः ॥५॥

व्याकरण—तव दर्शने समुत्सुकः = त्वद्दर्शनसमुत्सुकः । उत् + √सू + क्विप् + कन् (ह्रस्व) = उत्सुक । भ्रातृषु वत्सलः = भ्रातृवत्सल । वत्स + लच् = वत्सल ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—सहोक्ति ।

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ?

रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोग भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीताः—अय्यउत्त ! इच्छिदव्वे काले भरदो आआदो । [आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरत आगतः ।]

(ततः प्रविशति भरतः समातृकः)

भरतः

तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैर्विमुक्तं
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम् ।
आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥६॥

[अन्वयः—शरदि मेघैः विमुक्तम् अमलं सोमम् इव, तैः तैः प्रवृद्धविषयैः विषमैः विमुक्तम् आर्यासहायं गुरुं दिदृक्षुः अहम् अद्य तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः प्राप्तः अस्मि ॥६॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या इस प्रकार यह भरत आया है ?

लक्ष्मण—आर्य ! और क्या ?

राम—सीते ! तुम्हारी सासों के साथ आगे चलने वाले भरत को देखने के लिए अपनी आंखों को खूब फैला लो ।

सीता—आर्यपुत्र ! अपने अभीष्ट समय पर भरत आ गये हैं ।

(तदनन्तर माताओं के साथ भरत प्रवेश करता है)

भरत—

अर्थ [श्लोक ६]—शरद् ऋतु में मेघों से युक्त हुए निर्मल चन्द्रमा के समान, उन-उन नानाविध बढ़ी हुई आपत्तियों से छुटकारा पाये हुए तथा आर्या सीता के साथ आये हुए बड़े भाई को देखने की इच्छा वाला मैं आज सन्तुष्ट हृदय वाला होकर अपने सम्बन्धियों के साथ यहाँ आया हूँ ।।६।।

संस्कृत-व्याख्या—शरदि शरत्काले मेघापगमे मेघैः जलदैः विमुक्तम् आच्छादनरहितं कृतम् अमलं निर्मलं दीप्तिशालिनं सोमं चन्द्रमसम् इव, तैः तैः वाचापि वर्णयितुम् अशक्यैः प्रवृद्धविषयैः प्रवृद्धाः प्रवृद्धिं गताः विषयाः येषां तैः नानाविधैरित्यर्थः विषमैः विपद्भिः विमुक्तम् आर्यासहायं आर्यया सीतया सहायं सहितं गुरं ज्येष्ठं भ्रातरं रामं दिदृक्षु दर्शनेच्छुकः अहम् अद्य इदानीन्तने समये तुष्टहृदयः तुष्टं प्रसन्नं हृदयं यस्य तादृशः सन् स्वजनानुबद्धः स्वैः जनैः आत्मीयैः सम्बन्धिभिः अनुबद्धः अनुयातः प्राप्तः समागतः अस्मि । संकटमुक्तं ज्येष्ठभ्रातरं राममवलोकयितुमुत्सुकोऽहं प्रसन्नहृदयोऽत्र स्वजनैः सद्धिं समागतः ।।६।।

व्याकरण—प्रवृद्धाः विषयाः येषां तैः = प्रवृद्धविषयैः । प्र + √वृध् + क्त = प्रवृद्ध । विषिण्वन्ति स्वात्मकतया विषयिणं सम्बध्नन्ति = वि + √सि + अच् (षत्व) = विषय । √दृश् + सन् + उ = दिदृक्षुः । तुष्टं हृदयं यस्य स = तुष्टहृदयः ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कार—उपमा । विषमभुक्त राम उपमेय, मेघनिर्मुक्त सोम उपमान, इव उपमावाचक तथा दर्शनाभिलाषा साधारण धर्म हैं ।

श्वश्रूजनपुरोगं भरतम्—श्वश्रूजनस्यः पुरः गच्छति इति तम् = श्वश्रूजनपुरोगम् । शु आशु अश्नुते = शु + √अश् + उरच् = श्वशुर + ऊङ् = श्वश्रू । भरत अपनी माताओं के आगे-आगे चल रहे थे ।

एष्टव्ये काले—जिस समय भरत को देखने की सीता की इच्छा थी तथा अयोध्या में प्रवेश से पूर्व भरत वहाँ समुचित समय में आ गये थे । इष् + तव्यत् = एष्टव्य ।

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जाद ! चिरं जीव । दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं कुसलिणं सह बहूए पेक्खिअ । [जात ! चिरं । जीव । दिष्टचा वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रक्ष्य ।]

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः ! अभिवादये ।

इस श्लोक में राम भरत से कहते हैं कि मुझे आलिङ्गन करो।

सर्वाः—जाद ! चिरं जीव । [जात ! चिरं जीव ।]

लक्ष्मणः— अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीताः—अय्या ! वन्दामि । [आर्याः ! वन्दे ।]

सर्वा —वच्छ ! चिरमङ्गला होहि । [वत्से ! चिरमङ्गला भव ।]

सीताः—अणुग्गहिदा ह्मि ।[अनुगृहीतास्मि ।]

भरतः—आर्य ! अभिवादये । भरतोऽस्मि ।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

(7) वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण-
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥७॥

[अन्वयः—कवाटपुटप्रमाणं वक्षः प्रसारय । सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग । शरदिन्दुकल्पम् इदम् आननम् उन्नामय । व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय ॥७॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—माताओ ! मैं अभिवादन करता हूँ ।

सब माताएँ—पुत्र ! चिरञ्जीवी होओ । हमारा धन्य भाग्य है, जो हम प्रतिज्ञा को पूरा करने वाले तुमको वधू के साथ कुशलपूर्वक देख रही हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

लक्ष्मण—माताओ ! मैं अभिवादन करता हूँ ।

सब माताएँ—पुत्र ! चिरञ्जीवी होओ ।

लक्ष्मण —मैं अनुगृहीत हूँ ।

सीता—आर्य ! मैं वन्दना करती हूँ ।

सब माताएँ—वत्से ! सदा सुहागिने रहो ।

सीता—मैं अनुगृहीत हूँ ।

भरत—आर्य ! मैं अभिवादन करता हूँ । मैं भरत हूँ ।

राम—आओ, आओ वत्स इक्ष्वाकुकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो आयुष्मान् होओ ।

अर्थ [श्लोक ७]—किबाड़ों के समान विशाल आकार वाले अपने वक्षस्थल को फैला लो । अति विशाल अपनी दोनों भुजाओं से मेरा आलिङ्गन कर लो । शरत्कालीन चन्द्रमा के समान इस सुन्दर मुख को ऊपर उठाओ । शोकरूप आपत्ति से जले हुए इस शरीर को प्रसन्न कर दो ॥७॥

इस श्लोक में शत्रुघ्न कहते हैं कि मैं राम से शीघ्र ही देखना चाहता हूँ

संस्कृत-व्याख्या—कवाटपुटं कपाटयुगल तदिव प्रमाणं मानमाकारः विस्तीर्णत्वं वा यस्य तादृशं वक्षः उरःस्थलं प्रसारय विस्तारय। तथाभूते च सति त्वयि ते वक्षःस्थलस्य आलिङ्गनयोग्यता भविष्यति समधिकसुखस्यानुभूतिश्च भविष्यति। सुविपुलेन अतिविशालेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन मां रामम् आलिङ्ग आश्लेषबद्धं कुरु। शरदिन्दुकल्पं शरत्कालीनचन्द्रसदृशम् इदम् आननं मुखम् उन्नामय उन्नतं कुरु, तथाभूते च सति ते मुखे दर्शनाधिकानन्दानुभवो भविष्यति। व्यसनदग्धं व्यसनैः पितृनिधनमातृभ्रातृवियोगादिजन्यैः कष्टैरापद्भिश्च दग्धं ज्वलन्तम् इदमेतत् शरीरं वपुः प्रह्लादय आनन्दोच्छ्वसितं कुरु। विपद्भिः कष्टैश्च मे शरीरे दग्धतुल्या वेदना वर्तते। तवालिङ्गनेन तव मुखदर्शनेनचेयं दाहवेदना शिशिरत्वमुपैष्यति ॥७॥

व्याकरण—प्र + मा + ल्युट् (अन) = प्रमाण।

छन्द:—वसन्ततिलका।

अलङ्कार—उपमा। प्रथम चरण में कवाटपुट उपमान, वक्षः उपमेय और प्रमाण साधारण धर्म है। उपमावाचक पद के लुप्त होने से यह वाचकलुप्तोपमा है। तृतीय चरण में आनन उपमेय शरदिन्दु उपमान, कल्प उपमावाचक और प्रह्लादय साधारण धर्म है।

अवसितप्रतिज्ञम्—अवसिता प्रतिज्ञा येन तादृशम्। अव + षिन् + क्त + टाप् = अवसिता। राम के प्रतिज्ञा पूरी करने से सब प्रसन्न हैं।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्ये! अभिवादये। भरतोऽहमस्मि।

सीता—अय्यउत्तेण चिरसञ्चारो होहि। [आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव।]

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! अभिवादये।

लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स! दीर्घायुर्भव। परिष्वजस्व गाढम्। (आलिङ्गति)।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः।

रामः—वत्स! कथमिव?

कैकेयी:—जाद! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो। [जात! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः।]

(ततः प्रविशति शत्रुघ्नः)

शत्रुघ्नः— विविधैर्व्यसनैं क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम्।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम् ॥८॥

(उपगम्य) आर्य! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये।

[**अन्वय**—विविधैः व्यसनैः क्लिष्टम् अक्लिष्टगुणतेजसं रावणान्तकरं गुरुं द्रष्टुं मे बुद्धिः त्वरते ॥८॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—मैं अनुगृहीत हूँ। आर्ये ! मैं अभिवादन करता हूँ। मैं भरत हूँ।

सीता—आर्यपुत्र के साथ चिरकाल तक विचरण करो।

भरत—मैं अनुगृहीत हूँ। आर्य ! अभिवादन करता हूँ।

लक्ष्मण—वत्स ! आओ, आओ। दीर्घायु होओ। मेरा प्रगाढ़ आलिङ्गन करो। (आलिङ्गन करता है)

भरत—मैं अनुगृहीत हूँ। आर्य ! राज्य के भार को वापिस ले लीजिये।

राम—वत्स ! यह कैसे हो सकता है ?

कैकेयी—वत्स ! यह हम लोगों का चिरकाल से अभीष्ट मनोरथ है।

(तदनन्तर शत्रुघ्न प्रवेश करता है)

(समीप जाकर) आर्य ! मैं शत्रुघ्न आपका अभिवादन करता हूँ।

शत्रुघ्न—

अर्थ [श्लोक ८]—अनेक प्रकार की आपत्तियों से सताये जाते हुए भी जिनके गुण और तेज उपहत नहीं हुए, ऐसे तथा रावण का विनाश करने वाले बड़े भाई को देखने के लिए मेरी बुद्धि शीघ्रता कर रही है ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—विविधैः नानाप्रकारैः व्यसनैः विपद्भिः क्लिष्टं सम्पीडितं, तथापि अक्लिष्टगुणतेजसम् अक्लिष्टाः अनुपहृताः गुणाः शीलशौर्यादिगुणाः तेजः कान्तिश्च यस्य तादृशं रावणान्तकरं रावणस्य दशाननस्य अन्तं विनाशं करोति विदधाति इति तथाभूतं गुरुं ज्येष्ठभ्रातरं रामं द्रष्टुम् अवलोकयितुं मे मम शत्रुघ्नस्य बुद्धिः मतिः विचारः त्वरते शीघ्रतां करोति। उत्कण्ठते इत्यर्थः ॥८॥

व्याकरण—अक्लिष्टाः गुणाः तेजश्च यस्य तम् = अक्लिष्टगुणतेजसम्। √क्लिश् + क्त = क्लिष्ट। रावणस्य अन्तं करोति इति तम् = रावणान्तकरम्।

छन्दः—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उदात्त। राम के गुणातिशय का वर्णन करने से उदात्त अलङ्कार है।

राम—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति। आयुष्मान् भव।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! अभिवादये।

सीता—वच्छ ! चिरं जीव। [वत्स ! चिरं जीव।]

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्ये ! अभिवादये।

लक्ष्मणः—स्वस्ति। आयुष्मान् भव।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषेकं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥९॥

[अन्वयः—मुनिगुणाः, तव प्रसादात् नानानदीनदगतेन मुनिभिः स्वयम् आहृतेन तीर्थोदकेन प्रथमाभिषिक्तं ते मुखं सलिलसिक्तम् अरविन्दम् इव द्रष्टुम् इच्छन्ति ॥९॥]

हिन्दी रूपान्तर—

राम—वत्स ! आओ, आओ । तुम्हारा कल्याण हो । आयुष्मान् होओ ।

शत्रुघ्न—मैं अनुगृहीत हूँ । आर्ये ! मैं अभिवादन करता हूँ ।

सीता—वत्स ! चिरञ्जीवी होओ ।

शत्रुघ्न—मैं अनुगृहीत हूँ । आर्य मैं अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मण—कल्याण हो । आयुष्मान् होओ ।

शत्रुघ्न—मैं अनुगृहीत हूँ । आर्य ! ये दोनों महर्षि वशिष्ठ और वामदेव प्रजाओं के साथ राज्याभिषेक की सामग्री लेकर आपके दर्शन की अभिलाषा करते हैं ।

अर्थ [श्लोक ९]—ये वशिष्ठ वामदेव आदि मुनि, तुम्हारी ही कृपा से अनेक नदियों और नदों में स्थित, मुनियों द्वारा स्वयं लाये गये तीर्थों के जलों से, प्रथम राज्याभिषेक किये गये आपके मुख को उसी प्रकार देखना चाहते हैं, जैसे कि जल से भीगा हुआ श्वेत कमल हो ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—मुनिगुणाः एते वसिष्ठवामदेवादयः ऋषयः, तव प्रसादात् तवैव कृपाप्रभावात् त्वया रावणादिराक्षसानां वधः कृतः, अतएव सर्वे सञ्चारमार्गाः प्रतिहतविघ्नाः सञ्जाताः, अतः तव प्रसादः एव जलानयनहेतुः, नाना विविधाः वा नद्यः सरितः नदाः महानद्यः इति जलधारासु गतेन विद्यमानेन, मुनिभिः ऋषिभिः स्वयम् आत्मनैव, न तु कैश्चिदपि सेवकैः, एवं तीर्थोदकपवित्रताप्रभावः, आहृतेन आनीतेन तीर्थोदकेन तीर्थानां पुण्यस्थलानाम् उदकेन जलेन प्रथमाभिषिक्तं प्रथमं प्राक्कृतमेव अभिषिक्तं राज्याभिषेककरणाय तीर्थजलार्द्रं ते तव रामस्य मुखं वदनं सलिलसिक्तं सलिलैः जलैः अभिषिक्तम् अभ्युक्षितम् अरविन्दं श्वेतकमलम् इव द्रष्टुम् अवलोकयितुम् इच्छन्ति वाञ्छन्ति । स्वल्पेनैव कालेन ते राज्याभिषेकं विधातुमिच्छन्ति इत्यर्थः ॥९॥

व्याकरण—तीर्थानाम् उदकेन = तीर्थोदकेन । तरति पापादिकं यस्मात् = √तॄ + थक् = तीर्थ । उन्दी क्लेदने, √उन्द् + क्वुन् (अक) (न का लोप) = उदक । नाना नद्यः नदाश्च तत्र गतेन = नानानदीनदगतेन । अरान् चक्राङ्गाणि इव पत्राणि विन्दते अर + विद् + श (नुम् का आगम) = अरविन्द ।

छन्दः—वसन्ततिलका ।

अलङ्कारः—उपमा और उदात्त । अरविन्द उपमान, मुख उपमेय, इव उपमावाचक और जल से अभिषिक्त होता साधारण धर्म हैं अतः पूर्णोपमा अलङ्कार है ।

वासिष्ठवामदेवौ—वसिष्ठश्च वामदेवश्च तौ । ये दोनों इक्ष्वाकु कुल के पुरोहित थे । राज्याभिषेक की सामग्री को साथ लेकर प्रजाजनों के साथ जनस्थान में ही चले आये थे ।

कैकेयी— गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअघोसं। [गच्छ जात ! अभिषालाभिषेम् ।]

रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्तः)

(नपथ्ये)

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वायः । जयतु रावणान्मकः ।

कैकेयी— एदे पुरोहिदा । कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्तो । आसीहि पूजअन्ति । [एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोष वर्धयन्ति [आशीर्भि पूजयन्ति]

सुमित्रा इइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स में विजअं बड्ढअन्ति । [प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयंवर्धयन्ति।]

(नेपथ्ये)

भो भो जनस्थाननिवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः—

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः ॥१०॥

कैकेयी—अम्महे ! पुत्तस्स में विजअघोसणा बड्ढइ । [अहो पुत्रस्य में विजयघोषणा वर्धते ।]

[अन्वयः—अप्रतिमं रिपुप्रभवं तमौघं शौर्यमयैः मयूखैः सूर्यः अन्धकारम् इव हत्वा, सकलाशुभवर्जनीयां सीताम् अवाप्य सर्वजनाभिरामः रामः महीं जयति ।।१०।।]

हिन्दी रूपान्तरण—

कैकेयी=पुत्र ! जाओ । राज्याभिषेक को स्वीकार करो ।

राम—माता जैसा आदेश देती है। (निकल जाते हैं)

(नेपथ्य में)

आपकी जय हो। स्वामी की जय हो। महाराज की जय हो। देव की जय हो। भद्रमुख की जय हो। आर्य की जय हो। रावण का विनाश करने वाले की जय हो।

कैकेयी—ये पुरोहित और कञ्चुकी मेरे प्रिय पुत्र की विजय-घोषणा करके उसकी उन्नति करते हुए आशीर्वादों से उसका अभिनन्दन कर रहे हैं।

सुमित्रा—प्रजायें, सेवक और सज्जन पुरुष मेरे पुत्र की जय-जयकार कर रहे हैं।

(नेपथ्य में)

जनस्थान में रहने वाले हे हे तपस्वियो! आप सब सुनें, सुनें—

अर्थ [श्लोक ॥१०॥]—अतुलनीय तथा शत्रु द्वारा उत्पन्न किये गये अन्धकार रूपी विपत्ति के समूह का, अपनी शौर्यरूपी किरणों से, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार विनाश करके, सम्पूर्ण अशुभों से रहित सर्वमङ्गलमयी सीता को प्राप्त करके, सम्पूर्ण जनता को आनन्दित करने वाले राम ने पृथिवी को जीत लिया है। वे पृथिवी पर सर्वोत्कृष्ट रूप से हैं ॥१०॥

कैकेयी—अहा, मेरे पुत्र की विजय-घोषणा बढ़ रही है।

संस्कृत-व्याख्या—अप्रतिमं न विद्यते प्रतिमा तुलना यस्य तादृशम् अतुलनीयं रिपुप्रभवं रिपोः शत्रुभूताद् रावणात् प्रभवः उत्पत्तिः यस्य तादृशं तमौघम् तमसः अन्धकाररूपस्य संकटस्य ओघं समूहं शौर्यरूपैः स्ववीर्यरूपैः मयूखैः किरणैः, सूर्यः भास्करः मयूखैः अन्धकारं तमःपलम् इव हत्वा विनाश्य, सकलाशुभवर्जनीयां सकलेभ्यः सर्वेभ्यः अशुभेभ्यः अमङ्गलेभ्यः वर्जनीयां विरहितां सर्वमङ्गलमयीं सीतां जानकीम् अवाप्य उपलभ्य, सर्वजनाभिरामः सर्वान् सकलान् जनान् प्रजाः अभिरमयति अनुरञ्जयति इति तादृशः रामः दशरथसुतः रामः महीं पृथिवीं जयति स्वाधीनतां प्रापयति। पृथिव्या सः सर्वोत्कर्षेण वर्तते। यथा सूर्यः स्वमयूखैः अन्धकारं विनाशयति तथैव तेन रामेण। स्वशौर्येण शत्रुजनिता विपत्तिः विनाशिता ॥१०॥

व्याकरण—रिपोः प्रभवः यस्य तम् = रिपुप्रभवम्। अनिष्टं रपति = रप् + कु (इत्व) = रिपु। प्र + भू + अच् = प्रभव। गगनं मापयन् गच्छति माति वा = मा + ऊख (मय् आदेश) = मयूख। सकलेभ्यः अशुभेभ्यः वर्जनीयाम् = सकलाशुभवर्जनीयाम् वृज् + अनीयर् = वर्जनीय।

छन्दः—वसन्ततिलका।

अलङ्कार—उपमा, अतिशयोक्ति और रूपक। सूर्य उपमान, राम उपमेय, इव उपमावाचक, अन्धकार का विनाश करना साधारण धर्म है। पूर्णोपमा है। तमः एव विपत्तिः। इसमें उपमान तमः द्वारा विपत्ति उपमेय का निगरण करने के कारण रूप-

इस श्लोक राम का राज्याभिषेक हो गया है।

कातिशयोक्ति है। "शौर्यमयैः मयूखैः" में शौर्य उपमेय पर मयूख उपमान का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः)

राम—(विलोक्य आकाशे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषित मयि यत् तदेतत्।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥११॥

[अन्वयः—स्वर्गे अपि तुष्टिम् उपगच्छ। दैन्यं विमुञ्च। त्वया मयि यत् कर्म अभिलषितं तद् एतत्। भुवि सत्कृतभारवाही किल राजा अस्मि। धर्मेण लोकपरिरक्षणम् अभ्युपेतम् ॥११॥]

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर राज्याभिषेक करके परिवार सहित राम प्रवेश करते हैं।)

राम—(आकाश में देखकर) हे तात !

श्लोक अर्थ ११]—स्वर्ग में भी आप सन्तोष को प्राप्त करें। आपने मेरे प्रति जिस राज्याभिषेक रूपी कार्य की इच्छा की थी, वह यह पूरा हो गया है। पृथिवी पर सत्कर्मों के भार का वहन करने वाला मैं निश्चय से राजा हो गया हूँ। धर्म के अनुसार मैंने प्रजाजनों की रक्षा करना स्वीकार कर लिया है ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—स्वर्गे अपि स्वर्गस्थितोऽपि भवान् तुष्टिं सन्तोषम् उपगच्छ प्राप्नुहि। वनवासन्निर्वृतस्य मे राज्याभिषेकजन्यानन्दं लभस्व। दैन्यं दीनभावं विमुञ्च परित्यज। मनोरथस्य अपूरणेन यत्ते दैन्यं सञ्जातं तद् विजहि। त्वयामणि रामे यत् कर्म राज्याभिषेकरूपं कार्यम् अभिलषितम् ईष्टमासीत्, तद् एतत् कर्म मम राज्याभिषेकात् तु सम्पूर्णतां गतम्। भुवि पृथिव्याम् अहं सत्कृतभारवाही सत्कृतानां पुण्यकर्मणां भारं धुरं वहति धारयति इति तादृशः किल निश्चयेन राजा अस्मि। अह राजपदं प्राप्य सत्कर्माण्येव करिष्यामि तेषां च रक्षां करिष्यामि।। धर्मेण धर्मानुसार न्यायपूर्वकं लोकपरिरक्षणं लोकानां प्रजानां परिरक्षणं परित्राणं मया अभ्युपेतं स्वीकृतम्। न्यायानुसारं प्रजानां रक्षां विधास्यामि ॥११॥

व्याकरण—स्वः इति गीयते = स्वर् + √गै + क = स्वर्ग। √तुष् + क्तिन् = तुष्टि। दीनस्य भावः = दीन + ष्यञ् = दैन्य। सत्कृतानां भारं वहति = सत्कृत + भार + √ वह् + णिनि = सत्कृतभारवाहिन्। अभि + उप + √इ + क्त = अभ्युपेत।

छन्दः—वसन्ततिलका।

भरतः—　　अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
　　　　विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् ।
　　　　गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
　　　　र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे च तृप्तिः ॥१२॥

[**अन्वयः**—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं विकसितकृतमौलिं, तीर्थतोयाभिषिक्तम् अधिगतलीलं, जनौघैः वन्द्यमानं गुरुं नवशशिनम् इव आर्यं पश्यतः मे तृप्तिः न ॥१२॥]

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—

अर्थ [श्लोक १२]—'राजन्' इस पद को प्राप्त करने वाले, राजछत्र को धारण करने वाले, सिर को ऊँचा उठाकर मुकुट को धारण करने वाले, तीर्थों के जलों से अभिषेक किये गये, राजकीय शोभा को प्राप्त करने वाले, प्रजाजनों से वन्दना किये जाते हुए, बड़े भाई, नवोदित चन्द्रमा के समान प्रकाशमान आर्य को देखते हुए मुझको तृप्ति नहीं हो रही ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—अधिगतनृपशब्द अधिगतः संप्राप्तः नृपः राजा इति शब्दः वाच्यता येन तादृशं राजपदविभूषितं, धार्यमाणादपत्रं धार्यमाणं शिरसि समालम्बितम् आतपत्रं राजगच्छ यस्य तादृशं राजच्छत्रधारकं, विकसितकृतमौलिं मकुटधारणेन विकसितः समुन्नतः कृतः विहितः मौलिः मूर्धा येन तादृश किरीटेन समुन्नमूर्धानित्, तीर्थतोयाभिषिक्तं तीर्थजलैः कृतराज्याभिषेकम् अधिगतलीलम् अधिगता आसादिता लीला राजशोभा येन तादृशं राजकीयश्रवन्तं, जनौघैः जनानां प्रजानाम् ओघैः समूहैः वन्द्यमानम् अभिवाद्यमानं गुरुं ज्येष्ठभ्रातरं नवशशिनं नवोदितचन्द्रमसमिव कान्तिशालिनं जनप्रह्लादनं च आर्यं रामं पश्यतः अवलोकयनः मे मम भरतस्य तृप्तिः तुष्टिः न जायते । पुनः पुनरप्यहं तमवलोकयेयमिति मे मनसोऽभिलाषः ॥१२॥

व्याकरण—धार्यमाणम् आतपत्रं येन तम्=धायमाणातपत्रम् । √धृ+णिच्+शानच्=धार्यमाण । तीर्थानां तोर्थना: अभिषिक्तम् - तीर्थतायाभिषिक्तम् । तवे पूर्त्यै याति√तु+विच्+√या+क=तोय । अथवा, तु+यत्=तोय ' अभि+√सिञ्च्+क्त=अभिषिक्त ।

छन्दः—मालिनी ।

अलङ्कार—उपमा, उदात्त और परिकर । नवशशी उपमान, आर्य उपमेय, इव उपमावाचक, पश्यतो मे न तृप्तिः साधारण धर्मः है। पूर्णोपमा है। राम के अतिशय गुणो का वर्णन करने से उदात्त अलङ्कार है। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करने से परिकर अलङ्कार है ।

शत्रुघ्नः—　　एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
　　　　पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥१३॥

[अन्वयः—आर्याभिषेकेण एतद् नष्टकलमषम् मे कुल पुनः प्रकाशतां याति इव सोमस्य उदये जगद् ।।१३।।]

हिन्दी रूपान्तर—

शत्रुघ्न—

अर्थ श्लोक १३]—आर्य राम का राज्याभिषेक हो जाने से इस कुल के कलङ्क नष्ट हो गये हैं और यह पुनः प्रकाशमान हो रहा है; जैसे कि चन्द्रमा के उदय होने पर संसार प्रकाशित होने लगता है ।।१३।।

संस्कृत-व्याख्या—आर्याभिषेकेण आर्यस्य रामस्य अभिषेकेण राज्यरोहणेन एतद् इदं नष्टकलमषं नष्टानि अपगतानि कल्मषाणि कलङ्काः यस्य तथाभूतं मे मम शत्रुघ्नस्य कुल वंशः पुनः भूयोऽपि प्रकाशतां दीप्तयशास्वता याति गच्छति । इव यथा सोमस्य चन्द्रमसः उदय जगत् पुनः प्रकाशते । आर्यरामेण न्यायविधिना यदा राज्याभिषेकः प्राप्तः, कुलस्य कलङ्कः विनष्टः । पुनरप्यस्य कुलस्य यशः जगति प्रथितो बभूव इति भावः ।।१३।।

व्याकरण—आर्यस्य अभिषेकण = आर्याभिषेकेण । अभि + √सिच् + घञ् = अभिषेक । नष्टानि कलमानि यस्य तत् = नष्टकलमषम् । कर्म शुभकर्म स्यति नाशयति = कल्मष । √सू + मन् = सोम ।

छन्द:— अनुष्टुप् ।

अलङ्कार—उपमा । आर्याभिषेक तथा कुल उपमेय, सोमस्योदय तथा जगत् उपमान, इव उपमावाचक तथा प्रकाशित होना साधारण धर्म है । पूर्णोपमा है ।

रामः—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि ।

लक्ष्मणः दिष्टया भवान् वर्धते ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्र भवान् विभीषणो विज्ञापयतिसुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चानुगच्छन्तो विज्ञापयन्ति —'दिष्टया भवान् वर्धते' इति ।

रामः—'सहायानां प्रसादाद् वर्धत' इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

कैकेयी—धण्णा खु म्हि । इदं अब्भुदअं अओज्झाअं पेक्खिदुं इच्छामि । [धन्या खल्वस्मि । इदमभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि ।]

रामः—द्रक्ष्यति भवति । (विलोक्य) अये, प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् । सम्प्राप्तं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति । तत् सर्वैरारुह्यताम् ।

(सर्वे आरोहन्ति)

राम:-- अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः ।

लक्ष्मण:-- अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥१४॥

अन्वय:--सम्बन्धिमित्रैः अनुगम्यमानः अद्य एव अयोध्यां पुरीं यास्यामि । सनक्षत्रम् उदयस्थं चन्द्रम् इव त्वाम् अद्य एव च नागराः पश्यन्तु ॥१४॥]

हिन्दी रूपान्तर--

राम--वत्स लक्ष्मण ! मैंने राज्य प्राप्त कर लिया है ।

लक्ष्मण--भाग्य से आपकी वृद्धि हो रही है । आपको बधाई है ।

(प्रवेश करके)

काञ्चुकीय--महाराज की जय हो । ये आदरणीय विभीषण निवेदन करते हैं--सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान्, हनुमान् आदि आपके प्रमुख अनुयायी निवेदन करते हैं--भाग्य से आपकी वृद्धि हो रही है । आपको बधाई है ।

राम--सहायकों की कृपा से वृद्धि हो रही है, ऐसा कहो ।

काञ्चुकीय--महाराज जैसा आदेश देते हैं ।

कैकेयी--मैं निश्चय से धन्य हो गयी हूँ । इस अभ्युदय को मैं अयोध्या में देखना चाहती हूँ ।

राम--आप वहाँ भी देखेंगी । (देखकर) अरे, प्रकाशों से यह सारा वन सूर्य के समान प्रतीत हो रहा है । (विचार करके) आः, समझ लिया । रावण का विमान आकाश में आ पहुँचा है । स्मरणमात्र से यह समय पर पहुँच जाता है । तो आप सब इस पर आरूढ़ हो जावें ।

(सब आरूढ़ होते हैं ।)

राम--

अर्थ [श्लोक १४]--सम्बन्धियों और मित्रों से अनुगमन किया जाता हुआ मैं आज ही अयोध्या नगरी को जाऊँगा ।

लक्ष्मण--

नक्षत्रों सहित उदयाचल पर स्थित चन्द्रमा के समान उन्नति के शिखर पर स्थित आपको आज ही नगरनिवासी देखें ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या--सम्बन्धिमित्रैः सम्बन्धिभिः भरतादिभिः मित्रैः विभीषणादिभिः सुहृद्भिश्च अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः अहम् अद्य एव अयोध्यां पुरीं नगरीं यास्यामि गमिष्यामि । बिना विलम्ब मया तत्र गन्तव्यम् ।

सनक्षत्रं नक्षत्रैः सह शोभमानम् उदयस्थम् उदयाचलपर्वतशिखरे तिष्ठन्तं चन्द्रं शशिनम् इव उन्नतिशिखरारूढं उन्नतिशिखरारूढं त्वाम्-अद्य एव नागराः नगरनिवासिनः पश्यन्तु अवलोकयन्तु ॥१४॥

व्याकरण—सम्बन्धिभिश्चमित्रैश्च = सम्बन्धिमित्रैः। मिद्यति स्निह्यति = √मिद् + त्र = मित्र। अथवा, मिनोति मानं करोति = √मि + क्त्र = मित्र। अनु + √गम् + यक् + शानच् = अनुगम्यमान।

नगरे निवसति = नगर + अण् = नागर। उदये स्थितम् = उदय + स्था + क = उदयस्थः।

अलङ्कार—उपमा। चन्द्र उपमान, राम उपमेय, उदयस्थ होना साधारण धर्म और इव उपमावाचक हैं; अतः पूर्णोपमा है।

छन्द—इन्द्रवज्रा।

टिप्पणी—

अधिगतराज्यः—अधिगतं राज्यं येन सः। अधि + √गम् + क्त = अधिगत। राम को प्रसन्नता है कि उनका काय पूरा हो गया है और उन्होंने राज्य प्राप्त कर लिया है।

धन्या खल्वस्मि—राम के वनवास के कारण कैकेयी का बहुत अपयश हुआ। अब राम के राज्याभिषेक से वह परिमार्जित हो गया है। इसलिए वह अपने को धन्य समझ रही है। वह चाहती है कि इस बात को अयोध्यावासी भी देख लें, जिससे वे उसकी निन्दा न करें।

स्मृतमात्रमुपगच्छति—पुष्पक विमान की विशेषता बतायी गयी है कि वह इच्छामात्र से संचालित होता था। वह स्मरणमात्र से ही समय पर उपस्थित हो जाता था।

(भरतवाक्यम्)

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥१५॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

[अन्वयः—यथा रामः जानक्या च बन्धुभिः च समागतः, यथा लक्ष्म्या समायुक्त. नः राजा भूमिं प्रशास्तु ॥१५॥

हिन्दी रूपान्तर—

अर्थ [श्लोक १५]—जिस प्रकार कि राम का सीता और बन्धुओं के साथ मिलन हुआ था और उन्होंने पृथ्वी का शासन किया था, उसी प्रकार राज्यलक्ष्मी से युक्त हमारे राजा (राजसिंह) भूमि का शासन करें ॥१५॥

(सब अभिनेता रंगमंच से बाहर निकल जाते हैं)

संस्कृत व्याख्या—यथा येन प्रकारेण रामः दशरथस्य ज्येष्ठपुत्रः जानक्या

पत्न्या सीतया बन्धुभिः भरतादिभिः सम्बन्धिभिः च समागतः सम्मिलनं प्राप्तः भूमिं च शशास, तथा तेनैव प्रकारेण लक्ष्म्या राजश्रिया समायुक्तः नः अस्माकं राजा राजसिंहः इति पदं भासस्या अन्येषां नाटकानां भरतवाक्येनानुमेयम्, भूमिं प्रशास्तु अस्याः पृथिव्याः न्यायानुसारेण शासनं करोतु ॥१५॥

व्याकरण—लक्षयति पश्यति उद्योगिनम् = √लक्ष् + ई (लुट् का आगम) = लक्ष्मी। राजते शोभते = √राज् + कनिन् = राजन्।

छन्द—अनुष्टुप्।

अलङ्कार—उपमा। राजा उपमेय, राम उपमान, समागम होना साधारण धर्म, यथा-तथा उपमावाचक हैं। पूर्णोपमा है।

भरतवाक्य—नाटक के अन्त में अभिनय की समाप्ति होने पर आशीर्वादात्मक श्लोक के रूप में जिस पद्य का गान किया जाता है, उसको भरतवाक्य कहते हैं। भारतीय नाटकों की परम्परा में नाटक के अन्त में भरतवाक्य अवश्य रखा जाता है। भरत का अर्थ अभिनेता या नट है। अर्थ के अनुसार नाटक की समाप्ति पर नाटक के अभिनेता दर्शकों के लिए इस वाक्य द्वारा आशीर्वाद देते हैं। इस समय सभी अभिनेता रंगमंच पर उपस्थित होकर भरतवाक्य का गान करते हैं। अथवा नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के प्रति आदर का भाव प्रकट करने के लिए उसको भरतवाक्य कहा गया है।

॥ इति सप्तमोऽङ्कः ॥

सातवाँ अङ्क पूरा हुआ

इति भासविरचित प्रतिमानाटके डॉ० कृष्णकुमारकृतव्याख्यायाः
सप्तमोऽङ्कः समाप्तः

इति भासविरचितं प्रतिमानाटकम् सम्पूर्णम्

इति गढ़वालविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षेन डॉ० कृष्णकुमारेण प्रणीता प्रतिमानाटकव्याख्या सम्पूर्णा ॥

परिशिष्ट–1

कुछ विशिष्ट नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

प्रतिमानाटक में आये हुए पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या उस-उस स्थल पर की जा चुकी है; अतः यहाँ केवल संस्कृत में लक्षणमात्र दिये गये हैं।

रूपक—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात्॥ दशरूपक १.७॥

रूपक के भेद—

नाटकमथप्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥
साहित्यदर्पण॥

नाटक—

प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥
नानाविभूतिभिर्युतमृद्धिविलासादिगुणैश्चैव।
अङ्कप्रवेशकाढ्य भवति हि नाटकं नाम॥
भरतनाट्यशास्त्र १८.१०–११॥

नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षो प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥
दशरूपक २. १–२॥

नायकों के भेद—

धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः॥
साहित्यदर्पण ३.३॥

धीरोदात्त नायक—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥
साहित्यदर्पण ३.३॥

नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता ॥
साहित्यदर्पण ३.५६॥

स्वीया नायिका—

विनयार्जनादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ॥

नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्ठाभिर्वा पदैरुत ॥
साहित्यदर्पण ६.२६ ॥

नान्दी की आवश्यकता—

प्रत्याहारादिकाऩ्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि ।
तथाऽप्यवश्यं कर्त्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥
साहित्यदर्पण ३.२२॥

पूर्वरङ्ग—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवा. प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥
साहित्यदर्पण ५.२२॥

प्रस्तावना स्थापना—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥
साहित्यदर्पण ६.२१–३२॥

प्रस्तावना के भेद—

उद्घात्यकः कथोगादद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।
पवर्तकावगलिते पञ्च प्रस्तावनाभिधा ॥
साहित्यदर्पण ६.३३।

प्रयोगातिशय प्रस्तावना—

एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रधारप्रयोगतः ।
पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयस्तथा ॥
दशरूपक ॥

विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।

मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।
साहित्यदर्पण ६.५५–५६॥

प्रवेशक—
प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयस्यान्तर्विज्ञेयः शेष विष्कम्भके यथा॥
साहित्यदर्पण ६.५–७॥

अङ्क—
अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्क॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्कः सदावगन्तव्यः॥

सूत्रधार—
नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः॥

नेपथ्य—
कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।
नटानां केशपरिग्रहस्थानम्॥

कञ्चुकी—
अन्तःपुरचरो राज्ञो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥

प्रकाशम्—
सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्॥

स्वगतम्—
अश्राव्यं स्वगतं मतम्॥

जनान्तिकम्—
त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्॥

अपवारितकम्—
रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम्॥

आकाशभाषित—
किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तं मत्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥

भरतवाक्य—
भरतः नटस्तस्य प्रस्तुतानुकार्यभेदेन मङ्गलाशसनतत्परं।
वाक्यमित्यर्थः। निर्वहणसन्धेरन्त्यं प्रशस्तिरूपमङ्गलमिदम्।

प्रशस्तिः शुभशंसना॥

परिशिष्ट–२

प्रतिमानाटक के छन्द

गेय वस्तु को छन्द, श्लोक या पद कहा जाता है। लौकिक संस्कृत के छन्दों में साधारण रूप से ४ चरण या पाद होते हैं। ये छन्द तीन प्रकार के हैं—समवृत्त, अर्द्धसमवृत्त, और विषमवृत्त। चारों चरणों में वर्णों या मात्राओं की संख्या समान होने पर समवृत्त छन्द होते हैं। संस्कृत (लौकिक) के अधिकांश छन्द समवृत्त हैं। पहले तथा तीसरे चरण में एवं दूसरे तथा चौथे चरण में वर्णों या मात्राओं की संख्या समान होने पर अर्द्धसमवृत्त छन्द होते हैं। पुष्पिताग्रा आदि छन्द इसी प्रकार के हैं। सभी चरणों में इनकी विषमता होने पर विषमवृत्त छन्द होता है; जैसे कि आर्या छन्द है।

छन्दों में वर्णों या मात्राओं की गणना की जाती है। जिन छन्दों की रचना वर्णों के अनुसार की जाती है, वे वर्णिक छन्द कहलाते हैं। जिनकी रचना मात्राओं के अनुसार होती है, वे मात्रिक होते हैं। इन्द्रवज्रा आदि छन्द वर्णिक और आर्या आदि छन्द मात्रिक हैं।

छन्दों की रचना में लघु तथा गुरु होने के क्रम की गणना होती है। इनमें अ, इ, उ, ऋ तथा लृ स्वर लघु हैं और शेष गुरु हैं; परन्तु निम्न अवस्थाओं में लघु स्वरो को भी गुरु समझा जाता है—

(१) यदि लघु स्वर के पश्चात् अनुस्वार, विसर्ग या संयुक्त वर्ण हो।

(२) यदि यह पाद का अन्तिम स्वर हो।

गणना के लिए स्वर लघु की एक मात्रा तथा गुरु स्वर की दो मात्राएँ गिनी जाती हैं। लघु का सकेत "।" चिह्न है तथा गुरु का संकेत "S" चिह्न है।

वर्णिक छन्दों में वर्णों के गुरु-लघु के बोध के लिए गणों का उपयोग किया जाता है। गणों की संख्या आठ है तथा उनमे लघु-गुरु वर्ण निम्न क्रम से होते हैं—

यगण । S S	रगण S । S	नगण । । ।
मगण S S S	जगण । S ।	सगण । । S
तगण S S ।	भगण S । ।	

इनको इस सूत्र से भी लिखा जाता है—

यमाताराजभानसलगा

छन्दों में यति होती है। यति का अभिप्राय है कि छन्द का गान करते हुए उस स्थान पर विराम होता है। यति लम्बे छन्दों में होती है।

प्रतिमानाटक में निम्न प्रकार से छन्दों का प्रयोग किया गया है--

परिशिष्ट-३

प्रतिमानाटक की सूक्तियाँ और लोकोक्तियाँ

	अंक	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा	१	२५	४०
२. अपरिहरणीयो महर्षि शाप:	६		१६०
३. अलं गुरुजनापवादमभिधातुम्	४		१११
४. अलमतिस्नेहेन	४		१३८
५. अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम्	४		१२६
६. अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपक्षेप्तुम्	१		२८
७. अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते	१		१६
८. अविज्ञातपुरुषविशेषा खलु वानरा:	६		१८०
९. उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणि	३		८०
१०. कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभि: विषमीकरोति	५	३	१४३
११. का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति	६		१६१
१२. किं क्षमा निर्मनस्विता	१	१६	३४
१३. किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते ?	४		१११
१४. कुत: क्रोधो विनीतानाम् लज्जा व कृतचेतसाम्	६	९	१७९
१५. गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुलदीव प्रवेशिता	३	१६	६६
१६. गोपहीना गावो विलय यान्ति	३	२३	१०४
१७. छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि	५		१५१
१८. तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति	६		१८०
१९. धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता	५	१७	१६२
२०. न खलु एकाकिन्याहसितव्यम्	१		१०
२१. न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्	४		१११
२२. न व्याघ्रं मृगशिशव: घर्षयन्ति	५	१८	१११
२३. नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो ध्वनि: । सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले देवेन ताडितम्	१	११	२५
२४. निम्नस्थलोत्पादको हि काल:	७		२००
२५. निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च	१	२६	४४
२६. नृपतिहीना हि विलयं यान्ति	३	२३	१०४
२७. पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च	१	२५	४८

श्लोक संख्या

नाम छन्द	प्रथम अङ्क	द्वितीय अङ्क	तृतीय अङ्क	चतुर्थ अङ्क	पञ्चम अङ्क	षष्ठ अङ्क	सप्तम अङ्क	योग
आर्या	२	७						२
अनुष्टुप्	४, ६, ९, ११, १२, १३, १५. १६, १७, १९, २०, २१, २३, २४, २६, २७, २८. ३१	३, ५, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १५, १६, १७, १८, २०	४, ५, ६, ८, १०, १२, १४, १५, १६, १७, २३, २४	३, ४, ५, ११, १२, १४, १५, १९, २६, २८,	६, ८, ९, १२, १३, १४, १५, २०, २१, २२,	५, ९, १०, ११, १३, १४, १५,	५, ८, १३, १५	७५
उपजाति			१५	९, १३	३, ४, ५	१६	३	८
इन्द्रवज्रा	१,२९			२५			१४	४
शालिनी		१३	१८		१७			३
वंशस्थ			१३	२०		१२		४
पुष्पिताग्रा		२१		१८	१९	८		४
प्रहर्षिणी	३०			६	१८			३
वसन्ततिलका	७, ८, २२	१,४		१, २. १६, २२, २४	१०, ११	४, ६, ७, १[illegible]	४, ६, ७, ९, १०, ११	२२
मालिनी	१४, १५		९, २१	१०, २१	७		१. २, १२	१०
शिखरिणी		१४	१. २, २२	७				५
हरिणी	१८		१७	८	२			४
शार्दूलविक्रीडित	३, ५	२, १९		२३, २७	१, १६	३		९
सुवदना			७,११					२
स्रग्धरा				१७				१
संकृति			३					१
योग	३१	२१	२४	२८	२२	१६	१५	१५७

परिशिष्ट—४

श्लोकानुक्रमणिका

KIRAN